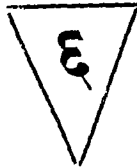
सुलभ-साहित्य-माला ❦ ❦ षष्ठ पुष्प

शरत्-साहित्य



श्रीकान्त

(द्वितीय पर्व)



अनुवादकर्त्ता

हेमचन्द्र मोदी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई न० ४.

पहली बार
१९३७

मूल्य दस आने

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६, केळेवाडी गिरगाव मुंबई.

निवेदन



श्रीकान्तका यह द्वितीय पर्व भी पाठकोंके सम्मुख उपस्थित है।

अबसे कोई २० वर्ष पहले बगालके सुप्रसिद्ध मासिकपत्र 'भारतवर्ष' मे यह 'श्रीकान्तेर भ्रमण-काहिनी' के नामसे धारावाहिकरूपमें प्रकाशित हुआ था और उसी समय मैंने इसे पढा था। बिल्कुल अपूर्व चीज थी, पढ़कर मुग्ध हो गया और विचार किया कि हिन्दी-पाठकोंको भी इसका रसास्वाद कराना चाहिए, परन्तु, उस समय वह विचार, इच्छा रहते हुए भी, अनेक कारणोंसे कार्यमे परिणत न हो सका। आज मुझे बड़ा सन्तोष हो रहा है कि इतने लम्बे समयके बाद भी मेरी उस इच्छाकी पूर्ति हो रही है।

शरद् बाबूकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओंमे इसकी गणना है और उपन्यास-साहित्यमे तो यह अपने ढगका अकेला ही है। विदेशों तक इसकी ख्याति पहुँच गई है और यूरोपकी दो प्रधान भाषाओंमे,—अँग्रेजी और फ्रेंचमे, इसके अनुवाद हो चुके हैं जिनका खूब सम्मान हुआ है और शरद् बाबूकी गणना ससारके श्रेष्ठ उपन्यास-लेखकोंमे की जाने लगी है।

यह अनुवाद मेरे पुत्र आयुष्मान् हेमचन्द्रने किया है। यह कैसा हुआ है, इसका निर्णय तो सहृदय पाठक ही करेंगे, मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि इसके लिए काफी परिश्रम किया गया है और मूलके भावोंकी रक्षामे पूरी सावधानी रक्खी गई है। फिर भी, यदि कुछ त्रुटियाँ रह गई हो तो उसका यह पहला प्रयत्न समझकर पाठक दर-गुज़र करेंगे, ऐसी आशा है।

'श्रीकान्त' का तीसरा पर्व भी प्रकाशित करनेका प्रबन्ध किया जा रहा है।

अन्तमे इस पुस्तक-मालाके सस्तेपनके विषयमे पाठकोंको यह सूचित कर देना आवश्यक है कि मूल बगलामे 'श्रीकान्त' के प्रत्येक पर्वका मूल्य डेढ़ रुपया

है। इसी प्रकार 'श्रीकान्तके' दो पर्वोंका अभी जो गुजराती अनुवाद प्रकाशित हुआ है उसका मूल्य भी तीन रुपया है, जब कि हमारे पाठक उक्त दो पर्वोंको केवल एक रुपयामें, अर्थात् एक तिहाई मूल्यमें, प्राप्त कर रहे हैं। इससे अधिक सस्तापन और क्या हो सकता है ?

पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इस मालाके प्रचारमें हमारा हाथ बँटावें और हिन्दीके भाण्डारको समृद्ध करनेकी इस योजनाको विफल न होने दें।

इस भागके साथ शरत्-साहित्यके छह भाग और सुलभसाहित्यमालाका पहला वर्ष समाप्त हो जाता है। जो पाठक आगे भी ग्राहक रहना चाहें वे सवा तीन रुपया नये वर्षका मूल्य (पोस्टेजसहित) म० आ० से भेज देनेकी कृपा करें।

सातवें भागमें श्रीकान्तका तृतीय पर्व और आठवें भागमें शरद् बाबूकी अन्य कुछ रचनायें प्रकाशित की जायँगी।

५-४,-३७ } नाथूराम प्रेमी

श्रीकान्त

द्वितीय पर्व

इस अभाग जीवनके जिस अध्यायको, उस दिन राजलक्ष्मीके निकट, अन्तिम विदाके समय, आँखोके जलमे समाप्त करके आया था,—यह ख्याल नही किया था कि उसके छिन्न सूत्र पुनः जोडनेके लिए मेरी पुकार होगी। परतु, पुकार जब सचमुच ही हुई, तब समझा कि विस्मय और सकोच चाहे जितना हो, पर इस आह्वानको शिरोधार्य किये बिना काम नही चल सकता।

इसीलिए, आज फिर मै अपने इस भ्रष्ट जीवनकी विशृंखलित घटनाओकी सैकडो जगहसे छिन्न-भिन्न हुई ग्रथियोको फिर एक बार बाँधनेके लिए प्रवृत्त हो रहा हूँ।

आज मुझे याद आता है कि घरपर लौट आनेके बाद मेरे इस सुख-दुःख-मिश्रित जीवनको किसीने मानो एकाएक काटकर दो भागोमें विभक्त कर दिया था। उस समय खयाल हुआ था कि मेरे इस जीवनके दुःखोका बोझा केवल मेरा ही नही है। इस बोझेको लादकर धूमे वह, जिसको कि इसकी नितान्त गरज हो। अर्थात्, मै जो दया करके जीता बच गया हूँ, सो तो राजलक्ष्मीका सद्भाग्य है। आकाशका रग कुछ और ही नजर आने लगा था, हवाका स्पर्श कुछ और ही किस्मका मालूम होने लगा था,—मानो, कहीं भी अब घरबार, अपना-पराया, नही रहा था। एक तरहके ऐसे अनिर्वचनीय उल्लाससे अन्तर-बाहर एकाकार हो गया था, कि रोग रोगके रूपमे, विपद् विपदके रूपमें, अभाव अभावके रूपमे मनमे स्थान ही नहीं पा सकता था। ससारमे कहीं जाते हुए, कही कुछ करते हुए, दुविधा या बाधाका जरा भी सम्पर्क नही रहा था।

यह सब बहुत दिनोंकी बातें हैं। वह आनन्द अब नहीं है, परंतु, उस दिन जीवनमें इस एकान्त विश्वासकी निश्चित निर्भरताका स्वाद एक दिनके लिए भी मैं उपभोग कर सका,— यही मेरे लिए परम लाभ है। परन्तु, साथ ही, मैंने उसे खो दिया, इसका भी मुझे किसी दिन क्षोभ नहीं हुआ। केवल इस बातका ही बीच-बीचमें खयाल आता है कि जिस शक्तिने उस दिन हृदयके भीतर जाग्रत होकर इतनी जल्दी संसारका समस्त निरानन्द हरण कर लिया था, वह कितनी विराट् शक्ति है! और सोचता हूँ, कि उस दिन अपने ही समान अन्य दो अक्षम दुर्बल हाथोंके ऊपर इतना बड़ा गुरु भार न डालकर यदि मैं समस्त जगद्-ब्रह्माण्डके भारवाही उन हाथोंपर ही अपनी उस दिनकी उस अखण्ड विश्वासकी समस्त निर्भरताको सौंप देना सीखता, तो फिर, आज मुझे चिन्ता ही क्या थी? किन्तु, अब जाने दो उस बातको।

राजलक्ष्मीको मैंने पहुँचका पत्र लिखा था। उस पत्रका जवाब बहुत दिनों बाद आया। मेरे अस्वस्थ शरीरके लिए दुःख प्रकाशित करके गृहस्थ बननेके लिए उसने मुझे कई तरहके बड़े बड़े उपदेश दिये थे और अपने संक्षिप्त पत्रको यह लिखकर खत्म किया था कि यदि वह कामोंकी झंझटोंके मारे पत्रादि लिखनेका समय न पा सके, तो भी, मैं बीच-बीचमें अपनी खबर उसे देता रहूँ और उसे अपना ही समझूँ!

तथास्तु! इतने दिनों बाद उसी राजलक्ष्मीकी यह चिट्ठी!

आकाश-कुसुम आकाशमें ही सूख गये और जो दो-एक सूखी पखुड़ियाँ हवासे झड़ पड़ीं उन्हें बीन करके घर ले जानेके लिए भी मैं जमीन टटोलता नहीं फिरा। आँखोंमेंसे दो-एक बूँद पानी शायद पड़ा भी हो, किंतु, वह मुझे याद नहीं। फिर भी, यह याद है कि और अधिक दिन मैंने स्वप्न देखते हुए नहीं काटे। तब भी, इस तरह और भी पाँच-छह महीने कट गये।

एक दिन सुबह बाहर जानेकी तैयारी कर रहा था। एकाएक एक अद्भुत पत्र आ उपस्थित हुआ। ऊपर औरतोंके-से कच्चे अक्षरोंमें नाम और ठिकाना लिखा था। खोलते ही पत्रके भीतरसे एक छोटा-सा पत्र खट्से जमीनपर गिर पड़ा। उसे उठाकर तथा उसके अक्षर और नाम-सहीकी ओर देखकर मैं मानो अपने दोनों नेत्रोंपर भी विश्वास न कर सका। मेरी माँ जो दस वर्ष पहले ही देह त्याग कर गई थीं, उन्हींके ही श्रीहस्तके ये दस्तखत थे! नाम

और सही भी उन्हींकी थी! पढ़कर देखा माँने उसमे अपनी 'गगाजल*' को जितना भी हो सकता है उतना अभय वचन दिया था। बात संभवतः यह थी कि बारह-तेरह वर्ष पहले इस 'गगाजल' के यहाँ जब अधिक उम्रमे एक कन्या-रत्नने जन्म ग्रहण किया तब दुःख, दैन्य और दुश्चिन्ता प्रकट करके शायद माँको उसने एक पत्र लिखा होगा और उसीके प्रत्युत्तरमे मेरी स्वर्ग-वासिनी जननीने उस गगाजल-दुहिताके विवाहका समस्त दायित्व ग्रहण करके जो पत्र लिखा था यह वही मूल्यवान् दस्तावेज थी। तात्कालिक करुणासे पिघलकर माँने उपसंहारमे लिखा था कि सुपात्र यदि कही न मिले तो फिर उनका खुदका पुत्र तो है ही!—ठीक है! ससारमे सुपात्रका यदि बिल्कुल ही अभाव हो तो फिर मै तो हूँ! सारी चिट्ठीको ऊपरसे नीचे तक दो बार पढ़कर मैने देखा कि वह मुन्शियाना ढगसे लिखी गई है। माँको वकील होना चाहिए था, क्योकि जितनी भी कल्पनाये की जा सकती थीं उतनी तरहसे वे अपने आपको और अपने वशधरोको उस दायित्वमे बाँध गई हैं। उससे बचनेके लिए दस्ता-वेजमे कही जरा-सी भी जगह, जरा-सी भी त्रुटि, नहीं छोडी गई है।

वह चाहे जो हो, पर ऐसा तो मुझे नही मालूम पड़ा कि 'गगाजल' इन सुदीर्घ तेरह वर्षोतक इस पक्की दस्तावेजके ही भरोसे निर्भय हो चुपचाप बैठी रही है। परतु, उलटे मन-ही-मन मुझे ऐसा लगा कि बहुत प्रयत्न करनेपर भी जब रुपये और निजी मनुष्योके अभावसे सुपात्र उसके लिए एकबारगी अप्राप्य हो गया, और कुमारी कन्याकी शारीरिक उन्नतिकी ओर दृष्टिपात करनेसे हृदयका रक्त मस्तिष्कमे चढ़नेकी तैयारी करने लगा, तब कहीं जाकर इस हतभाग्य सुपात्रके ऊपर उन्होने अपना एकमात्र ब्रह्मास्त्र फेका है।

माँ यदि जीती होती तो इस चिट्ठीके लिए आज मै उनका सिर खा जाता। परतु आज,—जहाँ वे ऊपर बैठी हुई हँस रही हैं, वहाँ तक उछल कर भी उनके पैरोके तलुओपर जोरसे सिर पटककर अपनी ज्वालाको मिटाऊँ,—यह रास्ता भी मेरे लिए बन्द है।

इसलिए, माँका तो कुछ भी नहीं कर सका। परतु, अब उनकी गगाजलका भी कुछ कर सकता हूँ या नही, यह परखनेके लिए मै एक दिन रात्रिको स्टेशनपर जा पहुँचा। सारी रात ट्रेनमे काटकर दूसरे दिन जब उनके गाँवके

---

* बगालमे स्त्रियाँ जिसे अपनी सखी सहेली बनाती हैं उसे 'गगाजल' इस प्यारके नामसे संबोधित करती हैं।

मकानपर पहुँचा तब दिन ढल गया था। गंगाजल-माँ पहले तो मुझे पहिचान न सकी। अन्तमे, परिचय पाकर, इन तेरह वर्षोंके बाद भी वे इस तरह रो पड़ीं जिस तरह कि माँकी मृत्युके समय उनका कोई अपना आदमी भी, आँखोंके सामने उनकी मृत्यु होते देखकर, न रो सका होता।

वे बोलीं कि लोकदृष्टिसे और धर्मदृष्टिसे दोनों ही तरह अब मैं तुम्हारी माताके समान हूँ और दायित्व ग्रहण करनेकी प्रथम सीढ़ीके रूपमें उन्होंने मेरी सांसारिक परिस्थितिका बारीकीसे पर्यालोचन करना शुरू कर दिया। बाप कितना छोड़ गये हैं, माँके कौन-कौनसे गहने हैं और वे किसके पास हैं, मैं नौकरी क्यों नहीं करता और यदि करूँ तो अंदाजसे क्या महिना पा सकता हूँ, इत्यादि इत्यादि। उनका मुँह देखकर खयाल हुआ कि इस आलोचनाका फल उनके निकट कुछ वैसा संतोषजनक नहीं हुआ। वे बोलीं कि उनका एक रिश्तेदार बर्मामें नौकरी करके 'लाल' हो गया है, अर्थात् अतिशय धनवान् हो गया है। वहाँ तो राह-घाटमें रुपये बिखरे पड़े हैं, केवल समेटने-भरकी देर है! वहाँपर जहाजसे उतरते-न-उतरते ही बंगालियोंको साहब लोग कंधोंपर उठा ले जाते हैं और नौकरीसे लगा देते है,—इस तरहकी बहुत-सी बातें कहीं। बादमें, मैंने देखा कि यह गलत धारणा केवल अकेली उन्हींकी नहीं थी,—ऐसे बहुत-से लोग इस माया-मरीचिकासे उन्मत्तप्राय होकर सहाय-सम्बल-हीन अवस्थामें वहाँ दौड़ गये हैं और मोह भंग होनेके बाद उन्हें वापिस लौटानेमें हम लोगोंको कम क्लेश सहन नहीं करना पड़ा है।—परंतु, यह बात इस समय रहने दो। गंगाजल-माँका बर्मा-वर्णन मुझे तीरकी तरह लगा। 'लाल' होनेकी आशासे नहीं,—मेरे भीतरका जो घुमक्कड़पन कुछ दिनोंसे सोया हुआ था वह अपनी थकावट झाड़-पोंछकर मुहूर्त-भरमें ही उठ खड़ा हुआ। जिस समुद्रको इसके पहले केवल दूरसे खड़े खड़े देखकर ही मुग्ध हो जाता था, उस अनन्त जल-राशिको भेद करके मैं जा सकूँगा,—इस इच्छाने ही मुझे एकबारगी बे-चैन कर दिया। तब किसी तरह एक बार छुटकारा पाना ही होगा।

मनुष्य मनुष्यसे जितने प्रकारसे भी जिरह कर सकता है, उनमेंसे किसी भी प्रकारकी जिरहमें गंगाजल-माँने मुझे नहीं छोड़ा। फिर भी, अपनी लड़कीके योग्य पात्रकी दृष्टिसे उन्होंने मुझे रिहाई दे दी,—इस विषयमें मैं एक तरहसे निश्चिन्त ही हो गया। परंतु, रात्रिमें भोजनके समय उनकी भूमिकाका झुकाव देखकर मैं फिर उद्विग्न हो उठा। मैंने देखा, मुझे एकबारगी हाथसे जाने देनेकी

उनकी इच्छा नहीं है। उन्होंने यह कहना शुरू किया कि लड़कीके भाग्यमे सुख न हो तो धन, घर-बार, शिक्षा-दीक्षा आदि कितना ही क्यो न देखा जाय, सब-कुछ निष्फल है। इस सम्बन्धमे नाम-धाम, विवरणादिके साथ बहुत-सी विश्वासयोग्य नजीरे देकर भी उन्होंने इस बातको प्रमाणित कर दिखाया। इतना ही नहीं, इसके विरुद्ध ऐसे भी कितने ही लोगोका नामोल्लेख किया कि जो निराट् मूर्ख होते हुए भी केवल स्त्रीके ही सौभाग्यके जोरपर इस समय दिन-रात रुपयोंके ढेरपर बैठे हुए हैं।

मैंने विनयसहित कह दिया कि रुपये-पैसेकी तरफ मेरी आसक्ति तो है, फिर भी, चौबीसो घण्टे उनपर बैठा रहूँ, यह विवेचना मुझे प्रीतिकर नही मालूम होती और इसके लिए स्त्रीका सौभाग्य देखनेका कुतूहल भी मुझे नहीं है। किंतु, इसका कोई विशेष फल नहीं हुआ। उन्हें निरस्त न कर सका। क्योकि, जो स्त्री तेरह वर्षके इतने लम्बे समयके पश्चात् भी एक पत्रको दस्तावेजके रूपमे पेश कर सकती है, उसे इतने सहजमे नही भुलाया जा सकता। वे बारबार कहने लगीं कि इसे माताके ऋणके रूपमे ही ग्रहण करना उचित है और जो सतान समर्थ होते हुए भी मातृ-ऋणका परिशोध नहीं करती, वह—इत्यादि इत्यादि।

जब मैं बहुत ही शकित और विचलित हो उठा, तब बातो ही बातोमे मुझे मालूम हुआ कि पासके गाँवमे यद्यपि एक सुपात्र है, परतु, पाँचसौ रुपयेसे कममे उसका पाना असम्भव है।

एक क्षीण आशाकी रश्मि नजर आई। महीने-भरके बाद जैसे भी हो कोई उपाय कर दूँगा,—यह वचन देकर दूसरे दिन सुबह ही मैंने प्रस्थान कर दिया। परतु, उपाय किस तरह करूँगा,—किसी ओर भी उसका कोई कूल-किनारा नजर नही आया।

मेरे ऊपर लादा हुआ यह भार मेरे लिए कोई सचमुचकी वस्तु नही हो सकता,—यह मै अनेक तरहसे अपने आपको समझाने लगा, परतु फिर भी, माँको इस प्रतिज्ञाके पाशसे मुक्ति न देकर, चुपचाप खिसक जानेकी बात भी किसी तरह मै नहीं सोच सका।

शायद एक उपाय था,—मै यह बात प्यारीसे कहूँ। किंतु, कुछ दिनोतक इस सम्बन्धमे भी मैं अपने मनको स्थिर न कर सका। बहुत दिनसे मुझे उसकी खबर भी नही मिली थी। उस पहुँचकी खबरको छोड़कर मैंने उसे और

कोई चिट्ठी भी नहीं लिखी थी, उसने भी, उसके जवाबके सिवाय, दूसरा पत्र नही लिखा। इस बातको वह शायद नही मानती थी कि चिट्ठी-पत्रीके द्वारा भी दोनोके बीच मिलापका एक सूत्र रहता है। कमसे कम उसके उस पत्रसे तो मै यही समझा। फिर भी, अचरजकी बात है कि, दूसरेकी लड़कीके लिए भिक्षा माँगनेके बहाने एक दिन मै सचमुच ही पटने जा पहुँचा।

मकानमे प्रवेश करते ही नीचे बैठनेके कमरेके बरामदेमे मैने देखा कि वर्दी पहने हुए दो दरबान बैठे हैं। वे एकाएक एक साधारण-से अपरिचित आगन्तुकको देखकर कुछ इस तरह देखते रह गये कि मुझे सीधे ऊपर चढ जानेमे सकोच मालूम हुआ। इन्हे मैंने पहले नही देखा था। प्यारीके पुराने बूढ़े दरबानजीके बदले इन दो और दरबानोकी क्या आवश्यकता आ पडी, यह मै न सोच सका। जो भी हो, इनकी पर्वाह किये बगैर ऊपर चला जाऊँ अथवा विनयके साथ इनकी अनुमति माँगूँ,-- यह स्थिर करते-न-करते ही मैंने देखा कि रतन व्यस्त हुआ-सा नीचे आ रहा है। अकस्मात् मुझे देखकर वह पहले तो अवाक् हो गया· बादमे पैरोकी ओर झुककर प्रणाम करके बोला, "आप कब आये? यहाँ कैसे खड़े हैं?"

"अभी ही आ रहा हूँ, रतन। सब कुशल तो है न?"

रतन सिर हिलाकर बोला, "सब कुशल है, बाबू। ऊपर चलिए,—मै बरफ खरीदकर अभी ही आया।" कहकर वह जाने लगा।

"तुम्हारी मालकिन ऊपर ही हैं?"

"हाँ हैं," कहकर वह जल्दीसे बाहर चला गया।

ऊपर चढते ही जो पासका कमरा मिलता है, वह बैठकखाना है। भीतरसे एक ऊँची हँसीका शब्द और बहुतसे लोगोकी आवाज सुनाई दी। मै जरा विस्मित हुआ। परतु, दूसरे ही क्षण, द्वारके नजदीक पहुँचकर, मै अवाक् हो गया। पिछली दफे इस कमरेको व्यवहारमे आते नही देखा था। इसमे तरह-तरहके साज-सामान, टेबल, चेअर आदि अनेक चीजे एक कोनेमे ढेर होकर पड़ी रहती थीं। बहुधा कोई इस कमरेमे आता भी न था। आज देखता हूँ,—सपूर्ण कमरेमे बिस्तर है, शुरूसे अन्त तक कार्पेट बिछा हुआ है और उसके ऊपर सफेद जाजम झकझक कर रही है। तकियोके ऊपर गिलाफ चढे हुए हैं और उनके सहारे बैठे हुए कुछ सभ्य पुरुष अचरजसे मेरी ओर देख रहे हैं। उनकी पोशाकमे

बंगालियोंकी तरह धोती होनेपर भी सिरपरकी बेल-बूटेदार मसलिनकी टोपीसे वे बिहारीसे ही मालूम होते थे। तबलेकी जोड़ीके पास एक हिन्दुस्तानी तबलची था और उसके पासमें ही स्वयं प्यारीबाई थीं। एक तरफ छोटा-सा हारमोनियम रक्खा था। प्यारीके शरीरपर यद्यपि मुजरेकी पोशाक नहीं थी, फिर भी, बनाव-सिंगारका अभाव नहीं था। समझ गया कि सङ्गीतकी बैठक जमी हुई है,—थोड़ी देर विश्राम लिया जा रहा है।

मुझे देखते ही प्यारीके चेहरेका समस्त खून मानो कहीं अन्तर्हित हो गया। इसके बाद उसने जबर्दस्ती कुछ हँसकर कहा, " यह क्या, श्रीकान्त बाबू हैं! कब आये? "

" आज ही। "

" आज ही? कब? कहाँ ठहरे हैं? "

क्षण-भरके लिए शायद मैं कुछ हतबुद्धि-सा हो गया, नहीं तो, उत्तर देनेमें देर न होती। परंतु, अपने आपको सम्हालनेमें भी मुझे अधिक देर नहीं लगी। मैंने कहा, " यहाँके सब लोगोंको तो तुम चीन्हती नहीं हो, इसलिए, नाम सुनकर भी न चीन्ह सकोगी। "

जो महाशय सबसे अधिक बने-ठने बैठे थे, वही शायद इस यज्ञके यजमान थे। बोले, " आइए बाबूजी, बैठिए। " इतना कहकर होठोंको दाबकर जरा वे हँसे। भाव-भङ्गीसे उन्होंने यह प्रकट किया कि हम दोनोंका सम्बन्ध वे ठीक तौरसे भाँप गये हैं! उनका आदरके साथ अभिवादन कर मैंने, जूतेके फीते खोलनेके बहाने, मुँह नीचा करके परिस्थितिको भाँप लेना चाहा। विचार करनेके लिए अधिक समय नहीं था,—यह ठीक है, परंतु, इन थोड़ेसे क्षणोंमें मैंने यह स्थिर कर लिया कि हृदयके भीतर कुछ भी हो, बाहरके व्यवहारमें वह किसी भी तरह प्रकाशित न होना चाहिए। मेरे मुँहकी बात-चीतसे, आँखोंकी चितवनसे, मेरे सारे आचरणके किसी भी छिद्रमेंसे, अन्तरके क्षोभ अथवा अभिमानकी एक बूँद भी बाहर आकर न गिरना चाहिए। क्षण-भर बाद, जब मैं सबके बीचमें जाकर बैठा तब, यद्यपि यह सच है कि अपने मुखकी सूरत अपनी आँखों न देख सका, किंतु, भीतर ही भीतर मैंने अनुभव किया कि अब उसपर अप्रसन्नताका लेशमात्र भी चिह्न नहीं रह गया है। राजलक्ष्मीकी ओर देखकर मैं हँसते हुए बोला, " बाईजी, आज यदि शुकदेव मुनिका पता पा जाता, तो उन्हें

तुम्हारे सामने बिठाकर एक दफा उनके मनकी शक्तिकी जाँच कर लेना ! अरे, यह किया क्या है ? यह तो रूपका समुद्र ही बहा दिया है ! ”

प्रशसा सुनकर प्रमुख बाबू साहब, आह्लादसे गलकर, सिर हिलाने लगे। वे पुर्निया जिलेके रहनेवाले थे; मैंने देखा, कि बोल न सकनेपर भी बगला अच्छी तरह समझते हैं । परंतु, प्यारीके कान तक लाल हो उठे ।—किन्तु, लाजके मारे नहीं,—गुस्सेके मारे, यह भी समझनेमे कुछ बाकी न रहा । परन्तु, उस ओर भ्रू-क्षेप भी न करके बाबू साहबको उद्देश करके मैंने उसी तरह हँसते हुए कहा, “ मेरे आनेके कारण यदि आप लोगोंके आमोद-प्रमोदमे थोड़ा-सा भी विघ्न होगा, तो मुझे बहुत दुःख होगा । गाना-बजाना चलने दीजिए । ”

बाबूजी इतने प्रसन्न हो उठे कि आवेशमे आकर मेरी पीठपर एक धौल जमाकर बोले, “ बहुत अच्छा बाबू । प्यारी बीबी, एक बढिया-सा गाना चलने दो । ”

“ सध्याके बाद होगा,—बस अब और नही, ” यह कहकर प्यारी हारमोनियम दूर खिसकाकर सहसा उठ खड़ी हुई ।

इसी समय बाबू साहब मेरा परिचय पानेके उपलक्ष्यमे अपना परिचय देने लगे ।—उनका नाम था रामचन्द्रसिंह । वे पुर्निया जिलेके एक जमीनदार हैं, दरभङ्गा महाराज उनके कुटुम्बी हैं, प्यारी बीबीको वे सात-आठ वर्षसे जानते हैं । वे उनके पुर्नियाके मकानपर तीन-चार दफे मुजरा कर आई हैं । वे खुद भी अनेक दफे गाना सुनने यहाँ आये हैं । कभी कभी दस-बारह दिन तक वे यही रहते हैं, तीनेक महीने पहले एक दफे आकर वे एक हफ्ते तक यहाँ रह गये हैं,—वगैरह वगैरह । अब उन्होने मुझसे पूछा कि मै यहाँ क्यो आया हूँ । मेरे जवाब देनेके पहले ही वहाँ प्यारी आ उपस्थित हुई । उसकी ओर देखकर मैंने कहा, “ बाईजीसे ही पूछिए न, कि क्यों आया हूँ ? ”

प्यारीने मेरे मुँहपर एक तीव्र कटाक्ष डाला, परतु, जवाब दिया सहज शात स्वरमे ही, “ ये हमारे देशके आदमी हैं । ”

मैंने हँसकर कहा, “ बाबूजी, मधु होनेपर मधुमक्खियाँ आकर जुट जाती हैं, वे देश-विदेशका विचार नही करतीं । ” कितु, इतना कहते ही मैंने देखा कि रहस्यको ग्रहण न कर सकनेके कारण पुर्निया जिलेके जमीनदारने अपने मुँहको गंभीर बना लिया और उनके नौकरने ज्यो ही आकर कहा कि सध्या-पूजाके लिए

तैयारी हो गई है त्यो ही उन्होंने वहाँसे प्रस्थान कर दिया। तबलची तथा अन्य दो महाशय उनके साथ ही साथ बाहर चले गये। उनका मन अकस्मात् क्यो इतना व्याकुल हो गया सो मैं बिन्दु-विसर्ग कुछ भी नही समझा।

रतन आकर बोला, "माँ, बाबूजीके बिछौने कहाँ करूँ?"

प्यारीने झुँझलाकर कहा, "क्या और कोई कमरा नहीं है रतन? मुझसे पूछे बिना क्या इतनी-सी बुद्धि भी तू नहीं लगा सकता? चला जा यहाँसे।" इतना कहकर रतनके साथ आप भी बाहर चली गई। मैंने खूब अच्छी तरहसे देखा कि मेरे आकस्मिक शुभागमनसे इस मकानका भार-केन्द्र एक साघातिक ढगसे विचलित हो गया है। प्यारीने, किंतु, थोडी ही देर बाद लौट आकर और मेरे मुँहकी ओर कुछ देर देखते रहकर कहा, "ऐसे अचानक कैसे आना हो गया?"

मैने कहा, "देशका आदमी हूँ, तुम्हे बहुत दिनसे न देख सकनेके कारण व्याकुल हो उठा था, बाईजी!"

प्यारीका मुँह और भी भारी हो गया। मेरे परिहासमे जरा भी योग न देकर उसने पूछा, "आज रातको यहाँ ही रहोगे न?"

"रहनेको कहोगी तो रह जाऊँगा।"

"मेरे कहने-न-कहनेमे क्या! तुम्हे यहाँ शायद कुछ असुविधा हो। जिस कमरेमे तुम सोते थे उसमे तो—"

"बाबू सोते हैं? ठीक है! मै नीचे सो जाऊँगा, तुम्हारा नीचेका कमरा तो बहुत उम्दा है।"

"नीचे सोओगे? कहते क्या हो! मनमे तुम्हारे जरा भी विकार नहीं,— दो ही दिनमे इतने बडे परमहस किस तरह हो गये?"

मैंने मन-ही-मन कहा, 'प्यारी, तुमने मुझे अब तक भी नहीं पहिचाना।' फिर मुँहसे कहा, "इसमे मुझे मान-अपमानका ख्याल बिन्दु-भर भी नहीं है। और, कष्टकी बातका यदि खयाल करो, तो वह तो एकबारगी ही फिजूल है। मै घरसे बाहर निकलनेके समय खाने-सोनेकी चिन्ताओको भी दूर रख आता हूँ, यह तो तुम भी जानती हो। बिस्तर अधिक हो तो एक ले आनेके लिए कह दो, नहीं हो, तो फिर उसकी भी दरकार नहीं है,—मुझे अपने कम्बलका सम्बल है।"

प्यारीने सिर हिलाकर कहा, "सो तो मै जानती हूँ. किंतु, इससे तुम्हारे मनमें किसी तरहका दुःख तो न होगा ?"

मैंने हँसकर कहा, " नही, क्यो कि स्टेशनपर पड़े रहनेकी अपेक्षा तो यह बहुत ही अच्छा है ।"

प्यारी कुछ देर चुप खड़ी रही, फिर बोली, " यदि मै होती तो भले ही वृक्षके नीचे सो रहती, परतु, इतना अपमान कभी नही सहती ।"

उसकी उत्तेजनाको देखकर मुझसे हँसे बिना न रहा गया । वह मेरे मुँहसे क्या सुनना चाहती है सो मैं बडी देरसे खूब समझ रहा था । किन्तु, शान्त स्वाभाविक स्वरसे मैंने जवाब दिया, " मै इतना बेवकूफ नही हूँ कि इस बातको मनमे आने दूँ कि तुम, जान-बूझकर मुझे नीचे सोनेको कहकर, मेरा अपमान कर रही हो । यदि सभव होता, तो तुम उस दफेके समान इस दफे भी मेरे सोनेकी व्यवस्था करती । जाने दो, इन तुच्छ बातोको लेकर वाग्वितडा करनेकी जरूरत नही, तुम रतनको भेज दो कि मुझे नीचेका कमरा दिखा आवे, मै कम्बल बिछाकर सो रहूँगा । मैं बहुत ही थक गया हूँ ।"

प्यारीने कहा, "तुम ज्ञानी आदमी हो, तुम ही मेरी ठीक अवस्थाको न जान सकोगे तो और जानेगा कौन ? चलो, बच गई ।" इतना कहकर उसने एक दीर्घ श्वास दबाकर पूछा, " एकाएक आनेका सच्चा कारण तो मै न जान सकी कि क्या है ?"

मै बोला, " पहला कारण तो तुम नही सुन पाओगी, किन्तु, दूसरा सुन सकती हो ।"

" पहला क्यो नहीं सुन सकूँगी ?"

" अनावश्यक है, इसलिए ।"

" अच्छा, दूसरा ही सुनाओ ।"

" मै बरमा जा रहा हूँ । शायद आर फिर कभी मिलना न हो सके । कमसे कम यह तो निश्चित है कि बहुत दिनो तक मिलाप न होगा । जानेके पहले एक दफे तुम्हे देखने आया हूँ ।"

रतन कमरेमे आकर बोला, " बाबू, आपके बिस्तर तैयार हैं, आइए ।"

मैंने खुश होकर कहा, " चलो ।" प्यारीसे कहा, " मुझे बडी नींद आ रही है । घण्टे-भर बाद यदि समय मिले तो एक दफे नीचे आ जाना,—मुझे और भी बहुत-सी बाते करनी हैं ।" इतना कहकर रतनको साथ लेकर मैं बाहर हो गया ।

प्यारीके निजके सोनेके कमरेमे ले आकर रतनने मुझे जब शय्या बताई तब मेरे अचरजकी सीमा न रही। मै बोला, "मेरे बिस्तर नीचेके कमरेमे न करके यहाँ क्यो किये ?"

रतनने अचरजके साथ कहा, "नीचेके कमरेमे ?"

मैंने कहा, "एसी ही बात तो हुई थी।"

वह अवाक् हो कुछ देर मेरी ओर देखता रहा और अन्तमे बोला, "आपके बिस्तर होगे नीचेके कमरेमे ? आप मजाक कर रहे हैं बाबू !" इतना कहकर वह हँसता हुआ जा ही रहा था कि मैंने उसे बुलाकर पूछा, "तुम्हारी मालकिन कहाँ सोवेगी ?"

रतन बोला, "बङ्कू बाबूके कमरेमे उनके बिस्तर लगा आया हूँ।" मैंने निकट आकर देखा, – यह राजलक्ष्मीके उस डेढ हाथ चौड़े तखतेपर बिछाया हुआ बिस्तर नही है। एक बड़े पलगपर एक खूब मोटा गद्दा बिछाकर शाही बिस्तर लगाये गये हैं। शीशेके नजदीक एक छोटी-सी टेबलके ऊपर सेजके बीचोंबीच लैम्प जल रहा है। एक किनारे बगला भाषाकी कुछ किताबे हैं और दूसरे किनारे गुलदस्तेमे कुछ बेलाके फूल रक्खे हैं। आँखोसे देखते ही मैने अच्छी तरह जान लिया कि इनमेंसे कोई भी चीज़ नौकरके हाथकी तैयार की हुई नहीं है। जो बहुत प्यार करती है, ये सब चीजे उसीके खुदके हाथो तैयार हुई हैं। ऊपरकी चादर भी राजलक्ष्मी खुद अपने हाथो बिछा गई है, यह मानो अन्दर ही अन्दर मैंने खूब अनुभव किया।

आज उन लोगोके सामने मेरे अचानक आ जानेके सबब राजलक्ष्मीने, हत-बुद्धि हो, पहले चाहे जैसा व्यवहार क्यो न किया हो, पर यह बात मुझसे अज्ञात नही रही कि मेरी निर्विकार उदासीनतासे वह मन ही मन शङ्कित हो उठती थी और यह भी मुझे मालूम हो गया था कि मेरे भीतर ईर्षाका प्रकाश देखनेके लिए उत्सुक हो वह, इतनी देरमे इतनी तरहसे, क्यो बारबार आघात कर रही थी। किन्तु, सब-कुछ जानते हुए भी, अपने निष्ठुर स्वभावको ही मर्दानगी समझकर, मैंने उसका जरा भी अभिमान नही रहने दिया,—उसके प्रत्येक छोटेसे छोटे आघातको सौ गुना करके वापिस लौटा दिया! उसके प्रति किया गया यह अन्याय मेरे मनके भीतर अब सुईकी तरह चुभने लगा। मै बिस्तरपर लेट गया किंतु सो नही सका। मै यह निश्चय

जानता था कि एक बार वह आयगी जरूर। इसलिए, उस समयकी उत्सुकतासे राह देखने लगा।

थकावटके कारण शायद कुछ सो भी गया था। सहसा आँखे खोलकर देखा कि प्यारी मेरे शरीरपर एक हाथ रक्खे हुए बैठी है। मेरे उठकर बैठते ही वह बोली, "बरमाको गया हुआ मनुष्य फिर लौटकर वापिस नही आता,—यह बात क्या तुम्हे मालूम है?"

"नही, सो मुझे नहीं मालूम।"

"फिर?"

"मुझे लौटना ही होगा,—ऐसी तो किसीके सिरकी कसम मुझपर है नही।"

"नही है? तुम पृथिवी-भरके सब लोगोके मनकी बात जानते हो?"

बात बहुत ही सामान्य थी। किंतु, ससारमे यह एक भारी अचरजकी बात है कि मनुष्यकी दुर्बलता कब किस झरोखेसे अपने आपको प्रकट कर बैठेगी, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। इसके पहले कितने ही और इससे भी अधिक बड़े कारण घट गये हैं, परतु, मैंने कभी अपने आपको इस तरह नहीं पकड़ा जाने दिया। किंतु, आज उसके मुँहसे निकली हुई इस अत्यन्त साधारण बातको भी मै सहन नही कर सका। मुँहसे सहसा यह बात निकल ही गई, "सब लोगोके मनकी बात तो जानता नही राजलक्ष्मी, परतु, एक मनुष्यके मनकी अवश्य जानता हूँ। यदि किसी दिन लौटकर आऊँगा तो केवल तुम्हारे ही लिए। तुम्हारे सिरकी कसमकी मै कभी अवहेला नही करूँगा।"

प्यारी मेरे पैरोपर एकबारगी उल्टी हो गिर पडी। मैंने इच्छा करके भी पैर पीछे न खींचे, परतु, दसेक मिनट बीत जानेपर भी जब उसने अपना सिर ऊपर नहीं उठाया तब उसके सिरपर मैंने अपना दाहिना हाथ रक्खा, जिसके पडते ही वह एक बार सिहरकर कॉप उठी। परतु, फिर भी वह उसी तरह पड़ी रही। सिर भी नही उठाया, बोली भी नही। मैंने कहा, "उठकर बैठो, इस अवस्थामे हमे यदि कोई देखेगा तो भारी अचभेमे पड़ जावेगा।"

किन्तु, प्यारीने जब जवाब तक नही दिया तब मैंने उसे जोरसे उठाया। उठाते ही मैंने देखा कि उसके नीरव ऑसुओसे वहाँकी सारी चादर बिल्कुल भीग गई है। खींच-तान करनेपर वह रुद्ध कण्ठसे बोल उठी, "पहले मेरी दो-तीन बातोका जवाब दो तब मैं उठूँगी।"

" कहो, कौन-सी बाते हैं ? "

" पहले तो यह कहो कि उन लोगोंके यहाँ रहनेसे तुमने मेरे सम्बन्धमे कोई बुरा ख्याल तो नही किया ? "

" नही। "

प्यारी और कुछ देर चुप रहकर बोली, " किंतु, मै भली औरत नही हूँ, यह तो तुम जानते हो ? फिर भी, तुम्हे क्यो सन्देह नही हुआ ? "

सवाल बड़ा ही कठिन था। वह भली स्त्री नहीं है यह मैं जानता हूँ, परतु वह खराब है, बुरी है, यह ख्याल भी मै मनमे नहीं ला सका। मै चुप हो रहा।

एकाएक वह अपनी आँखे पोछकर झटपट उठ बैठी और बोली, " अच्छा, तुमसे पूछती हूँ, पुरुष कितना ही बुरा क्यो न हो, यदि वह भला होना चाहता है तो उसे कोई रोकता नही किंतु, हम लोगोकी पारी आनेपर सब मार्ग क्यों बन्द हो जाते हैं ? अज्ञानसे, धनाभावसे, एक दिन जो कर बैठी, --चिरकालके लिए मुझे वही क्यो करना पड़ता रहे ? हम लोगोको तुम लोग भला क्यो बनने नही देते ? "

मैंने कहा " हम लोग तो कभी रोकते नही हैं। और यदि हम रोके, तो भी, ससारमे भले बननेके मार्गमे कोई किसीको अटकाकर नहीं रख सकता। "

प्यारी बड़ी देरतक चुप रहकर मेरे मुँहकी ओर देखकर अतमे धीरे धीरे बोली, " बहुत ठीक, तो फिर, तुम भी मुझे नही रोक सकोगे ? "

मेरे जवाब देनेके पहले ही रतनकी खाँसीका शब्द द्वारके निकट सुन पड़ा।

प्यारीने पुकार कर कहा, " क्या है रतन ? "

रतनने मुँह आगे निकालकर कहा, " माँ, रात बहुत बीत गई है,—बाबूजीके खानेके लिए ले न आऊँ ? रसोइया महाराज तो झोखे खाते खाते रसोई-घरमे ही सो गये हैं। "

" अरे, तब तो तुममेसे किसीने भी अभीतक खाया न होगा ! " इतना कह प्यारी घबड़ाकर और लज्जित होकर उठ खड़ी हुई। मेरे लिए खानेको वह अपने ही हाथो हमेशा लाती थी, आज भी लानेके लिए जल्दीसे पैर बढ़ाती हुई चली गई।

खाना समाप्त करके जब मै बिस्तरपर लेटा तब रातका एक बज गया था। प्यारी फिर आकर मेरे पैरोके पास बैठ गई। बोली, " तुम्हारे लिए अनेको रातें

अकेले जागकर बिताई हैं,—आज तुम्हे भी जागता रक्खूँगी।" इतना कहकर मेरी सम्मतिकी राह देखे वगैर ही उसने मेरे पैरकी तरफका तकिया खींच लिया और बाएँ हाथका सहारा लेकर वह लेट गई तथा बोली," मैंने बहुत विचार कर देखा, तुम्हारा इतने दूर देश जाना किसी तरह भी नहीं हो सकता।"

मैने पूछा, " तो फिर, क्या हो सकता है ? इसी तरह यहाँ-वहाँ भटकते फिरना !"

प्यारीने इसका जवाब न देकर कहा, " इसके सिवाय किस लिए बरमा जा रहे हो, सो भी तो सुनूँ ?"

" नौकरी करने, यहाँ-वहाँ भटकते फिरनेके लिए नहीं।"

मेरी बात सुनकर प्यारी उत्तेजनाके वश सीधी होकर बैठ गई और बोली, " देखो, दूसरेसे जो कहना हो कहना, किंतु मुझे मत ठगना। मुझे ठगोगे तो तुम्हारा इहकाल भी नहीं, परकाल भी नहीं,—सो जानते हो ?"

" सो तो खूब जानता हूँ, अब क्या करना चाहिए, कहो तुम ?"

मेरी स्वीकारोक्तिसे प्यारी प्रसन्न हुई। हँसकर बोली, " स्त्रियाँ चिरकालसे जो कहती आई हैं वही मैं कहती हूँ। विवाह करके ससारी बन जाओ,—गृहस्थ-धर्मका पालन करो।"

मैने प्रश्न किया, " क्या सचमुच ही मै उससे सुखी होऊँगा ?"

उसने सिर हिलाकर कानोंके झूले हिलाते हुए उत्साहसे कहा, " निश्चयसे। एक दफे नहीं, सौ दफे। इससे यदि मै सुखी नही होऊँगी, तो फिर, और कौन होगा, बताओ ?"

मैने कहा, " सो तो मै नही जानता, परंतु, इससे मेरे मनकी एक दुर्भावना चली गई। वास्तवमें, यही खबर देने मै आया था कि ब्याह किये वगैर मेरी गुजर नहीं।"

प्यारी फिर एक बार अपने कानोंके स्वर्णालंकार झुलाती हुई महा आनन्दमे बोल उठी, " ऐसा होगा, तो मै कालीघाट जाकर पूजा दे आऊँगी। किंतु, लड़की तो मैं ही देखकर पसन्द करूँगी, सो कहे देती हूँ।"

मैने कहा, " इसके लिए अब समय नही है, लड़की तो स्थिर हो चुकी है।"

मेरे गभीर स्वरपर शायद प्यारीने ध्यान दिया। एकाएक उसके हँसते हुए मुखपर एक मैली सी छाया पड़ गई, बोली, " ठीक तो है, अच्छा ही हुआ ! स्थिर हो गई है तो परम सुखकी बात है !"

मैने कहा, " सुख-दुख तो मैं समझता नहीं राजलक्ष्मी, जो बात स्थिर हो चुकी है वही तुम्हे बताता हूँ।"

प्यारी एकाएक गुस्सेसे बोल उठी, " जाओ, चालाकी मत करो, सब बात झूठ है।"

"एक भी बात मिथ्या नहीं है। चिट्ठी देखते ही समझ जाओगी", इतना कहकर खीसेमेंसे मैने दो पत्र बाहर निकाले।

" कहाँ है देखूँ चिट्ठी ", इतना कह हाथ बढाकर प्यारीने दोनो हाथोमें चिट्ठियाँ ले ली। उन्हे हाथमे लेते ही मानो उसके सारे मुँहपर अँधेरा छा गया! दोनो पत्र हाथमे लिये ही लिये वह बोली, " दूसरेका पत्र पढनेकी मुझे ज़रूरत ही क्या है! वह कहाँ स्थिर हुई है ?"

" पढ देखो।"

" मै दूसरेकी चिट्ठी नही पढती !"

" तो फिर दूसरेकी खबर जाननेकी तुम्हे जरूरत भी नही है!"

" मै नही जानना चाहती।" इतना कहकर आँखे मीचकर वह लेट गई। किन्तु दोनों चिट्ठियाँ उसकी मुट्ठीमे ही रह गई। बहुत देरतक वह कुछ न बोली। इसके बाद वह धीरे धीरे उठी, जाकर लैम्प तेज किया और मेजपर दोनों पत्र रखकर स्थिरतासे बैठी। उनमे जो कुछ लिखा था सो शायद उसने दो तीन दफे पढा। इसके बाद वह उठ आई और उसी तरह फिर लेट गई। बहुत देर तक चुप रहनेके बाद वह बोली " सो गये क्या ?"

" नही।"

" इस स्थानपर मै तुम्हे किसी तरह ब्याह न करने दूँगी; वह लड़की अच्छी नही है, उसे मैने बचपनमे देखा है।"

" माँका पत्र पढा ?"

" हाँ, किन्तु काकीके पत्रमे ऐसा कुछ भी नही लिखा है कि तुम्हे उसे गलेमे डालना ही पडेगा। और चाहे वह अच्छी हो, चाहे न हो, पर उस लड़कीको मैं किसी तरह भी घरमे नहीं लाऊँगी।"

" कैसी लड़की घरमे लाना चाहती हो, बता सकती हो ?"

" सो मैं इस समय कैसे बताऊँ ? विचार करके देखना होगा जो !"

थोडी देर चुप रहनेके बाद मै हँसकर बोला, " तुम्हारी पसदगी और वि-

वेचनाके ऊपर निर्भर रहा जाय तो मुझे अपना कुमारपन उतारनेके लिए आगे और एक जन्म ग्रहण करना पड़े,—शायद, उसमे भी पूरा न पड़े। जाने दो, यथा समय, न हो तो, जन्म ग्रहण कर लूँगा, मुझे जल्दी नहीं है। परतु, इस लड़कीका तुम उद्धार कर दो। पाँच सौ रुपये हो तो यह काम हो जायगा, मै उन्हीके मुँहमे सुन आया हूँ।"

प्यारी उत्साहमे आकर उठ बैठी और बोली, "कल ही मै रुपये भेज दूँगी। काकीकी बात मिथ्या नही होने दूँगी।" फिर कुछ देर ठहर कर बोली, "सच कहती हूँ तुमसे, यह लड़की अच्छी नही है, इसीलिए मुझे आपत्ति है, नही तो—"

"नहीं तो?"

"नही तो और क्या! तुम्हारे लायक लड़की जब ढूँढ़ दूँगी, उसी समय इस बातका उत्तर दूँगी, इस समय नही।"

सिर हिलाकर मैने कहा, "तुम फजूल कोशिश मत करो राजलक्ष्मी, मेरे लायक लड़की तुम किसी दिन भी खोजकर न निकाल सकोगी।

वह बहुत देर तक चुप बैठी रहकर एकाएक बोल उठी, "अच्छा, सो शायद न निकाल सकूँ, परन्तु, तुम बरमा जाओगे तो मुझे साथ ले चलोगे?"

उसके प्रस्तावको सुनकर मै हँसा। बोला, मेरे साथ चलनेका तुम्हे साहस होगा?"

प्यारी मेरे मुँहके प्रति तीक्ष्ण दृष्टिपात करके बोली, "साहस! इसे क्या तुम कोई बड़ी कठिन बात समझते हो?"

मै चाहे जो समझूँ, किन्तु तुम्हारे इस सारे घर-द्वार, माल-असबाब, जमीन-जायदाद, आदिका क्या होगा?"

प्यारी बोली, "चाहे जो हो। तुम्हे नौकरी करनेके लिए जब इतनी दूर जाना पड़ा, यह सब रहते हुए भी जब तुम्हारे किसी काम न आया, तब इसे बंकूको दे जाऊँगी।"

इस बातका जवाब मै नही दे सका। खुली हुई खिड़कीके बाहर अँधेरेमे देखता हुआ चुपचाप बैठा रहा।

उसने फिर कहा, "इतनी दूर न जाओ तो न चले? यह सब क्या किसी भी दिन तुम्हारे किसी काममे नहीं आ सकता?"

मै बोला, "नहीं, कभी किसी दिन भी नही।"

प्यारीने गर्दन हिलाकर कहा, "यह मैं जानती हूँ। परन्तु, ले चलोगे तुम मुझे अपने साथ?" इतना कहकर उसने मेरे पैरोंपर फिर अपने हाथ रख दिये। एक दिन जब इसी प्यारीने मुझे अपने मकानसे जबर्दस्ती बिदा कर दिया था तब उस दिनका उसका असाधारण धीरज और मनकी ताकत देखकर मैं अवाक् हो गया था। आज उसीकी इतनी बड़ी दुर्बलता, करुण कण्ठकी यह कातर मिन्नत! यह सब एक साथ याद करके मेरी छाती फटने लगी। परन्तु, किसी तरह भी राजी न हो सका। बोला, "मैं तुम्हे अपने साथ तो नहीं ले जा सकता, परतु, तुम जब बुलाओगी, तभी लौट आऊँगा। मैं कहीं भी रहूँ; हमेशा तुम्हारा ही रहूँगा राजलक्ष्मी!"

"क्या तुम चिरकालतक इस पापिष्ठाके ही होकर रहोगे?"

"हाँ, चिरकाल तक।"

"तब तो फिर, यह कहो कि तुम्हारा कभी विवाह ही न होगा?"

"हाँ, नही होगा। इसका कारण यह है, कि तुम्हारी सम्मतिके विना, तुम्हे दु:ख देकर, इस काममे मेरी कभी प्रवृत्ति नहीं होगी।"

प्यारी अपलक दृष्टिसे कुछ देरतक मेरे मुँहकी ओर देखती रही। इसके बाद उसके दोनो नेत्र आँसुओंसे परिपूर्ण होकर बडी बडी बूँदोंके रूपमे 'टप टप' गिरने लगे। आँखे पोछकर गाढ़-स्वरमे वह बोली, "इस हतभागिनीके लिए तुम जिन्दगी भर सन्यासी बने रहोगे?"

मैने कहा, "हाँ, बना रहूँगा। तुम्हारे पास जो वस्तु मैंने पाई है, उसके बदले संन्यासी बनकर रहनेमे मेरा कोई नुकसान नही है। मै कही भी क्यो न रहूँ, मेरी इस बातपर तुम कभी अविश्वास न करना।"

पल-भरके लिए दोनोकी चार नजरे हुई और दूसरे ही क्षण वह तकिएमे मुँह छिपाकर उलटी लेट गई। उच्छ्वसित क्रन्दनके आवेगसे उसका सारा शरीर काँप-काँपकर और फूल-फूलकर उचकने लगा।

मैने मुँह उठाकर देखा। सारा मकान गहरी नींदसे ढका हुआ था। कहीं कोई जाग नहीं रहा था। केवल एक दफे खयाल आया, कि झरोखेके बाहर अँधियारी रात्रि अपने कितने ही उत्सवोकी प्रिय सहचरी प्यारीके इस हृदय-विदारक अभिनयको मानो आज चुपचाप, आँखे खोलकर, अत्यन्त परितृप्तिके साथ देख रही है।

२

ऐसी ऐसी अनेक बाते देखी हैं जिन्हे कि जीवन-भर भूला नही जा सकता। वे जब कभी याद आ जाती हैं तब उस समयके शब्द तक मानो कानोमे गूँज उठते हैं। प्यारीके अन्तिम शब्द भी इसी तरहके थे। आज भी मै मानो उनकी गूँज सुना करता हूँ। वह अपने स्वभावसे ही कितनी अधिक सयमी थी, इसका परिचय बचपनमे ही उसने बहुत दफे दिया है। और फिर, उसके ऊपर अब इतने दिनोकी सासारिक अभिज्ञता है! उस दफे मेरे बिदा होनेके समय किसी तरह भागकर उसने आत्म-रक्षा की थी। परतु, इस दफे वह किसी तरह भी अपने आपको न सम्हाल सकी, और, नौकर-चाकरोके सामने ही रो पडी। रुँधे हुए कण्ठसे वह बोल उठी, "देखो, मै नासमझ नही हूँ। अपने पापोका भारी दण्ड मुझे भोगना ही पड़ेगा, सो मै जानती हूँ, किन्तु, फिर भी कहती हूँ, हमारा यह समाज बडा निष्ठुर,—बड़ा निर्दय है! इसे भी इसका दण्ड एक दिन भोगना ही पडेगा! भगवान् इस पापकी सजा देगे ही देगे!"

समाजको उसने क्यो इतना बडा अभिशाप दिया सो वह जाने और उसके अन्तर्यामी जाने। मै नही जानता, सो बात नही है, किन्तु, मै चुप हो रहा। बूढ़ा दरबान गाडीका दरवाजा खोलकर मेरे मुँहकी ओर देखने लगा। मै आगे पैर बढ़ा ही रहा था कि प्यारी ऑखोके ऑसुओमेसे मेरे मुँहकी ओर देखकर कुछ हँसी, बोली, "कहॉ जा रहे हो? फिर तो शायद दर्शन होगे नही, एक भिक्षा देते जाओगे?"

मै बोला, "दूँगा, कहो।"

प्यारी बोली, "भगवान् न करे,—किन्तु, तुम्हारी जीवन-यात्रा जिस ढँगकी है उससे,—अच्छा, जहॉ भी रहो, ऐसे समयमे खबर दोगे? शरमाओगे तो नही?"

"नही, शरमाऊँगा नहीं,—खबर ज़रूर दूँगा," इतना कहकर धीरे धीरे मै गाड़ीमे जा बैठा। प्यारी पीछे पीछे आई और उसने अपने ऑचलमे मेरे पैरोकी धूल ले ली।

"अजी सुनते हो?" मैंने मुँह उठाकर देखा कि वह अपने कॉपते हुए होठोको प्राण-पणसे काबूमे रखकर कुछ कहनेकी कोशिश कर रही है। दोनोंकी

नजर एक होते ही फिर उसकी आँखोसे झर-झर पानी झर पड़ा। वह अस्पष्ट रुँधे हुए कण्ठसे धीरेसे बोली, "न जाओ इतनी दूर तो? रहने दो, मत जाओ!"

चुपकेसे मैंने अपनी नजर उस ओरसे फिरा ली। गाडीवानने गाड़ी हाँक दी। चाबुक और चार चकोंके सम्मिलित सपासप और घर-घर-घर शब्दसे शामका समय मुखरित हो उठा। किंतु, इस सबको दबाकर केवल एक रुँधे हुए कण्ठका दबा हुआ रुदन ही मेरे कानोमें गूँजने लगा।

३

पाँच-छः दिन बाद मै, एक दिन भोरके समय, एक लोहेका ट्रक और एक पतला-सा बिस्तर-भर लेकर कलकत्तेके कोयला-घाटपर जा पहुँचा। गाडीसे उतरते-न-उतरते खाकी कुरती पहिने हुए एक कुलीने दोनो चीजोको झपट लिया और उन्हे लेकर पलक-भरमे न जाने वह कहाँ अन्तर्धान हो गया। जब तक खोजते खोजते दुश्चिन्ताके मारे मेरी आँखोमे आँसू न आ गये तब तक उसका कोई पता ही नही चला। .

गाडीपरसे आते आते ही मैंने देखा था कि जेठी× और बड़े रास्तेके बीचकी भूमि नाना रगके पदार्थोंसे लदी हुई है,—लाल, काले, भूरे, गेरुए।—थोड़ा-सा कुहरा भी छाया हुआ था। ऐसा मालूम हुआ कि बछडोका एक झुण्ड शायद चालान होनेके लिए बँधा हुआ है। निकट आकर ध्यानसे देखा तो मालूम हुआ कि चालान तो अवश्य होगा, किंतु, बछडोका नहीं,—मनुष्योका। वे लोग बड़ी-बडी-सी गठरियाँ लिये, स्त्री-पुत्रोके हाथ पकड़े, सारी रात इसलिए इसी तरह ओसमे पडे रहे हैं कि सुबह तड़के ही सबसे पहले जहाजमे एक अच्छी-सी जगहपर कब्जा कर लेगे। अतएव, किसके लिए सभव था कि पीछेसे आकर इन्हे पार करके जेठीके द्वार तक पहुँच सके? थोड़ी ही देर बाद, यह दल जब जागकर खडा हो गया, तब मैंने देखा कि काबुलके उत्तरसे कन्याकुमारीके अत तकका कोई भी प्रदेश अपना प्रतिनिधि इस कोयला-घाटपर भेजना नही भूला है।

सभी हैं। काली काली गजियाँ पहिरे हुए चीनियोका दल भी बाद नहीं गया है। मैं भी तो डेकका (जिससे नीचे और कोई दर्जा नहीं उसका) यात्री

× जहाँ जहाज ठहरते हैं वह स्थान।

था, इसलिए, इन लोगोंको परास्त करके अपने बैठनेके लिए एक जगह मुझे भी प्राप्त करनी थी। किंतु, इसका खयाल करते ही मेरा सारा शरीर बरफ़-सा ठण्डा हो गया। फिर भी, जब जाना ही है और जहाजको छोड़कर और कोई जानेका रास्ता नहीं है, तब जैसे भी हो इन्हीं लोगोंका अनुकरण करना कर्तव्य है,—ऐसा विचार कर मैं अपने मनको जितना ही साहस देने लगा मानो उतना ही वह हिम्मत हारने लगा। जहाज कब आकर किनारेसे लगेगा सो जहाज ही जाने। एकाएक ऑख उठाकर देखा, इस बीचमें ही ये चौदह-पन्द्रह सौ लोग भेड़ोंके झुण्डकी तरह कतार बाँधकर खड़े हो गये हैं। एक हिन्दुस्तानी आदमीसे मैंने पूछा, " भैया, सब लोग अच्छी तरहसे तो बैठे थे,—अब एकाएक कतार बाँधकर क्यों खड़े हो गये? "

वह बोला, " डगदरी होगी। "

" डगदरी क्या चीज होती है, भाई? "

उस आदमीने पीछेसे आये हुए एक धक्केको सम्हालते हुए कुछ झुंझलाहटसे कहा, " अरे, पिलेगका डगदरी। "

बातको समझना और भी कठिन हो गया। किंतु, समझूँ चाहे न समझूँ,—इतने आदमियोंके लिए जो जरूरी है, वह मेरे लिए भी होगी। किंतु, किस कौशलसे अपने आपको इस झुण्डमें घुसेड़ दूँ, यह एक समस्या ही सामने आकर खड़ी हो गई। कहींसे घुसनेके लिए थोड़ी-सी सॉमर है या नहीं, यह खोजते खोजते देखा कि कुछ दूरपर खिदिरपुरके कितने ही मुसलमान सकुचित भावसे खड़े हुए हैं। यह मैंने स्वदेश-विदेश सभी जगह देखा है कि जो काम लज्जित होने जैसा है, उसमें बगाली लोग अवश्य लज्जित होते हैं। वे भारतकी अन्यान्य जातियोंके समान बिना सकोचके धक्कामुक्की मारामारी नहीं कर सकते। इस तरह खड़े होनेमें जो एक तरहकी हीनता है, उसकी शरमके मारे मानो ये सब अपना सिर नीचा कर लेते हैं। ये लोग रंगूनमें दर्जीका काम करते हैं और अनेक दफे आये-गये हैं। पूछनेपर उन्होंने बताया कि यह सब सावधानी,—कहीं यहाँसे बर्म्मामें प्लेग न चली जाय, इसलिए है। डाक्टर परीक्षा करके पास कर दे तभी जहाजपर चढ़ा जा सकता है। अर्थात् , रगून जानेके लिए जो लोग तैयार हुए हैं,—इसकी पहले ही जॉच हो जाना चाहिए, कि वे प्लेगके रोगी हैं या नहीं।

अँग्रेजोंके राज्यमे डाक्टरोंका प्रबल प्रताप है। सुना है, कसाईखानेके यात्रियोंको भी अन्दर जाकर जिबह होनेका अधिकार प्राप्त करनेके लिए इन लोगोका मुँह ताकना पडता है! किन्तु, परिस्थितिकी दृष्टिसे रगूनके यात्रियोंके साथ उनकी जो इतनी अधिक समानता है सो उस समय किसने सोचा था!

क्रमशः पिलेगकी डगदरी निकट आ पहुँची,—पियादे-सहित डाक्टर साहब दिखाई दिये। उस कतारबन्दीकी अवस्थामे गर्दन टेढ़ी करके देखनेका मौका तो नही था; फिर भी, आगे खडे हुए साथियोंके प्रति किया गया परीक्षा-पद्धतिका जितना भी प्रयोग दृष्टिगोचर हुआ, उससे मेरी चिन्ताकी सीमा नहीं रही। ऐसा कायर बंगालियोंको छोडकर वहाँ और कोई नही था जो देहके निम्न भागके उघाडे जानेपर भयभीत हो, परतु, अपने सामनेके साहसी वीर पुरुषोको भी परीक्षाके समय बार बार चौंक उठते देखकर मै बुरी तरह शङ्कित हो उठा। सभी जानते हैं कि प्लेगकी बीमारीमे शरीरका स्थान-विशेष सूज आया करता है। डाक्टर साहब जिस प्रकार लीला-मात्रसे, और निर्विकार चित्तसे, उस सन्देह-मूलक स्थानमे हाथ डालकर सोजिश टटोलने लगे, उससे काठके पुतलोको भी आपत्ति होती। किंतु, भारतवासियोंकी सभ्यता सनातन है, इसलिए, जैसे भी हो, एकदफे चौंककर वे स्थिर हो जाते थे, अगर और कोई जाति होती तो डाक्टरका हाथ मरोडे-तोडे बिना न रहती। सो चाहे जो हो, 'पास' होना जब अवश्य कर्तव्य था, तो फिर, और उपाय ही क्या हो सकता था! यथा-समय आँखे मीचकर, सारा अग सकुचित कर, एक तरहसे हताश ही होकर, डाक्टरके हाथ आत्म-समर्पण कर दिया और 'पास' भी हो गया।

इसके बाद जहाजपर चढ़नेकी पारी थी। किन्तु, डेक-पैसिजरोंकी यह अधि-रोहण-क्रिया किस तरह निष्पन्न होती है,—बाहरके लोगोंके लिए उसकी कल्पना करना भी सभव नही है। फिर भी, कल-कारखानोंमे जिन्होने दाँतेवाले चक्रोंकी प्रक्रिया देखी है, उनके लिए इसका समझना कुछ कुछ सभव हो सकता है। वे जिस तरह आगेके खिंचाव और पीछेके धक्केसे अग्रसर होकर चलते हैं, उसी तरह हमारी यह काबुली-पजाबी-मारवाडी-मद्रासी-मरहठी-बगाली-चीनी-उडियागठित सुविपुल सेना केवल पारस्परिक आकर्षण-विकर्षणके वेगसे, नीचे जमीनसे जहाजके डेकपर, बिना जाने ही चढ़ गई। और वह गति वहाँपर भी नही रुकी। सामनेकी ओर देखा, एक गड्ढेके मुँहपर सीढ़ी लगी हुई है। जहाजके गर्भ-देशमे उतरनेका

यही रास्ता था। नालेके अवरुद्ध मुखको खोल देनेपर वृष्टिका सन्चित जल जिस तरह तीव्र वेगसे नीचे गिरता है, ठीक उसी तरह, यह दल भी स्थान अधिकृत करनेके लिए जीने-मरनेके ज्ञानसे शून्य होकर, नीचे उतरने लगा।

मुझे जहाँ तक याद आता है, मेरी नीचे जानेकी इच्छा नही थी। पैरोंसे चलकर भी नही उतरा। क्षण-भरके लिए मै बेहोश-सा हो गया था, इसलिए, मेरे इस कथनमें यदि कोई सदेह प्रकट करे, तो शायद, कसम खाकर मैं इस अस्वीकार भी न कर सकूँ। होशमे आनेपर देखा कि गर्भ-गृहके मध्य बहुत दूरपर एक कोनेमे मैं अकेला खड़ा हूँ। पैरोंकी ओर निगाह दौड़ाई, तो देखता हूँ कि, इसी बीचमे, जादूके खेलकी तरह पल-भरमे ही कम्बल बिछाकर और बाक्स-पिटारो आदिसे घेरकर हर किसीने अपने अपने लिए निरापद-स्थान बना लिया है और शान्तिसे बैठकर अपने पड़ौसीका परिचय प्राप्त करना शुरू कर दिया है। इतनी देरके बाद, अब कही मेरे उस नम्बरवाले कुलीने आकर दर्शन दिये और कहा, " ट्रक और बिस्तर ऊपर रख आया हूँ, यदि आप कहे तो नीचे ले आऊँ। "

मैंने कहा, " नही, बल्कि, किसी तरह यहाँसे उद्धार करके मुझे ही ऊपर ले चलो। "

क्योकि, वहाँ इतना-सा स्थान भी मुझे कही खाली दिखाई नही दिया कि दूसरोंके बिस्तर खूँदे बगैर, तथा उनके साथ हाथापाईकी सम्भावना उत्पन्न किये बगैर, मैं कहीं अपना कदम रख सकूँ। वर्षा होनेपर ऊपर पानीमे भीग जाऊँ यह अच्छा, किंतु, यहाँ तो एक क्षण-भर भी ठहरना ठीक नही। अधिक पैसोंके लोभसे कुली, काफी कोशिश और बहस-मुबाहिसेके बाद, कम्बलों और सतरंजियोंके किनारोंको उलटता-पुलटता हुआ, मुझे अपने साथ लिये हुए ऊपर आया और मेरा माल-असबाब दिखाकर बख्शिश लेकर चलता बना। यहाँका भी वही हाल था,—बिस्तर बिछानेके लिए जगह नही थी। इसलिए, निरुपाय हो, अपने ट्रंकके ऊपर ही बैठनेका इन्तजाम करके मै एकाग्र चित्तसे माता भागीरथीके दोनो किनारोंकी महिमाका निरीक्षण करने लगा।

स्टीमरने तब तक चलना आरभ कर दिया था। बहुत देरसे प्यास लग रही थी। इन दो घण्टोंके भीतर जो तूफान सिरपरसे गुजर गया, उससे जिनकी छाती शुष्क न हो जाय, ऐसे कठिन हृदय ससारमे बहुत थोड़े ही लोग हैं। किंतु, आफत यह हुई कि साथमे न तो गिलास था और न लोटा। साथके मुसाफिरोंमे यदि कहीं कोई बगाली हो, तो कुछ उपाय हो सकता है,—यह सोचकर

मै फिर बाहर निकला। नीचे उतरनेके उस गड्ढेके निकट पहुँचते ही एक तरहका विकट कोलाहल सुन पड़ा। मेरी जानकारी इतनी विस्तृत नहीं है कि उस कोलाहलकी उपयुक्त तुलना कर सकूँ। गोशालामे आग लगा देनेसे एक प्रकारका कोलाहल होनेकी बात कही जाती है ज़रूर, किंतु, इसके अनुरूप कोलाहल होनेके लिए जितनी बड़ी गोशालाकी आवश्यकता है, उतनी गोशाला, महाभारतके युगमे विराट् राजाके यहाँ यदि रही हो तो जुदी बात है, किन्तु, इस कलिकालमे किसीके यहाँ हो सकती है, इसकी तो कल्पना करना भी कठिन है।

भयपूर्ण हृदयसे दो-एक सीढियाँ उतरकर मैंने झाँका तो देखा कि यात्रियोंने अपना अपना 'नेशनल' (=जातीय) सङ्गीत शुरू कर दिया है। काबुलसे लेकर ब्रह्मपुत्र और कन्याकुमारीसे लेकर चीनकी सीमापर्यन्त जितने भी तरहके सुर-ब्रह्म हैं, जहाजके इस बन्द गर्भके भीतर, वाद्ययन्त्रोंके सहयोगसे, उनका ही समवेत रूपसे अनुशीलन हो रहा है! ऐसे महासगीतको सुननेका सौभाग्य कदाचित् ही सघटित होता है, और, सगीत ही ललित कलाओंमे सर्वश्रेष्ठ है,—यह बात उस जगह खड़े खड़े ही मैंने सम्मानके साथ स्वीकार कर ली। किंतु, सबसे अधिक विस्मयकी बात यह थी कि वहाँ इतने अधिक सगीत-विशारद एकसाथ आ जुटे किस तरह?

मै एकाएक यह स्थिर नही कर सका कि मेरा नीचे उतरना उचित है या नहीं। सुना है, कि अँग्रेजोंके महाकवि शेक्सपियरने कहा है कि संगीतके द्वारा जो मनुष्य मुग्ध नही होता वह खून तक कर सकता है। किन्तु, केवल मिनट-भर सुन लेनेसे ही जो मनुष्यके खूनको जमा दे ऐसे सगीतकी खबर शायद उन्हे भी नही थी। जहाजका गर्भ-गृह वीणापाणिका पीठ-स्थान है या नहीं, सो तो नही जानता, परन्तु, यदि न होता तो यह कौन सोच सकता कि काबुली लोग भी गाना गाते हैं?

एक तरफ यह अद्भुत काण्ड हो रहा था, मैं मुँह बाये देख रहा था, कि एकाएक देखा,—पासमे ही खड़ा हुआ एक व्यक्ति प्राणपणसे हाथ हिला-हिलाकर मेरी नजर अपनी ओर आकर्षित करनेकी कोशिश कर रहा है। बहुत कष्टसे अनेक लोगोंकी लाल लाल आँखे सिरपर रखकर मै उस मनुष्यके पास जा उपस्थित हुआ। उसने ब्राह्मण समझकर मुझे हाथ जोड़कर नमस्कार किया और अपना परिचय दिया कि मै रगूनका विख्यात नन्द मिस्त्री हूँ। पास ही एक विगत-यौवना स्थूल स्त्री बैठी हुई एकटक मेरी ओर देख रही थी। मैं उसके

मुँहकी ओर देखकर स्तमित हो गया। मनुष्यकी इतनी बड़ी बड़ी फुटबाल-सी ऑखे और इतनी मोटी जुड़ी हुई भौंहे पहले कभी न देखी थीं।

नन्द मिस्त्री उसका परिचय देते हुए बोला, "बाबूजी यह है मेरी घर—"

बात पूरी भी न हो पाई थी कि वह फुकार कर गर्ज उठी, "घरवाली! ये मेरे सात भाँवरके स्वामी कहते हैं घरवाली! खबरदार, कहे देती हूँ मिस्त्री, जिस-तिसके आगे झूठ बोलकर मुझे बदनाम मत किया करो!—हाँ!—"

मैं तो विस्मयके मारे हतबुद्धि-सा हो गया।

नन्द मिस्त्री कुछ अप्रतिभ-सा होकर बोला, "आहा, नाराज क्यो होती हो टगर? घरवाली और कहते किसे हैं? बीस साल—"

टगर विकट क्रोधसे बोल उठी, "बीस साल हो गये तो क्या हुआ? फूट करम! जात-वैष्णवकी लड़की होकर मैं कहलाऊँ केवटकी घरवाली! कैसे, किस तरह? बीस बरससे तुम्हारे घरमे हूँ जरूर, किंतु, एक दिन भी तुम्हे चौकेमे घुसने दिया है? यह बात कोई भी नही कह सकता! टगर वैष्णवी मर जायगी, पर अपनी जाति नहीं खोएगी, जानते हो? इतना कहकर वह जात-वैष्णवकी लड़की, अपनी जातिके गर्वसे, मेरे मुँहकी ओर देखती हुई, अपनी दोनो फुट-बालकी-सी आँखे घुमाने लगी।

नन्द मिस्त्री लज्जित होकर बारबार कहने लगा, "देखा बाबूजी, देखा? अभी तक इसे जातिका गर्व है! देखा आपने! मै हूँ, इसीसे सह लेता हूँ, और कोई होता—" बीस बरसकी उस घरवालीकी ओर देखकर वह बेचारा अपनी बात भी पूरी न कर सका।

मै और कुछ न बोला और उससे एक गिलास लेकर वहाँसे चल दिया। ऊपर पहुँचकर उस वैष्णवीकी बाते याद करके मेरी हँसी रोके न रुकी। किंतु, क्षण-भर बाद ही सोचा, यह तो एक सामान्य अशिक्षिता स्त्री ठहरी; पर, गाँवोंमे और शहरोंमे भी क्या ऐसे अनेक शिक्षित पुरुष नही हैं जिनके द्वारा ऐसे ही हास्यकर कार्य अब भी प्रतिदिन हुआ करते हैं और, जो पापके सारे अन्यायोंसे केवल खाना-छूना बचाकर ही परित्राण पा लेते हैं! तब, यह हो सकता है कि इस देशके पुरुषोंके वक्त तो हँसी नहीं आती, आती है सिर्फ औरतोंको देखकर।

आज शामसे ही आकाशमे थोड़े थोड़े बादल जमा हो रहे थे। रातको

एक बजेके बाद मामूली-सा पानी आया और हवा भी चली जिससे कुछ देरके लिए जहाज खूब हिला-डुला। दूसरे दिन सुबहसे ही वह शिष्ट-शान्त भावसे चलने लगा। जिसे समुद्री बीमारी कहते हैं,—मेरा वह उपसर्ग तो शायद छुटपनमे ही नावके ऊपर कट गया था, इसलिए, वमन करनेके सकटको मै एकबारगी ही पार कर गया, किंतु, सपरिवार नन्द मिस्त्रीका क्या हाल हुआ, —किस तरह रात कटी, यह जाननेके लिए मैं नीचे जा पहुँचा। कलके गायको-मेसे अधिकाश उस समय तक भी औंधे पड़े हुए थे। मैने समझ लिया कि रात्रिके उत्पातके कारण ही ये लोग अभी तक महासगीतके लिए तैयार नही हो सके हैं। नन्द मिस्त्री और उसकी बीस बरसकी घरवाली, दोनो गभीर भावसे बैठे हुए थे। मुझे देख उन्होने प्रणाम किया। उनके चेहरेके भावसे जान पड़ा कि कुछ देर पहले ही दोनोमे कुछ कलह-सी जरूर हो चुकी है। मैने पूछा, "रातको कैसा हाल रहा मिस्त्रीजी ?"

नन्द बोला, "अच्छा रहा।"

उसकी घरवाली गरज उठी, "खाक रहा अच्छा! मैयारी मैया कैसा अद्भुतकाण्ड हो गया!"

कुछ उद्विग्न होकर मैंने पूछा, "कैसा काण्ड ?"

नन्द मिस्त्रीने मेरे मुँहकी ओर देखा, फिर जम्हाई ली, चुटकियाँ बजाई, और अन्तमे कहा, "काण्ड ऐसा कुछ नहीं था बाबूजी। कहता हूँ, कलकत्तेकी गलियोंके मोड़ोपर साढ़े बत्तीस तरहका चबेना बेचते हुए आपने किसीको देखा है? यदि देखा हो तो हम लोगोकी अवस्थाको आप ठीक तौरसे समझ सकेंगे। वह जिस तरह अँगूठेके नीचे दो-तीन अगुलियोकी चोट मारकर भुने हुए चावल, दाल, मटर, मसूर, चने, सेमके बीज आदि सबको एकाकार कर देता है, देवताकी कृपासे हम सब भी ठीक उसी तरह गड्डमगड्ड हो गये थे,—अभी ही, कुछ देर हुई, सब कोई अपने अपने कपड़े पहिचान कर फिर अपनी अपनी जगह आकर बैठे हैं।" इसके बाद वह टगरकी ओर देखकर बोला, "बाबूजी, भाग्यसे असल वैष्णवकी जात नहीं जाती, नही तो मेरी टगर—"

टगर भड़के हुए भालूकी तरह गरज उठी "अब फिर वही!"

"नहीं, तो जाने दो," कहकर नन्द उदासीनतासे दूसरी तरफको देखता हुआ चुप हो गया!

एक काबुली दम्पति, जो कि मलिनताके अवतार थे, सिरसे पैरतक पृथिवीकी सारी गदगी लादे हुए अत्यन्त तृप्तिके साथ रोटी खा रहे थे। क्रुद्ध टगर उन हतभागोंके प्रति अपने बड़े बड़े चक्षुओंसे एकटक अग्नि-वर्षण करने लगी। नन्दने अपनी घरवालीको उद्देश करके प्रश्न किया, "तो फिर आज खाना-पीना कुछ न होगा, क्यों ?"

घरवालीने कहा, "मौत और किसे कहते हैं! होगा कैसे, सुनूँ तो ?"

मामला न समझ सकनेके कारण मैंने कहा, "अभी तो बड़ी सकार है, कुछ बेला चढ जानेपर—"

नन्द मेरे मुँहकी ओर देखकर बोला, "कलकत्तेसे एक हाँडीमें बढ़ियाँ रसगुल्ले लाया था, बाबूजी, जहाजपर सवार होने तक कहता रहा, 'आओ टगर, कुछ खा लेवें, आत्माको कष्ट न दे,' परतु नहीं,—'मैं रगून ले जाऊँगी।' (टगरके प्रति)—ले अब ले जा रंगून, क्या ले जाती है!"

टगरने, इस क्रुद्ध अभियोगका स्पष्ट प्रतिवाद न कर, क्षुब्ध अभिमानसे एक दफे मेरी ओर देखा और फिर वह उस हतभागे काबुलीको अपनी नजरसे पहलेके समान ही दग्ध करने लगी।

मैंने धीरेसे पूछा, "क्या हुआ, रसगुल्लोंका ?"

नन्द टगरको लक्ष्य करके कटाक्ष करता हुआ बोला, "उनका क्या हुआ सो नहीं कह सकता। वह देखो न फूटी हाँडी, और वह देखो बिछौनेमें गिरा हुआ रस;—इससे ज़्यादा कुछ जानना चाहो तो पूछो उस हरामजादेसे।" इतना कहकर टगरकी दृष्टिका अनुसरण कर वह भी कठोर दृष्टिसे उसकी ओर ताकने लगा।

मैंने बड़ी मुश्किलसे हँसी रोकते हुए, मुँह नीचा करके, कहा, "तो जाने दो, साथमें चिउड़ा तो है!"

नन्द बोला, "उस ओरसे भी छुट्टी मिल गई है। बाबूजीको एक दफे दिखा तो दो, टगर!"

टगरने एक छोटी-सी पोटलीको पैरोंसे ठुकराते हुए कहा, "दिखा दो न तुम्हीं—"

नन्द बोला, "जो भी कहो बाबू, काबुली जात नमकहराम नहीं कही जा सकती। ये लोग जिस तरह रसगुल्ले खा जाते हैं, उसी तरह अपने काबुलदेशकी

मोटी रोटियाँ भी तो बाँध देते हैं,—फेंकना नही टगर, रख छोड़, तेरे ठाकुरजीके भोगके काममे आ जायँगी।

नन्दके इस परिहाससे मै जोरसे हँस पड़ा, किन्तु, दूसरे ही क्षण टगरके मुँहकी ओर देखकर डर गया। क्रोधके मारे उसका सारा मुँह काला हो गया। ऊँचे कण्ठसे वज्र-कर्कश शब्दोमे जहाजके सब लोगोको चौंकाकर वह चिल्ला उठी, "जात तक मत जाना भला, मिस्त्री,—कहे देती हूँ, अच्छा न होगा, हाँ—"

उसकी चिल्लाहटसे जिन लोगोने मुँह उठाकर उस ओर देखा, उनकी विस्मित दृष्टिके सामने, शरमके मारे, नन्दका मुँह जरा-सा रह गया। टगरको वह बखूबी जानता था। अपनी निरर्गल दिल्लगीके कारण पैदा हुए उसके क्रोधको किसी तरह शात करनेमे ही उसकी कुशल थी। शरमिन्दा होकर वह चटसे बोल उठा, "सिरकी कसम टगर, गुस्सा मत हो, मै तो केवल मजाक कर रहा था।"

टगरने वह बात जैसे सुनी ही नहीं। पुतलियाँ और भौंहे एक बार बाई ओर, और एक बार दाहिनी ओर, घुमाकर और कण्ठके स्वरको और एक पर्दा ऊपर चढाकर वह बोली, "मजाक कैसा! जातिको लेकर भी क्या कोई मजाक किया जाता है! मुसलमानोकी रोटियोसे भोग लगाया जायगा? केवटके मुँहमे आग,—जरूरत हो, तो तू ही न रख छोड,—बापको इनका पिण्ड-दान दे देना!"

डोरी छोड़े हुए धनुष्यकी तरह नन्द चटसे सीधा होकर खड़ा हो गया और उसने टगरका झोटा पकड़ लिया, "हरामजादी, तू बाप तक जाती है!"

टगर कमरका कपड़ा सम्हालती हुई हाँफते हाँफते बोली, "और हरामजादे, तू जाति तक जायगा!" इतना कहकर कानोतक मुँह फाड़कर उसने नन्दकी भुजाके एक हिस्सेमे काट खाया। मुहूर्त्त-भरमे ही नन्द मिस्त्री और टगर वैष्णवीका मल्ल-युद्ध गहरा हो उठा। देखते ही देखते सब लोग घेरकर खडे हो गये। भीड़ हो गई। समुद्री बीमारीकी तकलीफको भूलकर सारे 'हिन्दुस्तानी'× ऊँचे कण्ठसे वाहवाही देने लगे, पजाबी छिः छिः करने लगे, उड़िया चीं चीं करने लगे।—एक तरहसे पूरा लंका-काण्ड मच गया। मै सन्नाटेमे आ गया और मेरा मुँह विवर्ण हो गया। इतनी मामूली-सी बातपर निर्लज्जताका ऐसा नङ्गा नाच हो सकता है, इसकी मैं कल्पना भी न कर सकता था। और वह भी, एक बंगाली स्त्री-पुरुषके द्वारा जहाज-भरके लोगोके सामने हो रहा है, यह

× हिन्दी भाषाभाषी, यू० पी० के लोग।

देख मै लज्जाके मारे जमीनमे गड़ा जाने लगा। पासमे ही एक जौनपुरी दरबान अत्यन्त सतोषके साथ तमाशा देख रहा था। मेरी ओर लक्ष्य करके बोला, "बाबूजी, बङ्गालिन तो बहुत अच्छी लड़नेवाली है! हटती ही नही।"

मै उसकी ओर आँख उठाकर देख भी न सका। चुपचाप गर्दन नीची किये किसी तरह भीड़को चीरते हुए ऊपर भाग आया।

४

उस दिन फिर मेरा जी न चाहा कि नीचे जाऊँ, इसलिए, नन्द और टगरके युद्धका अन्त किस तरह हुआ,—संधि-पत्रमे कौन-कौन-सी शर्ते निश्चित हुई, सो मैं कुछ नहीं जानता। परतु, बादमे मैंने देखा कि शर्ते चाहे जो हो, विपत्तिके समय वह 'स्क्रैप आफ् पेपर' (कागजका रद्दी टुकडा) किसी काम नहीं आता। जब जिसे जरूरत होती है, खिलवाडकी तरह उसे फाड फेकता है और दूसरेका व्यूह-भेद कर डालता है। बीस बरससे ये दोनो यही करते आये हैं तथा और भी बीस बरस तक ऐसा न करते रहेंगे, इसकी शपथ शायद स्वय विधाता भी नही कर सकेंगे।

सारे दिन तो आकाशमे बादलोंके टुकडे यहाँसे वहाँ घूमते रहे, परतु, अब शामके लगभग एक गहरा काला बादल, सारे क्षितिजको ढँककर, धीरे धीरे सिर उठा कर, ऊपर आने लगा। मालूम हुआ, कि खलासियोके मुँह और आँखोपर मानो घबराहटकी छाया आ पडी है। उनके चलने-फिरनेमे भी मानो एक प्रकारके घबराहटके चिह्न नजर आने लग हैं, जो इसके पहले नही थे।

एक बूढ़े-से खलासीको बुलाकर पूछा, "अजी चौधरीजी, आज रातको भी क्या कलहीके समान आँधी आवेगी?"

विनयसे चौधरीजी वशमे हो गये। खडे होकर बोले, "मालिक, नीचे चले जाइए, कप्तानने कहा है, साइक्लोन (बवण्डर) उठ सकता है।"

पन्द्रह मिनट बाद ही देखा कि उसका कथन निर्मूल नहीं है। ऊपर जितने भी यात्री थे उन सबको खलासी लोग एक तरहसे ज़बरन् 'होल्डर' मे उतारने लगे। दो-चार लोगोंके आपत्ति करनेपर सेकण्ड आफिसरने खुद आकर उन्हे धक्के मारकर उठा दिया और उनके बिस्तर वगैरह लातोंसे हटाना शुरू कर दिया। मेरा ट्रंक, बिस्तर आदि तो खलासी लोग झटपट नीचे उठा ले गये; किन्तु, मै

खुद एक तरफ खिसक गया। मैंने सुना कि सबको,—अर्थात्, जो हतभागे दस रुपयेसे अधिक किराया नहीं दे सकते थे उन्हें,—उस जहाजके गर्भ-गृहमें भरके उसका मुँह बन्द कर दिया जायगा। उनकी खैरियतके लिए और जहाजकी भी खैरियतके लिए, यही एक उपाय था।

किंतु, मुझे खुद अपने लिए खैरियतकी यह व्यवस्था किसी तरह पसंद नहीं आई। इसके पहले साइक्लोन नामक वस्तुको, समुद्रमें तो क्या, ज़मीनपर भी नहीं देखा था। कैसा इसका उपद्रव होता है, कैसा इसका स्वरूप है और अमंगल करनेकी कितनी इसकी शक्ति है, मैं बिल्कुल नहीं जानता था। मन-ही-मन सोचने लगा कि मेरे भाग्यसे यदि ऐसी वस्तुका आविर्भाव होना सन्निकट ही है, तो फिर उसे बगैर अच्छी तरह देखे नहीं छोड़ूँगा। भाग्यमें जो बदा हो सो हो। और तूफानमें यदि जहाज डूबना ही है तो, इस तरह प्लेगके चूहेकी तरह पिंजरेमें कैद होकर और सिर पटक-पटककर, खारी पानीमें क्यों मरूँ? इसकी अपेक्षा तो जब तक बने, हाथ-पाँव हिलाकर, लहरोंके हिंडोलेपर झूलते-उतराते हुए, एक गोता लगाकर पातालके राजमहलका अतिथि होना अच्छा। किंतु, यह उस समय मुझे मालूम न था कि राजाका जहाज आगे-पीछे लाखों-करोड़ों हिंस्र अनुचरोंके बगैर काले पानीमें एक डग भी नहीं चलता और उन्हें लोगोंका कलेवा कर डालनेमें घड़ी-भरकी भी देर नहीं लगती।

बहुत समयसे थोड़ी थोड़ी वृष्टि हो रही थी। शामके लगभग हवा और वृष्टि दोनोंका ही वेग बढ़ गया। यह हालत हो गई कि भाग निकलनेकी भी कोई जुगत न रही। जहाँ भी मिले सुविधानुसार एक आश्रय-स्थान खोजे बगैर काम नहीं चल सकता। शामके अँधेरेमें जब मैं अपने स्थानपर वापिस आया तब ऊपरका डेक निर्जन हो गया था। मस्तूलके पास उचककर देखा कि ठीक सामने ही बूढ़ा कप्तान हाथमें दूरबीन लिये ब्रिजके ऊपर यहाँसे वहाँ दौड़ रहा है। इस डरसे कि एकाएक उसकी शुभ दृष्टिमें पड़कर फिरसे, इतने कष्टके बाद भी, दुबारा उसी गड्ढेमें न घुसना पड़े, एक ऐसी जगह खोजने लगा जहाँ सुभीतेसे बैठ सकूँ। खोजते खोजते आखिर एक ऐसी जगह मिल भी गई जिसकी कि मैंने पहले कभी कल्पना भी नहीं की थी। एक किनारे बहुत-सी भेड़ों, मुर्गियों और बतखोंके पिंजड़े एकके ऊपर एक गँजे हुए थे। उछलकर मैं

उन्हींके ऊपर बैठ गया। जान पडा, ऐसी निरापद जगह शायद जहाज-भरमे और कही नही है। किंतु, तब तक भी बहुत-सी बाते जानना बाकी थी।

वृष्टि, हवा, अधकार और जहाजका झूलना,—ये सभी धीरे धीरे अधिकाधिक बढ़ने लगे। समुद्रकी लहरोका आकार देखकर मैने मन-ही-मन सोचा,—यही है शायद वह साइक्लोन, किंतु, वह सागरके समीप सिर्फ गौके खुरके गढेके समान ही था,—इस बातको अच्छी तरह हृदयगम करनेके लिए मुझे और भी थोडी देर ठहरना पड़ा।

एकाएक छातीके भीतर तक कँपकँपी पैदा करता हुआ जहाजका भोपू बज उठा। ऊपरकी ओर ताका तो जान पड़ा, मानो किसी मत्रके बलसे आकाशका चेहरा ही बदल गया है। वे बादल अब नहीं रहे,—मालूम हुआ, कि सब तरफसे छिन्न-विच्छिन्न होकर जैसे सपूर्ण आकाश हलका होकर कही ऊपरकी ओर उडा जा रहा है। दूसरे ही क्षण समुद्रके एक प्रान्तसे एक ऐसा विकट शब्द तेजीमे आकर कानोमे पैठ गया कि मै नही जानता उसकी किसके साथ तुलना करूँ।

लड़कपनमे अँधेरी रातोमे दादीकी छातीसे लगकर एक कहानी सुना करता था कि किसी राजपुत्रने डुबकी लगाकर तालाबके भीतरसे एक चाँदीकी डिबिया निकाली थी और उसमे बन्द सात सौ राक्षसियोके प्राणरूप एक सोनेके भौरेको चुटकीसे मसलकर मार डाला था। फिर वे सात सौ राक्षसियाँ मृत्यु-यत्रणासे चीखती चिल्लाती हुई सारी पृथ्वीको पैरोके बोझसे कुचलती चूर्ण-विचूर्ण करतीं दौड़ आई थी। वैसा ही यह भी कहीं कोई विप्लव-सा हो रहा है, ऐसा जान पड़ा, परतु, इस दफे सात सौ नहीं सौ करोड राक्षसियाँ हैं,—वे उन्मत्त भावसे कोलाहल करती हुई इसी ओर दौडी आ रही हैं। आ भी पडी,—राक्षसियाँ नही, परतु, तूफानी हवाएँ। तब, मैंने सोचा कि, इनकी अपेक्षा तो उन राक्षसियोका आना ही कहीं अच्छा था।

इस दुर्जय वायुकी शक्तिका वर्णन करना तो बहुत दूरकी बात है, समग्र चेतनासे अनुभव करना भी मानो मनुष्यके सामर्थ्यके बाहिर है! सपूर्ण ज्ञान-बुद्धिको लुप्त करके केवल एक ही धारणा मेरे मनके भीतर अस्पष्ट और निसंदिग्ध रूपसे जागती रह गई कि दुनियाकी मियाद एकबारगी खत्म होनेमे अब और कितनी-सी देर है! पासमे ही जो एक लोहेका खूँटा था, गलेकी चादरसे मैंने अपने आपको उसीसे बाँध रक्खा था। प्रत्येक क्षण मेरे मनमें यही

ख्याल उठने लगा कि बस, मुझे यह हवा इस दफे ही खूँटेसे छुड़ा देगी और उड़ा ले जाकर समुद्रमे जा पटकेगी।

एकाएक जान पड़ा, कि काला पानी मानो भीतरके धक्कोसे घरघराता हुआ क्रम-क्रमसे जहाजके ऊपर चढ़ रहा है। दूरको आँख उठाई तो उस तरफसे दृष्टिको पुनः वापस न लौटा सका। एक दफे जान पड़ा, वह तो कोई पहाड है, किंतु दूसरे ही क्षण जब भ्रम भग हुआ तब हाथ जोड़कर मैंने कहा, "भगवन्, जैसे तुमने ये दोनो नेत्र दिये थे, वैसे ही आज इन्हें सार्थक भी कर दिया! इतने दिनो तक तो ससारमे सर्वत्र ही आँखे खोले घूमता फिरा हूँ। किन्तु, तुम्हारी इस सृष्टिकी तुलना तो कही भी नहीं देखी थी! जहाँ तक दृष्टि पहुँचती है एक अचिन्तनीय विराट्काय महातरङ्ग सिरपर चाँदी-सा शुभ्र किरीट धारण किये तेज चालसे आगे बढती हुई आ रही है। जगतमे और भी क्या कोई इतना बड़ा विस्मय है?"

समुद्रमे न जाने कितने लोग आया-जाया करते हैं; मै खुद भी तो कितनी ही दफे इस रास्ते गया-आया हूँ, किन्तु, ऐसा दृश्य तो पहले कभी कही नहीं देखा। इसके सिवाय, जिस मनुष्यने आँखों नहीं देखा, उसे समझाकर यह बताना कल्पनाके बापके लिए भी सभव नहीं कि पानीकी लहर किसी तरह इतनी बडी हो सकती है।

मन ही मन बोला, हे तरग-सम्राट्! तुम्हारी टक्करसे हमारा जो कुछ होगा, उसे तो हम जानते ही हैं, किंतु, अब भी तो तुम्हे यहाँ तक आ पहुँचनेमे आखिर आधे मिनटकी देर है, तब कमसे कम उतने समय तक तो मै अच्छी तरह जी-भरकर तुम्हारे कलेवरको देख लूँ।

यह भाव किसी वस्तुकी सुविपुल ऊँचाई और उससे भी अधिक विस्तार देखकर ही इस तरह मनमे उत्पन्न नहीं हुआ करता, क्योकि, यदि ऐसा हो तो इसके लिए हिमालयका कोई भी अग-प्रत्यङ्ग यथेष्ट है। किंतु, जो यह विराट् व्यापार सजीवके समान दौडा आ रहा है,—उसकी अपरिमेय शक्तिकी अनुभूतिने ही मुझे अभिभूत कर डाला।

किन्तु, समुद्र-जलके टकरानेसे जो एक तरहकी ज्वाला-सी बार बार चमक उठती है, वह ज्वाला विचित्र रेखाओंमें यदि इसके सिरपर न खेलती होती, तो गभीर कृष्ण जल-राशिकी विपुलताको मैं इस अधकारमे शायद उस तरह न

देख पाता। इस समय जितनी भी दूर तक मेरी दृष्टि जाती है उतनी ही दूर तक इस आलोक-मालाने मानो छोटे छोटे प्रदीपोंको जलाकर इस भयङ्कर सौन्दर्यका चेहरा मेरी आँखोंके सामने खोल दिया है।

जहाजका भोंपू असीम वायु-वेगसे थर थर काँपता हुआ लगातार बजने लगा और भयार्त्त खलासियोंका दल अल्लाहके कानों तक अपना आकुल आवेदन पहुँचा देनेके लिए गला फाड़-फाड़कर एकसाथ चिल्लाने लगा।

जिसके शुभागमनके निमित्त इतना भय, इतनी चीख-पुकार,—इतना उद्योग-आयोजन, हो रहा था, वह महातरंग आखिर आ पहुँची। एक प्रकाण्ड प्रकारकी उलट-पलटके बीच हरवल्लभके समान हमें भी पहले जान पड़ा कि निश्चयसे ही हम डूब गये हैं इसलिए, दुर्गाका नाम जपनेसे अब और क्या हो सकता है! आसपास, ऊपर-नीचे, चारों ओर काला जल ही जल है! जहाज-समेत सब लोग पातालके राजमहलमें निमंत्रण खाने जा रहे हैं,—इसमें अब कोई संदेह नहीं रहा। इस समय चिन्ता केवल यही है कि खाना-पीना आदि वहाँ न जाने किस किस्मका होगा?

किन्तु, करीब मिनट-भर बाद ही दिखाई दिया,—नहीं,—डूबे नहीं हैं, जहाजसमेत हम सब केवल जलके ऊपर उतरा रहे हैं। इसके सिवाय, लहरके ऊपर लहर आना भी खतम नहीं हुआ है, इसलिए हम लोगोंका हिंडोला झूलना भी समाप्त नहीं हुआ है। इतनी देरके बाद, अब पता लगा कि क्यों कप्तान साहबने लोगोंको जानवरोंके समान गढ़ेमें डालकर ताला लगवा दिया है। डेकके ऊपरसे बीच-बीचमें मानो जलकी धारा बह जाने लगी। मेरे नीचेकी बत्तखें और मुर्गियाँ कितने ही दफे फड़फड़ाकर और भेड़ें कई बार 'मैंमैं' करके भव-लीला समाप्त कर गईं। सिर्फ मैं ही उनके ऊपर आश्रय ग्रहण किये, लोहेके खूँटेको जोरसे पकड़े हुए, अपनी भव-लीला सुरक्षित बनाये रहा।

किंतु, इसी समय एक और प्रकारकी आफत आ जुटी। केवल जलके छींटे ही मेरे शरीरमें सुईकी तरह छिद रहे हो सो बात नहीं,—समस्त कपड़े और धोतीके भीग जानेसे और प्रचण्ड वायुसे इतनी ठंड लगने लगी कि दाँत कटाकट बजने लगे। खयाल आया, कि हालमें जलमें डूबनेसे तो किसी तरह बच भी सकता हूँ, किन्तु,

निमोनियाके हाथसे किस तरह परित्राण पाऊँगा ? और, यह तो मैंने निःसशय अनुभव किया कि इसी तरह यदि और भी कुछ देर बैठा रहूँगा तो परित्राण पाना सचमुच ही असंभव हो जायगा। इसलिए, जिस तरह भी हो, इस स्थानका परित्याग करके किसी ऐसी जगह आश्रय लेना चाहिए जहाँ कि जलके छींटे बछाके फलकी तरह शरीरमें न चुभें। एक बार सोचा कि भेड़ोंके पिंजरेमे घुस जाऊँ तो कसा हो ? किंतु, वह भी कितना सुरक्षित है ? उसके भीतर यदि खारे जलकी धारा प्रवेश कर जाय तो ठीक 'मैं-मैं' करके न सही पर 'माँ-माँ' करके अन्तमे अवश्य ही इह-लीला समाप्त करनी पडेगी।

सिर्फ एक उपाय है। जहाज जब पार्श्व-परिवर्तन करता है तब भागनेका कुछ मौका मिल जाता है, इसलिए, उस समय यदि और कहीं जाकर घुस सकूँ तो शायद जान बच जाय। जो सोचा, वही किया। किंतु, पिंजरोपरसे नीचे उतरकर, तीन बार दौड़कर और तीन बार बैठकर, किसी तरह जब मै सेकण्ड क्लास केबिनके द्वारपर पहुँचा, तब देखा, द्वार बद है। लोहेके किवाड़ोंने, हजार धक्कामुक्की करनेपर भी, रास्ता नहीं दिया। इसलिए, वही रास्ता फिर उसी तरह तय करके मैं फर्स्ट क्लासके दरवाजेपर आ उपस्थित हुआ। इस दफे भाग्य दवताने सुप्रसन्न होकर एक निराले कमरेमे आश्रय दे दिया, और, जरा भी दुविधा न करके मैं किवाड बद करके पलगपर जा सोया।

रातके बारह बजेके भीतर ही तूफान तो थम गया, किंतु, समुद्रका गुस्सा दूसरे दिन भोर तक भी शात न हुआ।

मेरे सामानका और साथी मुसाफिरोका क्या हाल हुआ, और, खास तौरसे सपत्नीक मिस्त्रीजीने किस तरह रात बिताई,—यह जाननेके लिए सुबह मैं नीचे उतर गया। कल नन्द मिस्त्रीने जरा दिल्लगी करते हुए कहा था कि, 'बाबूजी, साढ़े बत्तीस प्रकारके चबेनेके समान हम लोग आपसमे गड्डमगड्ड हो गये थे। अभी ही, कुछ देर हुई, सब कोई अपनी अपनी जगह आकर बैठे हैं !' आजका गड्डमगड्ड साढ़े बत्तीस प्रकारमे गिना जा सकता है या नहीं, सो मुझे नहीं मालूम, किंतु, इस समय तक कोई भी अपने निजी स्थानपर लौटकर न आने पाया था, यह मैंने अपनी आँखों देखा।

उन लोगोंकी अवस्था देखनेपर सचमुच ही रुलाई आने लगी। इन तीन-

चार सौ यात्रियोंमेंसे किसीके समर्थ रहनेकी बात तो दूर,—शायद, अक्षत भी कोई नहीं बचा था।

औरतें सिलपर जिस तरह लोढ़ेसे मसाला बाँटती हैं, कलका साइक्लोन इन तीन-चार सौ लोगोंका ठीक उसी तरह सारी रात मसाला बाँटता रहा। सारे माल-असबाबके सहित,—बक्स पेटियों आदिके सहित, ये सब लोग रातभर जहाजके इस किनारेसे उस किनारे तक लुढ़कते फिरे हैं। वमन तथा अन्य दो क्रियाएँ इतनी अधिक की गई हैं कि दुर्गन्धके मारे खड़ा होना भी भारी हो रहा है और इस समय डाक्टर बाबू जहाजके मेहतर और खलासियोंको साथ लिये इन लोगोंका 'पङ्कोद्धार' करनेकी व्यवस्था कर रहे हैं।

डाक्टर बाबू ऊपरसे नीचे तक मेरा बार बार निरीक्षण करके शायद मुझे सेकण्ड क्लासका मुसाफिर समझ बैठे थे, फिर भी, अत्यन्त आश्चर्यके साथ बोले, "महाशय तो खूब ताजे दिख रहे हैं, जान पड़ता है कि आराम करनेके लिए कोई हैमॉक (Hammock=जहाजपर रहनेवाला एक तरहका झुलन-खटोला) पा गये थे, क्यों न?

"हैमॉक कहाँसे पाता महाशय, पाया था एक भेड़ोंका पींजरा। इसीलिए तरो-ताज़ा दीख रहा हूँ।"

डाक्टर बाबू मुँह फाड़कर मेरी ओर ताकते रह गये। मैं बोला, "डाक्टर बाबू, यह अधम भी इसी नरक-कुण्डका यात्री है। किंतु, कमजोर होनेके सबब यहाँ घुस न सका,—शुरूसे ही डेकके ऊपर रहा आया। कल साइक्लोनकी खबर पाकर कुछ देर भेड़ोंके पींजरोंके ऊपर बैठकर, और बाकी रात फर्स्ट क्लासके एक कमरेमें अनधिकार प्रवेश करके, आत्म-रक्षा की है। क्या कहते हैं आप, मैंने कुछ अनुचित तो नहीं किया?"

सारा इतिहास सुनकर डाक्टर बाबू इतने प्रसन्न हुए कि उसी क्षण उन्होंने मुझे अपने निजी कमरेमें बाकी दो दिन काटनेके लिए सादर निमं ण दे दिया। अवश्य ही उस निमन्त्रणको मैं स्वीकार नहीं कर सका,—केवल एक चेयर मैंने उनसे ले ली।

दोपहरको भूखकी मारसे मुर्देकी तरह चेयरपर पड़ा हुआ ब्रह्माण्डकी समस्त खाद्य-वस्तुओंका ध्यान कर रहा था,—कहाँ जाकर क्या कौशल करूँ कि कुछ खानेको मिल जाय। इसी समय, जब कि मैं इस दुश्चिन्तामें डूबा हुआ था,

खिदिरपुरके मुसलमान दर्जियोंमेंसे एकने आकर कहा, " बाबू साहब, एक बगाली औरत आपको बुला रही है।"

" औरत ? " समझा कि टगर होगी। क्यो बुला रही है, सो भी अनुमान कर लेना मेरे लिए कठिन नहीं था। निश्चय ही मिस्त्रीके साथ स्वामी और स्त्रीके स्वत्त्व सिद्ध करनेके व्यापारमे फिर मत-भेद उपस्थित हो गया है। किन्तु, मेरी जरूरत क्यो आ पडी ? Trial by ordeal (अग्नि-परीक्षा) के सिवाय, बाहरके किसी आदमीने आकर किसी दिन इसकी मीमासा कर दी हो,—यह सोचना भी कठिन है।

मैंने कहा, " घण्टे-भर बाद आऊँगा, कह देना।"

उस मनुष्यने कुण्ठित होकर कहा, " नहीं बाबू साहब, बडी मिन्नत करके बुला रही है—"

" मिन्नत करके ! " किन्तु, टगर तो मिन्नत करनेवाली औरत नही है ? पूछा, " उसके साथका मर्द क्या कर रहा है ? "

वह बोला, " उसीकी बीमारीके कारण तो आपको बुला रही है।"

बीमार होना बिल्कुल ही अचरजकी बात नहीं थी, इसलिए, मैं उठ खडा हुआ। वह मुझे अपने साथ नीचे ले गया। काफी दूरपर एक कोनेमे कुडली किये हुए मोटे मोटे रस्से रक्खे हुए थे, उन्हीकी आडमे एक बाईस-तेईस वर्षकी बगाली स्त्री बैठी थी। पहले कभी उसपर मेरी नज़र नही पडी थी। पासमे ही एक मैली सतरजीके ऊपर करीब इसी उम्रका एक अत्यन्त क्षीणकाय युवक मुर्देकी तरह आँखे मूँदकर पडा हुआ है,—यही बीमार है।

मेरे निकट आते ही उस औरतने धीरे धीरे अपने सिरका वस्त्र आगे खींच लिया, किंतु, मै उसका मुँह देख चुका था।

वह मुख सुदर कहा जाय तो बहस उठ सकती है, किंतु फिर भी, उपेक्षा करने योग्य नहीं था। ऊँचा कपाल स्त्रियोकी सौन्दर्य-तालिकामे कोई स्थान नही रखता,—यह मुझे मालूम है, फिर भी, इस तरुणीके चौड़े मस्तकपर बुद्धि और विचार-शक्तिकी एक ऐसी छाप मारी हुई देखी जिसे मैंने कदाचित् ही देखा है। मेरी अन्नदा जीजीका कपाल भी प्रशस्त था। इसका भी बहुत-कुछ उसी तरहका था। माँगमें सिन्दूर झलक रहा था, हाथमे लोहेकी चूडियाँ,+

+ सधवाका चिह्न।

और शखके वलयोको छोड़कर और कोई अलङ्कार नही था। ऑगमें एक सीधी सादी रंगीन किनारकी साड़ी थी।

परिचय न होनेपर भी इतने स्वाभाविक ढगसे उसने बात की कि मै विस्मित हो गया। वह बोली, "आपके साथ डाक्टर बाबूका तो परिचय है, क्या एक दफ उन्हे आप बुला सकते हैं ?"

मैंने कहा, "आज ही उनसे परिचय हुआ है। फिर भी, जान पड़ता है, डाक्टर बाबू भले आदमी हैं।—किंतु, उन्हें क्यो बुलाती हो ?"

वह बोली, "यदि बुलानेपर विजिट देनी पड़ती हो, तो फिर जरूरत नही है, न होगा, तो ये ही थोड़ा कष्ट करके ऊपर चले चलेंगे।" इतना कहकर उसने उस रोगी आदमीको दिखा दिया।

मैंने सोचकर कहा, "जहाजके डाक्टरको शायद कुछ भी देना नहीं होता। किन्तु, इन्हे हो क्या गया है ?"

मैंने सोचा था कि रोगी इसका पति है; किन्तु, बातचीतसे कुछ सदेह हुआ। उस मनुष्यके मुँहके ऊपर कुछ झुककर उसने पूछा, "घरसे चलते समयसे ही तुम्हे पेटकी कुछ बीमारी थी न ?"

उस मनुष्यने सिर हिला दिया, तब इसने सिर ऊपर उठाकर कहा, "हाँ, इन्हे पेटकी बीमारी देशमे ही हुई थी, किन्तु, कलसे बुखार आ गया है। इस समय देखती हूँ कि बुखार तेज हो आया है, कुछ दवाई दिये बिना काम न चलेगा।"

मैंने भी स्वय हाथ डालकर उसके शरीरका ताप देखा, वास्तवमे बुखार खूब तेज था। डाक्टरको बुलाने मै ऊपर चला गया।

डाक्टर बाबू नीचे आये, रोग-परीक्षा करके और दवाईका पुरजा देकर बोले, "चलो श्रीकान्त बाबू, कमरेमें चलकर कुछ गप-शप करे।"

डाक्टर बाबू खूब रँगीले थे। अपने कमरेमे ले जाकर बोले, "चाह पीते हैं?"

मैंने कहा "हाँ, पीता हूँ।"

"और बिस्कुट ?"

"सो भी खाता हूँ।"

"अच्छा।"

खाना-पीना समाप्त होनेके बाद दोनो आमने-सामने कुर्सियोपर बैठ गये। डाक्टर बाबू बोले, " आप कैसे जा भिड़े उस औरतसे ? "

मैंने कहा, " उसने ही मुझे बुला भेजा था। "

डाक्टर बाबू इस तरह सिर हिलाकर, मानो सब कुछ जानते हो, बोले, " बुलाना ही चाहिए,—शादी-वादी की है या नहीं ? "

मैंने कहा, " नहीं। "

डाक्टर बाबू बोले, " तो बस, भिड़ जाओ, ऐसी कुछ बुरी नही है। उस आदमीका चेहरा देखा, उसपर टाईफाइडके लक्षण नजर आते हैं। कुछ भी हो, वह अधिक दिन न टिकेगा, यह निश्चित है। इस बीच उसपर नजर बनाये रखना। कहीं कोई और साला न भिड़ जाय। "

मै अवाक् होकर बोला, " आप यह सब क्या कह रहे हैं, डाक्टर बाबू ? "

डाक्टर बाबू जरा भी अप्रतिभ हुए बिना बोले, " अच्छा, वह छोकरा ही उसे घरसे निकाल लाया है, या उसीको वह बाहर निकाल लाई है,—तुम्हें क्या मालूम होता है, श्रीकान्त बाबू ?—खूब फारवर्ड है ? बातचीत तो बहुत अच्छी करती है। "

मैंने कहा, " इस तरहका ख्याल आपके मनमे क्यो आया ? "

डाक्टर बाबू बोले," हरएक ट्रिपमे ही तो देखता हूँ कि एक-न-एक है ही। पिछली दफे भी बेलघरकी एक ऐसी ही जोड़ी थी। एक बार बरमामे जाकर कदम तो रक्खो, तब देखोगे कि मेरी बात सच है या नही। "

उनकी बरमाकी बात बहुत-कुछ सच है, यह मैने बादमे अवश्य देखा; किंतु, उस समय तो ऊपरसे नीचे तक मेरा सारा मन अरुचिसे तीखा हो उठा। डाक्टर बाबूसे बिदा लेकर नन्द मिस्त्रीकी खबर लेने मैं नीचे गया। घरवाली-सहित मिस्त्रीजी उस समय फलाहारकी तैयारी कर रहे थे। नमस्कार करनेके बाद सबसे पहले उसने यह प्रश्न किया, " यह औरत कौन है, बाबू ?—"

टगर सिरदर्दके कारण अपने सिरपर एक कपड़ा पगड़ीकी तरह बाँध रही थी। एकदम फुसकार कर बोल उठी, "यह जाननेकी तुम्हे क्या गरज पड़ी है, भला सुनूँ ? "

मिस्त्रीने मुझे मध्यस्थ मानकर कहा, " देखी महाशय, इस औरतकी ओछी तबीयत ? कौन बंगाली औरत रंगून जा रही है, यह पूछना भी जैसे पाप हो ?"

टगर अपना सिर-दर्द भूल गई और पगड़ीको फेककर मेरी ओर ताकने लगी। उसने अपनी दोनो गोल गोल ऑखे फाड़कर कहा, " महाशय, टगर वैष्णवीके हाथके नीचेसे इन सरीखे न जाने कितने मिस्त्री मनुष्य बनकर निकल गये हैं,—अब भी क्या यह मेरी ऑखोमे धूल झोक सकते हैं ?—अरे, तुम डाक्टर हो कि वैद्य, जो मै जरा-सा पानी लेने गई,—इतनी देरमे, चटसे दौड़कर वहॉ देखने जा पहुँचे ? क्यो, कौन है वह ?—यह अच्छा नही होगा, सो कहे देती हूँ, मिस्त्री ! यदि दुबारा फिर कभी वहॉ जाते देखूँगी तो फिर एक दिन या तो तुम ही हो या मै ही ! "

नन्द मिस्त्रीने गर्म होकर कहा, " तेरा क्या मै पालतू बन्दर हूँ, जो तू जिस तरफ सॉकल पकड़कर ले जायगी, उसी तरफ जाऊँगा ? मेरी इच्छा होगी तो फिर जाकर उस बेचारेको देख आऊँगा,—तेरे मनमे आवे सो कर। " इतना कहकर उसने फलाहारमे चित्त लगाया।

टगरने भी सिर्फ "अच्छा" कहकर अपनी पगड़ी बॉधना शुरू कर दिया। मैं भी वहॉसे चल दिया। चलते चलते मैं सोचता गया,—इसी तरह इन्होने बीस बरस काट दिये हैं। अनेक दफे हाथ जलाकर टगर इतना सीखी है कि जहॉपर सत्यका बधन नही है वहॉ रासको जरा भी ढीला करना अच्छा नही होता। ठगाना ही पड़ता है। या तो रात-दिन सतर्क बने रहकर जोर-जबर्दस्तीसे अपना दखल जमाये रखना पड़ेगा, नही तो, जवानीकी तरह नन्द मिस्त्री भी एक दिन अनजानमे खिसक जायगा।

किंतु, जिसको लक्ष्य करके टगरके मनमे यह विद्रूप उत्पन्न हुआ और डाक्टर बाबूने कुत्सित तीव्र कटाक्ष किया, वह है कौन ? टगरने कहा था,—यही कार्य करते हुए मैने अपने बाल पकाये हैं। ऐसी औरत है कहॉ, जो मेरी ऑखमे धूल झोक सके ? डाक्टर बाबूने अपना मन्तव्य जाहिर किया था कि ऐसी घटनाएँ नित्य ही देखते रहनेके कारण उनकी ऑखोमे दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो गई है।—इसमे यदि भूल हो, तो वे ऐसी ऑखोको निकाल फेकनेके लिए तैयार हैं।

ऐसा ही होना है। दूसरेका विचार करते समय किसी मनुष्यको कभी यह कहते नही सुना कि वह अन्तर्यामी नही है, अथवा कहीं भी उसका कोई भ्रम या प्रमाद हो सकता है। सभी कहते हैं कि मनुष्यको चीह्ननेमे हम बे-

जोड हैं और इस विषयमे हम एक पक्के जौहरी हैं। फिर भी, ससारमें मै नहीं जानता कि कभी किसीने अपने खुदके भी मनको ठीक तरहसे पहिचाना हो। मगर हॉ, मेरे समान जिसने भी कहीं कोई कठिन चोट खाई है, उसे अवश्य ही सावधान होना पडा है। यह बात उसे मन-ही-मन मजूर करनी ही पडती है कि ससारमे जब अन्नदाजीजी सरीखी स्त्रियॉ भी हैं, तब बुद्धिके अहकारसे दूसरेको हीन और नासमझ समझकर खुद बुद्धिमान होनेकी अपेक्षा, सब-कुछ अच्छी तरह जानते हुए भी, नासमझ बननेमे ही एक तरहसे अधिक बुद्धिमानी है। इसीलिए, इन दो परम विश स्त्री-पुरुषोके उपदेशको मै अभ्रान्त न मान सका।—किन्तु, डाक्टर बाबूने जो कहा था कि अत्यन्त 'फारवर्ड' है, सो ठीक मालूम हुआ। और, केवल यही बात मुझे रह-रहकर चुभने लगी।

बहुत रात गये मै फिर बुलाया गया। इस दफे इस औरतका मुझे परिचय प्राप्त हुआ। नाम था अभया। उत्तरराढी कायस्थ है, घर है बाल्लूरके निकट। जो व्यक्ति बीमार पडा है, वह गॉवके रिश्तेसे भाई होता है, नाम है उसका रोहिणी सिंह। "दवासे रोहिणी बाबूको काफी लाभ पहुँचा है," इस तरह कहना आरभ करके थोडे ही समयमे अभयाने मुझे अपना आत्मीय बना लिया। किंतु, मुझे यह तो स्वीकार करना ही चाहिए कि मेरे मनमे, अनिच्छा होते हुए भी, एक कठोर समालोचनाका भाव बराबर जाग्रत था। फिर भी, इस स्त्रीकी सारी बातचीत और आलोचनाके दर्म्यान कही भी मै जरा-सी भी असङ्गति या अनुचित प्रगल्भता नही पकड पाया।

अभयामे मनुष्यको वश करनेकी अद्भुत शक्ति है। इस बीचमे ही उसने मेरा केवल नाम-धाम ही नही जान लिया, वरन् 'मै उसके लापता पतिको, जिस तरह हो सके, खोज दूँगा',—यह वचन भी उसने मेरे मुँहसे निकलवा लिया। उसका पति आठ वर्ष पहले बर्मामे नौकरीके लिए आया था। दो वर्षतक उसकी चिट्ठी-पत्री आती रही थी, किंतु, इन छह वर्षोंसे उसका कोई पता नही है। देशमे कुटुम्ब-कबीलेका और कोई नही है। मॉ थी; परतु, वे भी करीब महीने-भर पहले गुजर गई। बापके घर अभिभावकहीन होकर रहना असभव हो जानेसे रोहिणी भाईको राजी कर बर्मा आई है।

कुछ देर चुप रहकर एकाएक वह बोल उठी, "अच्छा, इतनी-सी भी कोशिश न करके किसी तरह देशमे ही मैं पडी रहती तो क्या मेरे हकमें अच्छा होता? इसके सिवाय इस उम्रमे बदनामी मोल लेते कितनी-सी देर लगती है?"

मैंने पूछा, " क्या आप जानती हैं कि इतने दिन तक क्यो आपकी उन्होंने कुछ खबर नहीं ली ?

" नहीं, कुछ नहीं जानती।"

" इसके पहले वे कहाँ थे, सो मालूम है ?"

" जानती हूँ। रंगूनमें ही थे, बर्मा रेलवेमे काम करते थे; किन्तु, कितनी ही चिट्ठियाँ दीं, कभी कोई उत्तर नही मिला। और, कभी कोई चिट्ठी लौटकर वापिस भी नहीं आई।"

प्रत्येक पत्र अभयाके पतिको मिला है, यह तो निश्चित था। किन्तु, क्यों उसने जवाब नहीं दिया, इसका सभाव्य कारण हाल ही मैंने डाक्टर बाबूके निकट सुना था। बहुत-से बङ्गाली वहाँ जाकर किसी ब्रह्मदेशकी सुन्दरीको घर बिठाकर नई गिरस्ती बसा लेते हैं। उनमें भी अनेक ऐसे हैं जो सारी ज़िन्दगी फिर लौटकर देश नहीं गये।

मुझे चुप देखकर अभयाने पूछा, " वे जीवित नहीं हैं, यही क्या आपको जान पड़ता है ?"

मैंने सिर हिलाकर कहा, " बल्कि, ठीक इससे उल्टा। वे जीवित हैं, यह तो मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ।"

चटसे अभयाने मेरे पैर छूकर प्रणाम किया और कहा, " आपके मुँहमे फूल-चन्दन पड़े, श्रीकान्तबाबू, मैं और कुछ नहीं चाहती। वे जीवित हैं, बस इतना ही मेरे लिए काफी है।"

मै फिर मौन हो रहा। अभया खुद भी कुछ देर मौन रहकर बोली, " आप क्या सोच रहे हैं, सो मैं जानती हूँ।"

" जानती हो ?"

" जानती नही तो ? आप पुरुष होकर भी जिसका खयाल कर रहे हैं, स्त्री होकर भी क्या मुझे वह भय नहीं होगा ? सो होने दो, मुझे उसका डर नहीं है,—मैं अपनी सौतके साथ मज़ेसे गिरिस्ती चला सकती हूँ।"

फिर भी मैं चुप ही बना रहा। किंतु, मेरे मनकी बातका अनुमान करनेमें इस बुद्धिमती स्त्रीको जरा-सा भी विलम्ब नहीं हुआ। बोली, "आप सोच रहे हैं कि मेरे गिरिस्ती चलानेके लिए राजी होनेसे ही तो काम नहीं चलेगा; मेरी सौत भी इसके लिए राजी होगी ?—यही न सोच रहे हैं ?"

दर-असल मैं अवाक् हो गया और बोला, "ठीक है, ऐसा ही यदि हो, ता क्या करोगी?"

इस दफे अभयाकी दोनो ऑखे छलछला उठीं। वह मेरे मुँहकी ओर अपनी सजल दृष्टि निबद्ध करके बोली, "ऐसी विपत्तिमें आप मुझे जरा-सी सहायता करेगे, श्रीकान्त बाबू? मेरे रोहिणी भइया बड़े सीधे-सादे भोले आदमी हैं, इस-लिए, उस समय तो इनके द्वारा मेरा कोई उपकार न होगा।"

राजी होकर मैंने कहा, "बन पड़ेगा तो जरूर सहायता करूँगा, किन्तु, इन सब कामोमे बाहरके लोगोंके द्वारा प्रायः काम होता तो कुछ नही, उल्टा बिगड ही जाता है।"

"यह बात सच है," कहकर अभया चुपचाप कुछ सोचने लगी।

दूसरे दिन ग्यारह-बारह बजेके बीच जहाज रगून पहुँचेगा; किंतु, भोर होनेक पहलेसे ही सब लोगोकी ऑखो और चेहरोपर भय और चचलताके चिह्न नजर आने लगे। चारो ओर एक अस्फुट शब्द कानोमे आने लगा, 'केरेंटिन, केरेंटिन!' पता लगानेसे मालूम हुआ कि ठीक शब्द 'कॉरेन्टाइन' (Quarantine) है। उस समय बर्माकी सरकार प्लेगके डरसे अत्यन्त साव-धान थी। शहरसे आठ-दस मील दूरपर रेतमे कॉंटेदार तारोसे थोड़ा-सा स्थान घेरकर उसमे बहुत-सी झोपड़ियॉं खड़ी कर दी गई थी,—इसमें ही डेकके समस्त यात्रियोको बिना कुछ विचार किये उतार दिया जाता था। यहॉंपर दस दिन ठहरनेके बाद उन्हे शहरमे जाने दिया जाता था। हॉं, यदि किसीका कोई आत्मीय शहरमे होता और वह पोर्ट हेल्थ ऑफिसरके पास जाकर किसी कौशलसे 'छोड़-पत्र' जुटा सकता तो बात जुदी थी।

डाक्टर बाबू मुझे अपने कमरेमे बुलाकर बोले, "श्रीकान्त बाबू, एक छोड-पत्र जुटाये बगैर आपका यहाँ आना उचित नहीं हुआ, कॉरेन्टाइनमे ले जाकर ये लोग मनुष्यको इतना कष्ट देते हैं कि कसाईखानेके गाय-बैल-भेड़ आदि जान-वरोंको भी उतना कष्ट नहीं सहना पड़ता। साधारण आदमी तो इसे किसी तरह सह सकते हैं,—मर्मान्तिक कष्ट तो केवल भले आदमियोंको ही उठाना पड़ता है। एक तो यहाँ कोई मजूर नहीं मिलता,—अपना सब माल-असबाब अपने ही कंधोंपर लादकर एक सीधी जर्जर सीढ़ीपरसे चढ़ना-उतरना होता है, और उतनी दूर ले जाना होता है। इसके बाद, सारा माल-असबाब वहाँ खोलकर बिखेर दिया

जाता है और स्टीममें उबालकर बबाद कर दिया जाता है। और महाशय, ऐसी कडी धूपमें तो कष्टका कोई पार ही नहीं रहता।"

अत्यन्त भयभीत होकर मैंने कहा, "इसका कोई प्रतीकार नहीं है क्या, डाक्टर बाबू?"

उन्होंने सिर हिलाकर कहा, "नहीं,—हाँ, जब डाक्टर साहब जहाजके ऊपर चढकर आवेंगे तब मै उनसे कह देखूँगा। उनका क्लर्क यदि आपकी तरह जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनेको राजी होगा तो—"

किंतु, उनकी बात अच्छी तरह पूरी न होने पाई थी कि बाहर एक ऐसा काण्ड घटित हुआ जिसकी याद करके मै खुद भी लाजके मारे मर जाता हूँ। कुछ गोलमाल सुनकर दोनो जने कमरेसे बाहर निकले। देखा कि जहाजका सेकण्ड आफिसर छह-सात खलासियोको बेधड़क चाहे जिस तरह लातें मार रहा है और, उसके बूटकी ठोकरें खाकर वे जहाँ बन पड़ता है वहाँ भाग रहे हैं। यह अँग्रेज़ युवक अत्यन्त उद्धत था, इसलिए डाक्टर बाबूके साथ इसकी पहले कभी कहा-सुनी हो चुकी थी, और आज फिर एक झपट हो गई।

डाक्टर गुस्सा होकर बोले, "तुम्हारा इस तरहका काम अत्यन्त निन्दनीय है. किसी दिन इसके लिए तुम्हें दुःख उठाना पड़ेगा, यह मै कहे देता हूँ।"

वह पलटकर खडा हो गया और बोला, "क्यो?"

डाक्टर बाबू बोले, "इस तरह लातें मारना, बड़ा भारी अन्याय है।"

उसने जवाब दिया, "मार खाये बिना क्या ढोर सीधे होते हैं?"

डाक्टर बाबू कुछ 'स्वदेशी खयाल'के आदमी थे, वे उत्तेजित होकर कहने लगे, "ये लोग जानवर नहीं हैं, गरीब मनुष्य हैं। हमारे देशी आदमी नम्र और शान्त होनेके कारण कप्तान साहबके पास जाकर तुम्हारी शिकायत नही करते, और इसीलिए, तुम अत्याचार करनेका साहस करते हो।"

एकाएक साहबका मुँह अकृत्रिम हँसीसे भर गया। डाक्टरका हाथ खींचकर उसने उँगलीसे दिखाते हुए कहा, Look, Doctor, there's your country-men, you ought to be proud of them? (देखो, डाक्टर, वह देखो तुम्हारे देशके आदमी, तुम्हें अवश्य ही इनपर फ़क्र होना चाहिए।)

मैंने नज़र उठाकर देखा, कुछ ऊँचे पीपोंकी आड़मे खड़े होकर वे खींसे

बाहर निकालकर हँस रहे हैं और शरीरकी धूल झाड़ रहे हैं। साहब थोड़ा-सा हँसकर, डाक्टर बाबूके मुँहपर दोनो हाथोके अँगूठे हिलाकर, दाएँ-बाएँ झूमता हुआ, सीटी देता हुआ चल दिया। विजयका गर्व जैसे उसके सारे शरीरसे फूट पड़ने लगा।

डाक्टर बाबूका मुँह लज्जासे, क्षोभसे और अपमानसे काला हो गया। तेजीसे कदम आगे रखते हुए क्रुद्ध स्वरसे वे बोल उठे, "बेहया सालो, खींसे बाहर निकालकर हँस रहे हो!"

इस दफे, इतनी देर बाद, देशी लोगोका आत्म-सम्मान शायद लौट आया। सब लोगोने एक साथ हँसना बन्द करके तेजीसे जवाब दिया, "तुम डाक्टर बाबू, 'साला' कहनेवाले कौन होते हो? किसीका कर्ज़ खाकर तो हम लोग नही हँसते?"

मैं ज़बर्दस्तीसे डाक्टर बाबूको खीचकर उनके कमरेमे वापिस ले आया। कुर्सीपर धम्मसे गिरते हुए उनके मुँहसे सिर्फ 'ऊः—!' निकला।

और कोई दूसरी बात उनके मुँहसे बाहिर निकलना भी असंभव था। ग्यारह बजेके लगभग कॉरेण्टाइनके पास एक छोटा-सा स्टीमर आकर जहाजसे सटकर खडा हो गया। समस्त डेकके यात्रियोको यही उस भयानक स्थानमे ले जायगा। माल-असबाब बाँधने-छोरनेकी धूम मच गई।—मुझे जल्दी नही थी, क्योकि, डाक्टर बाबूका आदमी अभी ही कह गया था कि मुझे वहाँ नही जाना पड़ेगा। निश्चिन्त होकर यात्रियो और खलासियोकी चिल्लाहट, दौड-धूप, कुछ अन्यमनस्क-सा होकर देख रहा था। हठात् पीछेसे एक शब्द सुन पडा, पलटकर देखा कि अभया खड़ी है। आश्चर्यके साथ पूछा, "आप यहाँ कैसे?"

अभया बोली, "क्यो, क्या आप अपनी चीज-बस्त बाँधेंगे नहीं?"

मैंने कहा, "नही, मुझे अभी काफी देर है, मुझे वहाँ नही जाना पड़ेगा। एकदम शहरमे जाकर उतरूँगा।"

अभया बोली, "नही, शीघ्र ही सामान ठीक कर लीजिए।"

मैने कहा; "मुझे अब भी बहुत समय है।"

अभयाने प्रबल वेगसे सिर हिलाकर कहा, "नहीं, सो नही हो सकता। मुझे छोड़कर आप किसी तरह नहीं जाने पायेंगे।"

मैं अवाक् होकर बोला, " यह क्या ! मेरा तो वहाँ जाना नही हो सकेगा।"

अभया बोली, " तो फिर, मेरा भी नहीं हो सकेगा। मैं पानीमे भले ही फाँद पड़ूँ, परतु, निराश्रय होकर उस जगह किसी तरह नही जाऊँगी। वहाँकी सब बाते सुन चुकी हूँ।" यह कहते कहते ही उसकी आँखे छलछला आई। मैं हतबुद्धि-सा होकर बैठा रहा।—यह कौन है जो मुझे इस तरह धीरे धीरे जोर डालकर अपने जीवनके साथ जकड़ रही है ?

वह आँचलसे आँखें पोछकर बोली, " मुझे अकेली छोड़कर चले जावेंगे ? मैं नहीं सोच सकती कि आप इतने निष्ठुर हो सकते हैं। उठिए, नीचे चलिए। आप न होगे तो उस बीमार आदमीको साथ लेकर मै अकेली औरत-जात क्या करूँगी, आप ही बताइए ?"

अपना माल-असबाब लेकर जब मै छोटे स्टीमरपर चढ़ा, तब डाक्टर बाबू ऊपरके डेकपर खड़े थे। हठात् मुझे इस अवस्थामे देखकर वे हाथ हिलाते हुए चिल्लाकर कहने लगे, " नहीं, नहीं, आपको न जाना होगा। लौट आइए, लौट आइए,—आपके लिए हुक्म हो गया है, आप—"

मैंने भी हाथ हिलाते हुए चिल्लाकर कहा, " असंख्य धन्यवाद, किंतु एक और हुक्मसे मुझे जाना पड़ रहा है।"

सहसा उनकी दृष्टि अभया और रोहिणीपर जा पड़ी। वे मुसकराते हुए बोले, " तब मुझे बेकार ही क्यो कष्ट दिया ?"

" उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

" नहीं, नहीं, उसकी जरूरत नही, मै पहलेसे ही जानता था, 'गुड बाई'।" यह कहकर डाक्टरबाबू हँसते चेहरेसे चले गये।

५

'कॉरंटाइन' नामक जेलखानेमे भेजनेका कानून केवल ' कुलियो ' के लिए है,—शरीफोके लिए नहीं, और, जो जहाजका किराया दस रुपयेसे अधिक नहीं देता वही ' कुली ' है। चाहके बगीचोका कायदा क्या कहता है, सो नहीं मालूम; पर, जहाजी कानून तो यही है। और, अधिकारी या अफसर प्रत्यक्ष ज्ञानसे क्या जानते हैं, यह तो वे ही जाने; किंतु, आफीशियली इससे अधिक जाननेकी रीति नहीं है। इसलिए, इस यात्रामें हम सब ' कुली '

थे। और, साहब लोग यह भी समझते हैं कि कुलीकी जीवन-यात्राके लिए माल-असबाब ऐसा कुछ अधिक नहीं हो सकता,—और न होना उचित ही है, कि जिसे एक स्थानसे दूसरे स्थान तक कंधेपर रखकर वह न ले जा सकता हो। इसलिए, उतरनेके घाटपर केरिन्टिन-यात्रियोंका माल-असबाब ले जानेके लिए यदि कोई व्यवस्था नहीं है तो इसके लिए क्षुब्ध होनेका कोई कारण नहीं। यह सब सच है: फिर भी, यह केवल हमारे ही भाग्यका दोष समझिए कि हम तीन प्राणी, सिरके ऊपर प्रचण्ड सूर्य और पैरोंके नीचे उससे भी अधिक उग्र बालुका-राशिमें जलते हुए, एक अपरिचित नदीके किनारे, बड़े बड़े गट्ठर सामने रखकर किंकर्तव्यविमूढ भावसे एक दूसरेका मुँह देखते हुए खड़े हैं। साथके यात्रियोंका परिचय पहले ही दे चुका हूँ, वे लोग अपने अपने लोटे-कम्बल पीठपर रखकर, और अपेक्षाकृत अधिक बोझ अपनी अपनी गृह-लक्ष्मियोंके सिरपर लादकर, मजेसे गन्तव्य स्थानपर चले गये।

देखते देखते रोहिणी भइया बिस्तरोंके एक बंडलपर काँपते काँपते धमसे बैठ गये। बुखार, पेटका दर्द और भारी थकावट,—इन सब कारणोंके एकत्र होनेसे उनकी अवस्था ऐसी थी कि उनके लिए, चलना तो बहुत दूरकी बात है, बैठना भी असंभव हो गया। लेट जानेमें ही उनकी रक्षा थी। अभया ठहरी औरत-जात। बचा सिर्फ मैं और मेरी तथा पराई छोटी-मोटी गठरियाँ। मेरी दशा एक बार सोचकर देखने योग्य थी! एक तो, अकारण ही एक अज्ञात अप्रीतिकर स्थानमें जा रहा था; दूसरे, एक कंधेपर तो एक अज्ञात निरुपाय स्त्रीका बोझा था और दूसरे कंधेपर झूल रहा था उतना ही अपरिचित एक बीमार पुरुष, और ऊपरसे हाथोंमें थीं गठरियाँ! इन सबके बीचमें मैं अत्यन्त उग्र प्यासको लिये, जो कि सारे गलेको सुखाये देती थी, एक अज्ञात जगहमें किंकर्तव्यविमूढ होकर खड़ा हूँ। मेरे इस चित्रकी कल्पना करके, बतौर पाठकके, लोगोंको खूब आनन्द आ सकता है,—कुछ सहृदय पाठक, शायद, मेरी इस निःस्वार्थ परोपकार-वृत्तिकी प्रशंसा भी कर सकते हैं; किंतु, मुझे यह कहते जरा भी शर्म नहीं कि उस समय इस हतभागीका मन झुँझलाहट और पश्चात्तापसे एकबारगी परिपूर्ण हो रहा था। अपने आपको सैकड़ों धिक्कार देता हुआ मन-ही-मन कह रहा था कि, इतना बड़ा गधा क्या त्रिलोकमें और भी कोई होगा! किंतु, बड़े

अचरजकी बात है, कि यद्यपि यह परिचय मेरे शरीरपर लिखा हुआ नहीं था, फिर भी, जहाजभरके इतने लोगोंके बीचमेंसे, भार-वहन करनेके लिए, अभयाने मुझे ही क्यों और किस तरह एकदमसे पहिचानकर छाँट लिया ?

किन्तु, मेरा विस्मय दूर हुआ, उसकी हँसीसे। उसने मुँह उठाकर जरा-सा हँस दिया। उसके हँसी-भरे चेहरेको देखकर मुझे केवल विस्मय ही नहीं हुआ,—उसके भयानक दुखकी छाया भी इस दफे मुझे दिख गई। किंतु, सबसे अधिक अचरज तो मुझे उस ग्रामीण स्त्रीकी बात सुनकर हुआ। कहाँ तो लज्जा और कृतज्ञतासे धरतीमें गड़कर उसे भिक्षा माँगना चाहिए था, और कहाँ उसने हँसकर कहा, "कहीं यह खयाल न कर बैठना कि खूब ठगाये गये! अनायास ही जा सकते थे फिर भी गये नहीं, इसीका नाम है दान। पर, मैं यह कहे रखती हूँ कि इतना बड़ा दान करनेका सुयोग जीवनमें, शायद, कम ही मिलेगा, किंतु, जाने दो इन बातोंको। माल-असबाब इसी जगह पड़ा रहने दो, और चलो, देखें इन्हें कहीं छायामें सुलाया जा सकता है या नहीं।"

आखिर, गट्ठर-गठरियोंकी ममता छोड़कर मैं रोहिणी भइयाको पीठपर लादकर केरिण्टिनकी ओर रवाना हुआ। अभयाने केवल एक छोटा-सा हाथ-बक्स लेकर मेरा अनुसरण किया और सब सामान वहाँ ही पड़ा रहा। अवश्य ही वह सब खोया नहीं गया,—कोई दो घण्टे बाद, उसे ले आनेका प्रबंध हो गया।

अधिकांश स्थानोंमें देखा जाता है कि सचमुचकी विपत्ति काल्पनिक विपत्तिकी अपेक्षा अधिक सहज और सह्य होती है। पहलेसे ही इस बातका ख्याल रखनेसे अनेक दुश्चिन्ताओंके हाथसे छुटकारा मिल सकता है। इसलिए, यद्यपि कुछ कुछ क्लेश और असुविधायें निश्चयसे मुझे भोगनी पड़ीं, फिर भी, यह बात तो स्वीकार करनी ही पड़ती है कि हम लोगोंके केरिण्टिनकी म्यादके दिन एक तरहसे आराम-से ही कट गये। इसके सिवाय, पैसा खरच कर सकनेपर यमराजके घर भी जब ससुराल जैसा आदर प्राप्त किया जा सकता है तब तो यह केरिण्टिन ही ठहरी!

जहाजके डाक्टर बाबूने कहा था कि यह स्त्री खूब 'फारवर्ड' है, किन्तु, जरूरतके समय यह स्त्री कहाँ तक 'फारवर्ड' हो सकती है, इसकी शायद उन्होंने कल्पना भी नहीं की होगी। रोहिणी बाबूको जब पीठपरसे मैंने उतार दिया तब अभया बोली, "बस, अब आपको और कुछ भी नहीं करना होगा, श्रीकान्तबाबू, आप विश्राम करें, और जो कुछ करनेका है मैं कर लूँगी।"

विश्रामकी मुझे वास्तवमे जरूरत थी,—दोनो पैर थकावटके कारण टूटे जाते थे, फिर भी, मैंने अचरजके साथ पूछा, "आप क्या करेगी?"

अभयाने जवाब दिया, "काम क्या कुछ कम हैं? चीजें-वस्ते लानी होगी, एक अच्छा-सा कमरा तलाश करके आप दोनोके लिए बिस्तर तैयार कर देने होंगे, रसोई करके जो कुछ हो, दोनोको खिला देना होगा,—तब जाकर मुझे छुट्टी मिलेगी, और तब ही तो थोड़ा-सा बैठकर मै आराम कर सकूँगी। —नही, नही, मेरे सिरकी कसम, उठिएगा नही, मैं अभी अभी सब ठीक-ठाक किये देती हूँ।" फिर थोड़ा-सा हँसकर कहा, "सोचते होओगे कि औरत होकर यह अकेली सब प्रबध किस तरह करेगी, यही न?—क्यो, न कर सकूँगी? अच्छा, आपको ही खोज निकालनेवाला कौन था? मैं ही थी न, कि और कोई?" इतना कहकर उसने छोटे बाक्सको खोला और उसमेसे कुछ रुपये निकालकर ऑचलमे बॉध लिये तथा वह केरेण्टिनके आफिसकी ओर चल दी।

वह कुछ कर सके चाहे न कर सके, किसी तरह बैठनेको मिल जानेसे मेरी तो जान बच गई। आध घण्टेके भीतर ही एक चपरासी मुझे बुलाने आया। रोहिणीको साथ लेकर उसके साथ गया। देखा, रहनेका कमरा तो अच्छा ही है। मेम डाक्टरिन साहिबा खुद खडे होकर नौकरसे सब साफ करा रही हैं, जरूरी चीजे आ पहुँची हैं और दो खाटोपर दो आदमियोके लिए बिस्तर तक बिछा दिये गये हैं। एक ओर नई हॅडिया, चावल, दाल, आलू, घी, मैदा, लकड़ी आदि सब मौजूद है। मद्रासी डाक्टरिनके साथ अभया टूटी-फूटी हिन्दीमे बातचीत कर रही है। मुझे देखते ही बोली, "तब तक आप थोड़ी नींद न ले लो, मै सिरपर दो घड़ा जल डालकर इस वक्तके लिए चावल-दाल मिलाकर थोड़ी-सी खिचड़ी रॉध देती हूँ। उस वक्तके लिए फिर देखा जायगा।" इतना कहकर गमछा-कपडा लेकर, मेम साहिबाको सलाम कर, एक खलासीको साथ लेकर, वह नहाने चली गई।—इस तरह, उसकी सरक्षकतामे हम लोगोके दिन अच्छी तरहसे कट गये, यह कहनेमे मैं निश्चयसे जरा भी अत्युक्ति नही कर रहा हूँ।

इस अभयामे मै दो बाते अन्त तक लक्ष्य कर रहा था। ऐसी अवस्थामें, ऐसे स्त्री-पुरुषमे,—जिनका परस्पर कोई रिश्ता नही होता है, घनिष्ठता स्वतः ही बड़ी तेजीसे बढ़ने लगती है। किन्तु, इसका उसने कभी मौका ही नही दिया। उसके व्यवहारमें ऐसा कुछ था जो प्रत्येक क्षण याद दिला दिया करता था कि हम

लोग केवल यात्री हैं, जो एक जगह ठहर गये हैं,—किसीके साथ किसीका सच-मुचका कोई सम्बन्ध नहीं है. दो दिन बाद शायद जीवन-भर फिर कहीं किसीकी किसीसे मुलाकात ही न हो। दूसरी बात यह थी, कि ऐसा आनन्दयुक्त परिश्रम भी मैंने कहीं नहीं देखा। दिन-भर वह हम लोगोकी सेवामे लगी रहती और काम खुद ही करना चाहती। सहायता करनेकी कोशिश करते ही वह हँसकर कहती, "यह तो सब मेरा खुदका ही कार्य है। नही तो, रोहिणी भइयाको ही क्या जरूरत थी कि वे इतना कष्ट उठाते, और आपको ही क्या पड़ी थी इस जेलखानेमें आनेकी? मेरे लिये ही तो आप लोगोको इतनी सब तकलीफे उठानी पडी हैं।"

अक्सर ऐसा होता कि खाने-पीनेके बाद थोडी-सी गप-शप चल रही है और आफिसकी घड़ीमे दो बज गये। बस वह एकदम खडी हो जाती और कहने लगती, "जाती हूँ, आप लोगोके लिए चाय तैयार कर लाऊँ,—दो बज गये।" मन-ही-मन मै कहता,—तुम्हारा पति चाहे कितना ही पापी क्यो न हो, मनुष्य तो जरूर होगा। यदि कभी उसे पा लोगी, तो वह तुम्हारा मूल्य अवश्य समझेगा।

इसके बाद एक दिन मियाद खतम हुई। रोहिणी भी अच्छा हो गया। हम लोग भी सरकारी छोड़-पत्र पाकर, फिर गट्ठर-गठरियाँ बाँधकर, रगूनको चल पडे। निश्चय किया था कि शहरके मुसाफिरखानेमे दो-एक दिनके लिए ठहरकर, और इन लोगोके लिए ठहरनेका कोई स्थान ठीक करके, मै अपने स्थानपर चला जाऊँगा; और फिर, जहाँ-कही भी रहूँगा वहाँसे उसके पतिका पता मालूम करके उसे समाचार भेजनेकी भर-सक कोशिश करूँगा।

शहरमे जिस दिन हम लोगोने कदम रक्खे वह बर्मा-वासियोका एक त्योहारका दिन था। और, त्योहार तो उनके लगे ही रहते हैं। दलके दल स्त्री-पुरुष रेशमी पोशाक पहिने अपने मदिरोको जा रहे हैं। स्त्री-स्वातंत्र्यका देश है, इसलिए, वहाँके आनन्द-उत्सवोमे स्त्रियोकी संख्या भी अधिक होती है। बूढी, युवती, बालिका,—सब उम्रकी स्त्रियाँ अपूर्व पोशाक-परिच्छदमे सज्जित होकर हँसतीं, बोलतीं, गाती सारे रास्तेको मुखरित करती हुई चली जा रही हैं। उनमे अधिकाशका रग खूब ही गोरा है। मेघकी तरह घने बालोंका बोझा, सौमेंसे नव्वे स्त्रियोंका, घुटनोके नीचे तक लटकता है। जूड़ेमें फूल, कानोंमें फूल, और

गलेमे फूलोंकी माला। घूँघटकी झंझट नहीं, पुरुषोंको देखकर तेजीसे भाग जानेकी व्यग्रतासे ठोकर खाकर गिरनेका अन्देशा नही, दुविधा या लाजका लेश नहीं,— मानों झरनेके मुक्त प्रवाहके समान स्वच्छन्द बे-रोक गतिसे बही जा रही हैं। पहली ही दृष्टिसे एकदम मुग्ध हो गया। अपने यहाँकी तुलनामे मन-ही-मन उनकी अशेष प्रशसा करके बोला, यही तो होना चाहिए! इसके बिना जीवन ही क्या है! उनका सौभाग्य सहसा मानो ईर्षाके समान मेरे हृदयमे छिद गया। मैंने कहा, चारों दिशाओंमे ये जिस आनन्दकी सृष्टि करती जा रही हैं, वह क्या अवहेलाकी वस्तु है? रमणियोंको इतनी स्वाधीनता देकर इस देशके पुरुष क्या ठगे गये हैं? और, हम लोग क्या उनको नीचेसे ऊपर तक जकड रखकर और उनके जीवनको लॅंगडा बनाकर लाभमे रहे हैं? हमारी स्त्रियाँ भी यदि किसी ऐसे ही दिन,—

एकाएक गोलमाल सुनकर मैंने लौटकर जो कुछ देखा वह आज भी मेरे मनपर साफ साफ अकित है। झगड़ा हो रहा था घोडागाड़ीके किरायेके संबंधमे। गाड़ीवान हमारे यहाँका हिन्दुस्तानी मुसलमान था। वह कह रहा था कि आठ आने किराया तय हुआ है और तीन भले घरकी बरमी स्त्रियाँ गाड़ीपरसे उतरकर एक साथ चिल्लाकर कह रही थी कि नही, पाँच आना हुआ है। दो-तीन मिनट कहा-सुनी होनेके बाद ही बस 'बल बल बाहुबल।' रास्तेके किनारे एक आदमी मोटे मोटे गन्ने टुकड़े करके बेच रहा था। अकस्मात् तीनोंने झपटकर तीन गन्ने उठा लिये और एक साथ गाड़ीवानपर आक्रमण कर दिया। ओह! वह कैसी बेधडक मार थी! बेचारा स्त्रियोंके शरीरपर हाथ भी नहीं लगा सकता था,— आत्म-रक्षा करनेके लिए यदि एकको अटकाता था तो दूसरीकी चोट सिरपर पडती, उसको अटकाता तो तीसरीकी चोट आ पड़ती। चारों ओर लोग जमा हो गये,—किंतु, केवल तमाशा देखने। उस अभागेकी कहाँ गई टोपी-साफा और कहाँ गया हाथका चाबुक! और अधिक न सह सकनेके कारण आखिर वह मैदान छोड़कर 'पुलिस! पुलिस! सिपाही! सिपाही!' चिल्लाता हुआ भाग खड़ा हुआ।

मै हाल ही बंगालसे आ रहा था और सो भी देहातसे। कलकत्तेमें स्त्री-स्वाधीनता है,—कानोंसे अवश्य सुनी है, पर आँखो नहीं देखी। किंतु, क्या स्वाधीनता प्राप्त करके भले घरकी 'अबलाएँ' भी एक जवान-मर्दपर खुले

आम राजमार्गपर आक्रमण करके लट्ठबाजी कर सकती हैं!—क्रमशः उनके इतनी अधिक ‘ सबला ’ हो उठनेकी सभावना मेरी कल्पनाके भी परेकी वस्तु है। बहुत देर तक हत-बुद्धिकी तरह खड़े रहनेके बाद मैंने अपने कार्यके लिए प्रस्थान किया। मन-ही-मन कहने लगा कि स्त्री-स्वाधीनता भली है या बुरी, समाजके आनन्दकी मात्रा इससे घटेगी या बढ़ेगी,—यह विचार तो किसी और दिन करूँगा; किंतु, आज अपनी आँखो जो कुछ देखा उससे तो मेरा सारा चित्त एकदम उद्भ्रान्त हो गया।

६

अभया और रोहिणीको उनके नये वास-स्थानमे,—नई घर-गिरिस्तीमे, प्रतिष्ठित करके जिस दिन मैं अपने निजके लिए आश्रय खोजने रंगूनके राजमार्गपर निकल पड़ा, उस दिन,—यह मैं नही कहना चाहता कि,—उन दोनोके पारस्परिक सबधके विषयमे मेरे मनमे बिल्कुल किसी तरहकी ग्लानि छू भी नही गई थी। किन्तु, इस अपवित्र विचारको दूर करनेमे भी मुझे अधिक देर नही लगी। क्योकि, दो खास उम्रके स्त्री-पुरुषोको किसी खास अवस्थामे देखनेमात्रसे ही उनके बीचमे किसी सम्बन्ध-विशेषकी कल्पना कर लेना कितनी भारी भ्रान्ति है, यह शिक्षा मुझे पहले ही मिल चुकी थी। और, भविष्यत्की जटिल समस्याको भी भविष्यत्के ही हाथमे सौप देनेमे मुझे किसी तरहकी हिचक नही होती, इसलिए, केवल अपना ही भार अपने कंधेपर लादकर, उस दिन प्रभातके समय, उनके नये वास-स्थानसे बाहर निकला।

आजकलकी तरह उस समय किसी भी नये बगालीके बरमामे कदम रखते ही पुलिसके प्रकट और अप्रकट कर्मचारियोंका दल उनसे सवालपर सवाल करके, उनपर व्यग कसके और अपमान करके, तथा बिना कुसूर थानेमे खीच ले जाकर और डर दिखाकर, हद दर्जेकी तकलीफ नहीं देता था। मनमे किसी तरहका पाप न हो, तो उन दिनों प्रत्येक परिचित-अपरिचितको निर्भयतासे घूमने-फिरनेका अधिकार था और आजकलकी तरह अपने आपको निर्दोष प्रमाणित करनेका अत्यन्त अपमानकर गुरु-भार भी उस समय नवागत बंगवासीके कधेपर नहीं लादा गया था। इसलिए, मुझे खूब याद है कि स्वच्छन्द चित्तसे किसी आश्रय-स्थानकी खोजमे उस दिन सुबहसे दो-पहर तक राह राह

खूब घूमता फिरा। राहमें एक बंगालीसे भेट हुई। वह मजदूरके सिरपर तरकारीका बोझा लिये हुए पसीना पोंछते पोंछते तेजीसे चला जा रहा था, मैंने पूछा, "महाशय, नन्द मिस्त्रीका घर कहाँ है, क्या आप बतला सकते हैं?"

वह आदमी रुककर खड़ा हो गया, "कौन नन्द? क्या आप रिविट घरके नन्द पागड़ीको खोज रहे हैं?"

मैंने कहा, "सो तो जानता नहीं महाशय, कि वे किस घरके हैं। उन्होंने केवल यही परिचय दिया था कि वे रगूनके विख्यात नद मिस्त्री हैं।"

उस आदमीने एक प्रकारका असम्मान-सूचक मुँहका भाव बनाकर कहा, "ओः,—मिस्तिरी! ऐसे तो सभी अपनेको मिस्तिरी कहलवाते हैं महाशय! मिस्तिरी होना सहज नहीं है! मर्कट साहबने जब मुझसे कहा था कि, 'हरिपद, तुमको छोड़कर मिस्तरी होने लायक आदमी मुझे और कोई नहीं दीख पड़ता,' तब क्या आप जानते हैं कि बडे साहबके समीप कितनी अनिश्चित अर्जियाँ पड़ी हुई थी?—करीब एक सौके। आरी और वसूलेका जोर हो, तो अर्जियोंकी जरूरत ही क्या है? काटकर जो जोड दे सकता हूँ! किन्तु, महाशय, आप जानते हैं—"

मैंने देखा, अनजानमे ही मैंने इस आदमीके ऐसी जगहमे चोट पहुँचा दी है, जिसकी मीमासा होना कठिन है। इसीलिए, चटसे मैंने रुकावट डालकर कहा, "तो फिर, नन्द नामके किसी भी आदमीको आप नहीं जानते?"

"यह आपने खूब कहा! चालीस वर्षसे रंगूनमे रह रहा हूँ, मै जानता किसे नहीं? नन्द क्या एक है? तीन तीन नन्द हैं! आपने नन्द मिस्तरी कहा न?—कहाँसे आ रहे हैं आप? शायद बगालसे, न? ओह, तब कहो न कि टगरके मर्दको पूछ रहे हो?"

मैंने सिर हिलाकर कहा, "हाँ,—हाँ,—जरूर वही!"

वह बोला, "तो फिर यह कहिए। परिचय पाये वगैर पहिचानूँ कैसे? आइए मेरे साथ। तकदीरके ज़ोरसे नन्द कमा खा रहा है महाशय, नहीं तो नन्द पागड़ी भी क्या कोई मिस्तरी है! महाशय, आप कौन हैं?"

यह सुनकर कि मैं ब्राह्मण हूँ, उस आदमीने रास्तेपर ही झुककर मुझे प्रणाम किया। बोला, "वह आपकी नौकरी लगा देगा? साहबसे कहकर आपकी तजवीज लगवा सकता है जरूर; किंतु, दो महीनेकी तनख्वाह उसे पहिले ही घूँसमे

देनी होगी। दे सकेंगे क्या? दे सके तो अठारह-बीस आने रोजकी नौकरी लगा सकता है। इससे अधिककी नहीं।"

मैने उसे बताया कि फिलहाल तो मै नौकरीकी उम्मेदवारीमे नही जा रहा हूँ, —थोड़ेसे आश्रयकी तजवीज पानेकी गरजसे ही बाहर निकला हूँ. और, इसकी आशा नन्द मिस्त्रीने मुझे जहाजपर दिलाई थी।

यह सुनकर हरिपद मिस्त्रीने आश्चर्यसे पूछा, "आप, महाशय, भले आदमी हैं, तो फिर, भले आदमियोंके 'मेस' मे क्यो नहीं जाते?"

मैने कहा, "मेस कहाँ है, सो तो जानता ही नहीं।"

उसे भी नही मालूम,—यह उसने स्वीकार किया। किन्तु, उसे जून खोज करके बतानेकी आशा देकर वह बोला, "किंतु, इस समय तो नन्दसे मुलाकात हो न सकेगी. वह कामपर गया है और टगर साँकल दिये सो रही है। पुकार कर उसकी नींद भग करनेमे खैर नही!"

यह तो मै खूब जानता था। इसलिए रास्तेके बीच मुझे यहाँ-वहाँ करते देखकर उसने हिम्मत देकर कहा, "न गये वहाँ तो क्या! दादा ठाकुरका बढ़िया होटल सामने ही है। वहाँ स्नान-भोजन करके नींद ले लीजिए, उस बेला फिर देखा जायगा।"

हरिपदके साथ बाते करते करते जब मै दादा ठाकुरके होटलमे पहुँचा तब होटलके डाइनिंग रूममे (=भोजनके कमरेमे) करीब पन्द्रह आदमी भोजन करने बैठे थे।

अँग्रेजीमे दो शब्द हैं 'इन्स्टिंक्ट' और 'प्रेज्युडिस' किंतु, हमारे यहाँ केवल एक ही शब्द है 'सस्कार'। यह समझना कठिन नहीं है कि एक जो है सो दूसरा नही। अर्थात् दोनो शब्द अँग्रेजीमे भिन्न भिन्न भाववाची हैं। किन्तु, हम लोगोका जाति-भेद, खान-पान आदि वस्तुएँ 'इन्स्टिंक्ट' के हिसाबसे, 'सस्कार' नही हैं,—दादा ठाकुरके उक्त होटलके सपर्कमे आकर यह बात आज पहले ही पहल मुझे मालूम हुई। और यदि यह 'सस्कार' हो भी, तो कितना तुच्छ है,—इसके बधनसे मुक्त होना कितना सहज है, यह सब प्रत्यक्ष देखकर मै आश्चर्यसे चकित हो गया। हमारे देशमे यह जो असख्य जाति-भेदकी शृंखला है, इसे दोनो पैरोमे पहिनकर झनझनाते हुए विचरण करनेमें कितना गौरव और मङ्गल है, इसकी आलोचना तो इस समय रहने दूँगा;

किन्तु, यह बात मैं निस्सन्देह कह सकता हूँ कि जो लोग इसे अपने छोटे-छोटे-से गाँवोंमे बिल्कुल बेखटके जमे हुए पुरखोंसे चला आता हुआ संस्कार बताकर स्थिर रखे हुए हैं, और इसके शासन-जालको तोड़नेकी दुरूहताके संबंधमें जिन्हें लेशमात्र भी अविश्वास नहीं है, उन लोगोंने इस बड़े भारी भ्रमको जान-बूझकर ही पाल रक्खा है। वास्तवमे, जिस देशमे खाने-पीनेमे छुआछूतका विचार प्रचलित नही है, उस देशमे कदम रखते ही यह अच्छी तरह देखा जाता है कि यह छप्पन पुश्तोंकी खाने-पीनेमें छुआ-छूत रखनेकी सकल न जाने कैसे रातोरात खुलकर अलग हो जाती है। विलायत जानेसे जाति चली जाती है, इसका एक मुख्य कारण यह बतलाया जाता है कि वहाँ निषिद्ध मांस खाना पड़ता है। जो लोग अपने देशमे भी कभी मांस नहीं खाते,—उनकी भी चली जाती है, कारण,—जाति मारनेके इजारदार पंचलोग जो कहते हैं वह भी यही बात है,—मांस न खानेपर भी उसे 'खाया ही है,' यह समझ लेना पड़ता है।

और उनका यह कहना निहायत गलत भी नही है। बर्मा तो तीन-चार दिनका ही रास्ता है; फिर भी, मैंने देखा है कि पन्द्रह आने बंगाली भले आदमी, जिनमे शायद ब्राह्मण ही अधिक होंगे,—क्योंकि इस युगमे उन्हींके लोभने सबको मात कर दिया है,—जहाजके होटलमे ही सस्ते दामोंमें पेट भर लेते हैं तब कही सूखी जमीनपर पदार्पण करते हैं। उस होटलमे मुसलमान और गोआनीज बावर्ची क्या राँधकर 'सर्व' करते हैं,—यह सवाल अप्रिय हो सकता है, किन्तु, वे लोग हविष्यान्न पकाकर केलेके पत्तेमे नहीं परोसते,—यह अनुमान करना तो भाटपाड़ेके भट्टाचार्योंके लिए भी शायद कठिन नहीं है,—फिर, मैं तो ठहरा साथका मुसाफिर! जो लोग कमसे कम यह सब नहीं खाना चाहते वे भी हार मानकर अन्तमें चाह-रोटी, फल-फूलादि तो खाते ही हैं। परन्तु, एकदम निषिद्ध मांससे लेकर मर्त्तमान-रंभा (केलेकी दो जातियाँ) तक, सब-कुछ एकमें ही गड्डमगड्ड करके जहाजके कोल्ड-रूममे रक्खा जाता है, यह काम किसीकी नज़रसे छुपाकर करनेकी पद्धति भी मैंने जहाजके नियम-कानूनोंमे नहीं देखी। हाँ, फिर भी, आरामकी बात यह है कि बर्मा-जानेवाले यात्रीकी जाति जानेका कानून, शायद, किसी तरह शास्त्रकारोंकी 'सिविल कोड'की नजर बचा गया है। नहीं तो, शायद फिर भी एक छोटी-मोटी ब्राह्मण-सभाकी जरूरत होती!—जाने दो, भले लोगोंकी बात आज यहीं तक रहे।

होटलमे जो लोग पक्तिबद्ध होकर भोजन करने बैठे थे वे भले आदमी नहीं थे,—कमसे कम हम लोग उन्हे 'भला' नहीं मानते। सब लोग कारीगर थे, साढ़े दस बजेकी छुट्टीमे भोजन करने आये थे। शहरके इस हिस्सेमें एक बड़ा मैदान है जिसके तीन तरफ नाना आकार और प्रकारके कारखाने हैं, और इस ओर बस्तीके भीतर दादा ठाकुरका यह होटल है। यह एक विचित्र बस्ती है। एक कतारमे, एकसे एक सटी हुई, जीर्ण काठकी छोटी छोटी कोठरियाँ बनी हुई हैं। इनमे चीनी, बर्मी, मद्रासी, उड़िया, तैलङ्गी, चटगाँवके हिन्दू और मुसलमान आदि सभी रहते हैं; और, रहते हैं हमारी जातिके बङ्गाली भी। इनके समीप मैने पहले ही पहल यह सीखा है कि किसीको भी छोटी जातिका कहकर घृणा करके उसे दूर रखनेकी बुरी आदतका परित्याग करना कोई बड़ा कठिन काम नही है। जा नही करते वे अशक्यताके कारण न करते हो सो बात नही है: किंतु, जिस कारण वे नही करते उसे प्रकाशित कर देनेसे झगडा बढ खडा होगा।

दादा ठाकुरने आकर यत्नपूर्वक मेरा स्वागत किया और एक छोटा-सा कमरा दिखाकर कहा, "जितने दिन आपकी इच्छा हो इस कमरेमे रहें और हमारे यहाँ भोजन करें,—नौकरी-चाकरी लगनेके बाद दाम चुका देना।"

मैने कहा, "मुझे तो आप पहिचानते नही हैं, एक महीने रहकर और खा-पीकर बिना दाम दिये भी तो चला जा सकता हूँ?"

दादा ठाकुरने अपना कपाल दिखाते हुए हँसकर कहा, "इसे तो आप साथमे ले नही जा सकते महाशय?"

मैने कहा, "जी नही, उसपर मुझे जरा भी लोभ नही है।"

दादा ठाकुर सिर हिलाते हिलाते इस दफे परम गभीर भाव बनाकर बोले, "देखिए, तकदीर है महाशय, तकदीर! इसके सिवाय और कोई रास्ता ही नहीं, यही मै सब लोगोंसे कहा करता हूँ।"

वास्तवमे यह केवल उनका जबानी जमाखर्च नहीं था। इस सत्यपर वे स्वय किस कदर अकपटरूपसे विश्वास करते थे यह हाथोहाथ प्रमाणित करनेके लिए, चार-पाँच महीनेके बाद, एक दिन वे प्रातःकाल बहुतोंकी धरोहर,—रुपये-पैसे अँगूठी, घड़ी इत्यादि, साथ लेकर केवल उनके निराट कपालोंको शून्य होटलके मेजपर जोरसे पटकनेके लिए बर्मामे छोड़कर अपने देश चले गये!

जो भी हो, उस समय दादा ठाकुरकी बात सुननेमे बुरी नहीं लगी और मैं भी उनका एक नया मवक्किल बनकर एक टूटा-सा कमरा दखल करके बैठ गया। रातको एक कच्ची उम्रकी बंगाली दासी मेरे कमरेमे आसन बिछाकर भोजनके लिए जगह करने आई। पासमे ही डाइनिंग रूममेसे लोगोके भोजनका शोर सुनाई दे रहा था। मैंने पूछा, " मुझे भी वहाँ ही भोजन न कराके यहाँ क्यो ? "

वह बोली, " वे लोग तो हलके दर्जेके लोहा काटने-पीटनेवाले मजदूर हैं, बाबू, उनके साथ आपको कैसे खिलाया जा सकता है ? "

अर्थात् वे थे ' वर्कमेन ' मैं था ' भला आदमी '; मैंने हँसकर कहा, " मुझे भी क्या काटना-पीटना पड़ेगा सो तो अब तक भी निश्चित नहीं हुआ है। जो भी हो, आज देती हो तो दे जाओ, किंतु, कलसे मुझे भी उन्हींके साथ उसी कमरेमे खिलाना।

दासी बोली, " आप बाम्हन हैं, आपको वहाँ खानेकी जरूरत नहीं। "

" क्यो ? "

" दासीने गलेको जरा धीमा करके कहा, " बंगाली जरूर हैं, किंतु उनमे एक डोम भी है।"

डोम ! देशमे यह जाति अस्पृश्य-अछूत है। छू जानेपर स्नान करना 'कम्पलसरी' (=अनिवार्य) है या नहीं सो तो नही मालूम, किंतु, कपड़े बदल-कर गंगाजल सिरपर छिडकना पड़ता है सो जानता हूँ। अत्यन्त अचरजसे मैंने पूछा, " और सब ? "

दासी बोली, " और सब अच्छी जातिके हैं। कायथ हैं, कैवर्त्त (=केवट) है, अहीर हैं, लुहार—"

" ये लोग कोई आपत्ति नही करते ? "

दासी अब कुछ हँसकर बोली, " इस परदेशमे सात समुदर पार आकर क्या इतनी बम्हनाई चल सकती है बाबू ! वे कहते हैं, देश लौटकर गगास्नान करके एक अंग-प्रायश्चित्त कर लेंगे। "

कर लेते हों तो कर लेते हों; किन्तु, मुझे मालूम है कि जो दो-चार आदमी बीच-बीचमें देश आते हैं वे चलते-चलाते कलकत्तेकी गंगामे एकाध दफे गंगा-

स्नान तो शायद कर लेते हो, किंतु, अग-प्रायश्चित्त कभी कोई नही करता। परदेशकी आब-हवाके प्रभावसे ये लोग उसपर विश्वास ही नहीं रखते।

देखा कि होटलमे सिर्फ दो हुक्के हैं। एक तो ब्राह्मणोंके लिए, दूसरा जो ब्राह्मण नहीं है उनके लिए। भोजनादिके बाद कैवर्तके हाथसे डोम और डोमके हाथसे लुहार महाशयने हाथ बढ़ाकर हुक्का ग्रहण किया और स्वच्छन्दतासे पिया। दुविधाका लेश भी नही! दो दिन बाद उस लुहारके साथ बातचीत करते हुए मैने पूछा, "अच्छा, इस तरह तुम्हारी जाति नही जाती?"

लुहार बोला, "जाती क्यों नही महाशय, जाती तो है ही!"

"तब?"

"उसने पहले डोम कहकर अपना परिचय थोड़े ही दिया था, कहा था कि मै कैवर्त हूँ। इसके बाद ही सब मालूम पड़ा।"

"तब तुम लोगोने कुछ नहीं कहा?"

"कहते और क्या महाशय, काम तो बहुत ही बुरा हुआ, यह तो मजर करना ही पड़ता है। फिर कहीं उसे शर्मिन्दगी न उठानी पड़े, यह सोचकर सबने जान-बूझकर मामलेको दबा दिया।"

"किन्तु, देशमे होते तो क्या होता?"

वह आदमी जैसे सिहर उठा। बोला, "तो क्या फिर, किसीकी रक्षा हो सकती थी?" इसके बाद जरा-सा चुप रहकर वह खुद ही बोलने लगा, "किन्तु, आप जानते हैं बाबू, मैं बाम्हनोकी बात नहीं कहता,—वे ठहरे वर्णोंके गुरु, उनकी बात ही अलहदा है। नहीं तो, बाकी और सब जात समान है। चाहे तेली, माली, तमोली, अहीर, नाई, बरई, लुहार, कुम्हार और गंधी इन नौ शाखाओंके हिन्दू हो, चाहे हाड़ी-डोम आदि हो,—किसीके शरीरपर कुछ लिखा तो होता नहीं है; सभी भगवानके बनाये हैं, सब एक हैं, सभी पेटकी ज्वालासे जलकर परेदेशमे आये हैं और लोहा पीट रहे हैं। और सोचिए तो बाबू, हरि मोडल डोम है तो क्या हुआ, शराब पीता नहीं, गाँजा छूता नहीं,—आचार-विचारको देखकर कौन कह सकता है कि वह, अच्छी जातका नहीं है,—डोमका लड़का है? और लक्ष्मण,—वह तो भले कायथका लड़का है, उसके आचार-विचारको देखो न एक बार? बच्चू दो दो बार जेल जाते जाते बचे हैं। हम सब नहीं होते तो अब तक जेलमें पड़े मेहतरके हाथकी रोटी खाते होते!"

न तो मुझे लक्ष्मणके सबधमें ही किसी तरहका कुतूहल हुआ और न हरि मोडलने अपने डोमत्वको छिपाकर कितना बड़ा अन्याय किया इसकी मीमासा करनेकी ही मेरी प्रवृत्ति हुई। मै सिर्फ यही सोचने लगा कि जिस देशमे भले आदमी तक, जासूस लगाकर, अपने जन्मके पड़ौसीके छिद्र ढूँढ़कर और उसके पितृ-श्राद्धको बिगाड़कर आत्म-तुष्टि लाभ करते हैं, उसी देशके अशिक्षित नीच जातीय होनेपर भी इन लोगोने एक अपरिचित बगालीका इतना बड़ा भयङ्कर अपराध भी माफ कर दिया, और,—केवल इतना ही नहीं, पीछेसे इस परदेशमे कही उसे लज्जित और हीन होकर न रहना पड़े, इस आशकासे उस प्रसगको उठाया तक नही! यह सब असभव कार्य किस तरह सभव हुआ? विदेशी आदमी भले ही न समझ सके, परतु, हम तो समझ सकते हैं कि हृदयकी कितनी विशालता और मनकी कितनी बड़ी उदारता इसके लिए आवश्यक है! यह केवल उनके देश छोड़ विदेश आनेका ही फल है, इसमे कोई सदेह नही है। खयाल हुआ कि इसी शिक्षाकी हमारे देशको इस समय सबसे अधिक जरूरत है। सारी जिन्दगी अपने छोटेसे गाँवमें ही बैठकर बिता देनेसे बढ़कर, मनुष्यको सब विषयोमे छोटा सकुंचित कर देनेवाला, बड़ा शत्रु और कोई नहीं है। खैर, जाने दो इस बातको।

इन लोगोंके साथ मै बहुत दिनोतक रहा। किंतु, जबतक उन्हे यह न मालूम हुआ कि मै पढ़ा-लिखा हूँ, केवल तबतक ही मुझे इनके साथ घनिष्ठतासे मिलने-जुलनेका सुयोग मिलता रहा,—उनके सब तरहके सुख-दुःखोमें मै भी हिस्सेदार बनता रहा। किन्तु, जिस क्षण ही उन्हे मालूम हुआ कि मै भला आदमी हूँ और मुझे अँग्रेजी आती है, उसी क्षणसे उन्होने मुझे गैर समझना शुरू कर दिया। अँग्रेजी जाननेवाले शिक्षित भले आदमियोके समीप ये लोग आपद्-विपद्के समय जाते जरूर हैं, उनसे सलाह-मशविरा भी करते हैं,—यह भी सच है, परन्तु, ये लोग न तो उनपर विश्वास ही करते हैं और न उन्हे अपना आदमी ही समझते हैं। देशके इस कुसस्कारको वे आज भी दूर नहीं कर पाये हैं कि मैं उन्हे छोटा समझकर मन-ही-मन घृणा नहीं करता हूँ,—पीठ पीछे उनका उपहास नही करता हूँ। केवल इसी कारण मेरे कितने सत्संकल्प इन लोगोंके बीच विफल हो गये हैं, मैं समझता हूँ, कि इसकी कोई सीमा नहीं।—किन्तु खैर, आज इस बातको जाने दो।

मैंने देखा कि बंगाली स्त्रियोंकी संख्या भी इस ओर कुछ कम नही है। यद्यपि

उनके कुलोंका परिचय न देना ही अच्छा है; किन्तु, आज वे किसी और दूसरे ही ही रूपमें परिवर्तित होकर एकदम शुद्ध गृहस्थोंकी धर्मपत्नियाँ बन गई हैं ! पुरुषोंके मनोंमें तो शायद आज भी 'जाति' की पुरानी स्मृति बाकी बनी हुई है, किंतु, स्त्रियाँ तो न कभी देश आती हैं और न देशके साथ कोई संपर्क ही रखती हैं। उनके बच्चे-बच्चियोंसे पूछा जाय तो वे यही कहते हैं कि 'हम बंगाली हैं,'—अर्थात् मुसलमान, क्रिस्तान, बर्मी आदि नहीं हैं,—बंगाली हिन्दू हैं। आपसमें विवाहादि आदान-प्रदान स्वच्छन्दतासे होता है,—केवल 'बंगाली' होना ही यथेष्ट है, और चटगाँवके किसी बंगाली ब्राह्मणद्वारा मंत्र पढ़ाकर दोनोंके हाथ मिलाकर एक कर दिया जाना ही बस है। विधवा-हो जानेपर विधवा-विवाहका रिवाज नहीं है,—सो शायद इसलिए कि पुरोहित मंत्र पढ़नेको राजी नहीं होता। परंतु, वैधव्य भी ये पसंद नहीं करतीं और फिर एक नयी गृहस्थी बसा लेती हैं। उनके लड़के-बच्चे होते हैं और वे भी कहते हैं कि, 'हम बंगाली हैं,' तथा उनके विवाहमें वही पुरोहित आकर वैदिक मंत्र पढ़ाकर विवाह करा जाते हैं,—इस दफे उन्हें तिल-भर भी आपत्ति नहीं होती। पतिके द्वारा अत्यन्त दुःख यत्रणा पानेपर ये दूसरेका आश्रय भी ग्रहण करती हैं जरूर, किंतु, यह अत्यन्त लज्जाकी बात समझी जाती है और इसके लिए दुःख-यत्रणाका परिमाण भी अत्यधिक होना चाहिए। परंतु फिर भी, ये वास्तवमें हिन्दू हैं और दुर्गा-पूजासे शुरू करके षष्ठी महाकाल आदि कोई भी पूजा नहीं छोड़ती।

७

रास्तेमें जिन लोगोंके सुख-दुःखमें हिस्सा बटाता हुआ मैं इस परदेशमें आकर उपस्थित हुआ था, घटना-चक्रसे वे तो रह गये शहरके एक छोरपर और मुझे आश्रय मिला शहरके दूसरे छोरपर। इसलिए, इन पन्द्रह-सोलह दिनोंके बीच उस ओर न जा सका। इसके सिवाय, सारे दिन नौकरी-की उम्मेदवारीमें घूमते घूमते इतना थक जाता था कि शामके कुछ पहले वास-स्थानपर लौटनेपर इतनी शक्ति बाकी ही नहीं बचती थी कि मैं कहीं भी बाहर जाऊँ। क्रम-क्रमसे जैसे जैसे दिन बीतने लगे मेरे मनमें यह धारणा होने लगी कि इस सुदूर परदेशमें आनेपर भी नौकरी प्राप्त करना मेरे लिए ठीक उतना ही कठिन है जितना कि देशमें था।

अभयाकी बात याद आई। जिस आदमीपर भरोसा करके वह घर छोड़कर अपना पति खोजने आई है, खोज न मिलनेपर उस आदमीका क्या हाल होगा! घर छोड़कर बाहर आनेका मार्ग काफी खुला होनेपर भी लौटनेका मार्ग ठीक उतना ही प्रशस्त पड़ा रहेगा,—इतनी बड़ी आशाकी कल्पना करनेका साहस बङ्गाल देशकी आब-हवामें पले होनेके कारण मुझमे नहीं है। अधिक दिनोंतक अपना निर्वाह कर सकने लायक धन-बल संग्रह करके उन्होंने पैर नहीं बढ़ाया है, इसका अनुमान करना भी मेरे लिए कठिन नहीं है। बाकी बचा केवल वह रास्ता जो कि पन्द्रह आने बंगालियोंका एकमात्र सहारा है,—अर्थात्, महीने-पन्द्रह दिनके बाद पराई नौकरी करके मरण-पर्यन्त किसी तरह शरीरमे हाड़-मास बनाये रहकर जीते रहना। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि रोहिणी बाबूके लिए भी इसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं था, किन्तु, रंगूनके इस बाज़ारमें केवल अपना ही पेट भरने लायक नौकरी जुटानेमे जब मेरा यह हाल है तब एक स्त्रीको अपने कंधेपर लादे हुए अभयाके उस बेचारे बिना ढंग-ढौलके गुमसुम 'भइया'का क्या हाल होगा इसकी कल्पना करके मैं भयभीत हो उठा। मैंने स्थिर किया कि, जैसे भी बने, कल एक दफे जाकर उनकी खबर जरूर लूँगा।

दूसरे दिन शामके समय करीब दो कोस जमीन खूँदकर उनके वासस्थानपर पहुँचा और देखा कि बाहरके बरामदेमें एक छोटेसे मोढ़ेपर रोहिणी भइया बैठे हुए हैं। उनका मुख-मंडल बादल छाये हुए 'आषाढस्य प्रथम दिवसे'की तरह गुरु-गंभीर हो रहा है। बोले, "अरे, श्रीकान्तबाबू!—आप अच्छे तो हैं?"

मैं बोला, "जी, अच्छा ही हूँ।"

"जाइए, भीतर जाकर बैठिए।"

मैंने डरते हुए पूछा, "आप लोग तो सब अच्छे हैं?"

"हूँ,—भीतर जाइए न, वे घरमे ही हैं।"

"अच्छा जाता हूँ,—आप भी आइए न?"

"नहीं,—मैं यहींपर कुछ देर आराम करूँगा। परिश्रम करते करते एक तरहसे मेरी हत्या ही हुई जाती है,—दो घड़ी पैर फैलाकर कुछ बैठ ही लूँ।"

परिश्रमकी अधिकतासे मरे हुएसे हो गये हैं, ऐसा उनके चेहरेपर प्रकाशित न होते हुए भी मै मन-ही-मन कुछ उद्विग्न हो उठा। रोहिणी भइयाके भीतर भी इतनी गम्भीरता इतने दिनसे प्रच्छन्न रूपमें वास कर रही है,—अपनी आँखों

देखे विना यह विश्वास करना कठिन था, किन्तु मामला क्या है ? मैं खुद भी तो रास्ते-रास्तेकी धूल छानकर ऊब उठा हूँ। मेरे यह रोहिणी भइया भी क्या—

किवाड़ोंकी आड़मेंसे अभयाने अपना हँसता हुआ चेहरा बाहर निकालकर गुपचुप इशारा करके मुझे भीतर बुलाया। दुविधामें पड़कर मैंने कहा, " चलिए न रोहिणी भइया, भीतर चलकर गप-शप करें।"

रोहिणी भइयाने जवाब दिया, " गप-शप !—इस समय मर जाऊँ तो जान बचे, यह जानते हो श्रीकान्त बाबू ? "

' नहीं जानता ', यह मुझे स्वीकार करना पड़ा। उन्होंने जवाबमें केवल एक प्रचण्ड उसास छोड़ी और कहा, "दो दिन बाद ही मालूम हो जायगा। "

अभयाके दुबारा गुपचुप बुलानेपर बाहर अधिक देर बहस न करके मैंने अन्दर प्रवेश किया। भीतर रसोई-घरके सिवाय दो और कमरे सोनेके हैं। सामनेका कमरा ही बड़ा है और उसीमें रोहिणी बाबू सोते हैं। एक ओर रस्सीकी खाटपर उनके बिस्तर हैं। अन्दर घुसते ही देखा,—फर्शके ऊपर आसन बिछा है, एक ओर रकाबीमें पूरी-तरकारी, थोड़ा-सा हलुआ और एक गिलास जल रक्खा हुआ है। इसमें संदेह नहीं कि ज्योतिषसे पता लगाकर यह आयोजन दोपहर-से ही कुछ मेरे लिए तैयार नहीं किया गया है। इसलिए क्षण-भरमें ही मैं समझ गया कि कुछ लड़ाई-झगड़ा चल रहा है। इसीलिए रोहिणी भइयाका मुँह बादलोंसे ढका हुआ है,—इसीलिए वे मर जाऊँ तो जान बचनेकी बात कह रहे हैं ! मैं चुपचाप खाटपर जाकर बैठ गया। अभयाने थोड़ी-सी दूर खड़े होकर पूछा, " आप अच्छे तो हैं ? इतने दिनों बाद शायद गरीबोंका खयाल आया है ? "

भोजनके थालको दिखाकर मैंने कहा, " मेरी बात पीछे होगी। किन्तु, यह क्या है ? "

अभया हँसी और कुछ देर चुप रहकर बोली, " यह कुछ नहीं है, आप कैसे हैं सो कहिए। "

"कैसा हूँ सो मैं खुद ही नहीं जानता, दूसरेको किस तरह बताऊँ ?" फिर कुछ सोचकर बोला, " जबतक कोई नौकरी न मिल जाय तब तक इस प्रश्नका जवाब देना कठिन है। रोहिणी बाबू कहते थे,—" मेरे मुँहकी बात मुँहमें

ही रह गई। रोहिणी-भइया अपनी फटी चट्टियोंसे एक अस्वाभाविक शब्द करते हुए फटर फटर भीतर घुस आये और किसीकी ओर भी दृष्टिपात किये बगैर उन्होंने पानीका गिलास उठा लिया। एक ही साँसमें उन्होंने उसे आधा खाली कर दिया। बाकी दो-तीन घूँटमे जबर्दस्ती पीकर शून्य गिलास काठकी मेजपर रख दिया, और वे यह कहते कहते बाहर चल दिये, " जाने दो, खाली पानी पीकर ही पेट भर लूँ! मेरा यहाँपर और कौन बैठा है जो भूख लगनेपर खानेको देगा! "

मैंने अवाक् होकर अभयाकी ओर ताका। पल-भरके लिए उसका मुँह सुर्ख हो गया, किन्तु, उसी क्षण उसने अपने आपको सँभाल लिया और हँसकर कहा, " भूख लगनेपर जलके गिलासकी अपेक्षा भोजनका थाल ही मनुष्यको पहले दीखता है। "

रोहिणीने वह बात कानोंपर ही नहीं दी, और वे बाहर चल दिये, किन्तु, आधा मिनट खतम होनेके पहले ही वापिस लौट आये और किवाड़ोंके सामने खड़े होकर मुझे संबोधन कर बोले, " सारे दिन आफिसमे मेहनत करनेके बाद भूखके मारे सिर चक्कर खा रहा था, श्रीकान्त बाबू, इसीलिए उस समय आपसे बात न कर सका, कुछ खयाल न करियेगा! "

मैंने कहा, " नहीं। "

उन्होंने फिर कहा, " आप जहाँ ठहरे है वहाँ मेरे लिए भी ज़रा-सा बन्दोबस्त कर सकते हैं? "

उनके मुँहकी भाव-भंगीको देखकर मै हँस पड़ा, बोला, किन्तु वहाँपर पूड़ियाँ और मोहन-भोगका डौल नही है। "

रोहिणी भइया बोले, " जरूरत ही क्या है! भूखके समय कोई यदि जरा-सा गुड़ और जल दे देवे तो वही अमृत है! यहाँ तो वह भी कौन देता है? "

मैंने जाननेकी इच्छासे अभयाकी ओर दृष्टि डाली। तुरन्त ही वह धीरेसे बोली " सिर-दर्द करता था इसलिए बेवक्त सो गई थी, इसी कारण भोजन बनानेमे आज जरा-सी देर हो गई है श्रीकान्त बाबू। "

मैंने आश्चर्यके साथ कहा, " बस, यही अपराध है? "

अभयाने उसी तरह शान्त भावसे कहा, " यह क्या कोई तुच्छ अपराध है, श्रीकान्त बाबू? "

" तुच्छ नहीं तो और क्या है ! "

अभया बोली, " आपके समीप तुच्छ हो सकता है, किन्तु, जो महाशय अपनी इस फिजूलकी गले-पड्डूको खाने देते हैं वे कैसे माफ करेंगे ? मेरा सिर-दर्द करे तो उनका काम कैसे चल सकता है ? "

रोहिणी बाबू एकदम तड़क कर गर्जे उठे और बोले, " तुम गले पड्डू हो, मैंने यह कब कहा ! "

अभया बोली, " कहोगे क्यों, हजार तरहसे दिखा तो रहे हो ! "

रोहिणी भइया बोले, " दिखा रहा हूँ ! ओह, तुम्हारे मनमे जलेबी जैसा पेच है ! यह तुमने मुझसे कहा था कि सिर-दर्द कर रहा है ? "

अभयाने कहा, " कहनेसे लाभ ही क्या था ? क्या तुम विश्वास करते ? "

रोहिणी भइया मेरी ओर पलटकर ऊँचे कण्ठसे बोल उठे," सुनिए, श्रीकान्त-बाबू, ये सब बाते सुन रखिए। इन्हींके लिए मैंने देशका त्याग किया,—घर लौटनेका रास्ता बन्द हो गया,—अब इनके मुँहकी बात सुनिए। ओह—"

अभयाने भी इस दफे गुस्सेसे जवाब दिया, " मेरा जो होना होगा हो जायगा, तुम्हारी जब इच्छा हो देश लौट जाओ ! मेरे लिए तुम क्यो इतना कष्ट सहोगे ? तुम्हारी कौन होती हूँ मैं ? इस तरह ताने कसनेकी अपेक्षा—"

उसकी बात पूरी भी न होने पाई थी कि रोहिणी भइया करीब करीब चीत्कार कर उठे," सुनिए, श्रीकान्त बाबू, दो रोटी पका देनेके लिए,—ये बाते आप जरा सुन रखिए ! अच्छा, आजसे कभी तुमने यदि मेरे लिए रसोई-घरमें पैर रक्खा तो तुम्हे बहुत ही बड़ी,—बल्कि मै होटलमे—" कहते कहते उनका गला रुलाईसे भर आया, वे धोतीका छोर मुँहपर लगाकर तेजीसे कदम रखते हुए मकानके बाहर हो गये। अभयाने अपना उतरा हुआ चेहरा नीचे झुका लिया,—न जाने आँखोके आँसू छिपानेके लिए या यो ही; किन्तु, मैं तो एकदम काठ हो गया। कुछ दिनोसे दोनोंके बीच अनबन हो रही है, यह तो आँखोसे ही देख लिया, किन्तु, इसका गहरा हेतु दृष्टिसे बिल्कुल परे होनेपर भी वह क्षुधा और भोजन बनानेकी त्रुटिसे बहुत बहुत दूर है, यह समझनेमें मुझे जरा-सा भी विलम्ब नहीं लगा। तो फिर, क्या पति खोजनेकी बात भी—

मैं उठकर खड़ा हो गया। इस नीरवताको भंग करनेमे मुझे खुद भी जैसे

सकोच होने लगा। कुछ इधर-उधर करके अन्तमे मैंने कहा, "मुझे बहुत दूर जाना है,—इस समय तो अब चलता हूँ।"

अभयाने मुँह ऊपर उठाकर कहा, "अब कब आइएगा?"

"बहुत दूर—।"

"तो फिर जरा ठहर जाइए", कहकर अभया बाहर चली गई। पाँच-छह मिनट बाद लौटकर आई और मेरे हाथमें एक टुकड़ा कागज देकर बोली, "जिस कामके लिए मैं आई हूँ वह सब इसमें सक्षेपमे लिख दिया है। पढकर जो ठीक जँचे सो करिएगा। मैं आपसे इससे अधिक कुछ कहना नहीं चाहती।" इतना कहकर गलेमें ऑचल डालकर आज उसने मुझे प्रणाम किया और फिर उठकर पूछा, "आपका ठिकाना क्या है?"

सवालका जवाब देकर मैं उस छोटेसे कागजको मुट्ठीमे छिपाकर धीरे धीरे बाहर निकल आया। बरामदेके बाहरका वह मोढ़ा इस समय शून्य था। रोहिणी भइया-को भी मै आसपास कहीं न देख सका। डेरेपर पहुँचने तक मैं अपना कुतूहल दमन न कर सका। पासमे ही रास्तेके बगलमे एक छोटी-सी चायकी दूकान देख-कर उसमे घुस गया और लैम्पके उजालेमे मैंने उस पत्रको अपनी ऑखोके सम्मुख खोलकर रख लिया। पेंसिलकी लिखावट थी किंतु ठीक पुरुषके-से हस्ताक्षर थे! सबसे पहले उसने अपने पतिका नाम और उसका पुराना ठिकाना देकर नीचे लिखा था, "आज आप जो अपने मनमे धारणा लिये जा रहे हैं सो मै जानती हूँ; और, विपत्तिके समय मुझे आपका कितना भरोसा है सो भी आप जानते हैं। इसीलिए मैंने आपका ठिकाना पूछ लिया है।"

अभयाके इस लेखको मैंने बार बार पढ़ा परतु उससे इन कुछ थोड़ी-सी बातोंके सिवाय और किसी भी अतिरिक्त बातका अन्दाजा नही लगा सका। आज इन लोगोंका परस्परका व्यवहार अपनी नजरसे देखकर कोई बाहरी आदमी जो भी सोच सकता है उसका अनुमान करना अभया सरीखी बुद्धिमती रमणीके लिए बिल्कुल ही कठिन नहीं है। किन्तु, फिर भी, वह अन्दाज सही है या गलत, इस सम्बन्धमे बिन्दु-मात्र भी उसने इशारा नही किया। उसके पतिका नाम और ठिकाना तो मैंने पहले भी सुना है, विपत्तिके समय मुझपर निर्भर करते हुए भी मैंने उसे अपनी ऑखों देखा है; परंतु, उसके बाद? इस समय वह उसकी खोज करना चाहती है या नहीं, अथवा और कौन-सी विपत्ति

अवश्यभावी समझकर उसने मेरा पता ले लिया है,—आदि किसी बातका आभास तक भी मै उस लेखमेंसे खोजकर बाहिर न निकाल सका। बात चीतसे अनुमान होता है कि रोहिणी किसी दफ्तरमे नौकरी पा गया है। किस तरह पा गया है सो भी मुझे मालूम नही हुआ,—पर हाँ, खाने-पीनेकी दुश्चिन्ता कमसे कम मरी तरह उन्हे नही है,—पूड़ियाँ भी खानेको मिल जाती हैं। फिर भी, अभयाने किस किस्मकी विपत्तिकी सभावनाके लिए मुझे तैयार कर रक्खा है और ऐसा करनेसे उसने क्या लाभ सोच रक्खा है, सो अभया ही जाने।

बाहिर निकलकर रास्ते-भर मैं केवल इन्ही लोगोंके विषयमे सोचता सोचता डेरेपर पहुँचा। कुछ भी स्थिर नहीं कर सका। केवल यही निश्चय किया कि अभयाका पति कोई भी क्यो न हो, और चाहे जहाँ चाहे जिस तरह क्यो न हो, स्त्रीकी विशेष अनुमतिके बगैर उसे खोज निकालनेका कुतूहल मुझे रोक ही रखना होगा।

दूसरे दिनसे मैं फिर अपनी नौकरीकी उम्मीदवारीमे लग गया, किंतु, हजारों चिन्ताओंमे भी अभयाकी चिन्ताको मनके भीतरसे झाड़कर नही फेंक सका।

किन्तु, चिन्ता चाहे जितनी ही क्यो न करूँ, दिनके बाद दिन समान भावसे लुढकने लगे। इधर भाग्यवादी दादा ठाकुरका प्रफुल्ल चेहरा धीरे धीरे मेघाच्छन्न होने लगा। भोजनमे तरकारियाँ भी पहले परिमाणमे और फिर संख्यामे धीरे धीरे विरल होने लगीं—किन्तु, नौकरीने मेरे संबंधमे जरा भी अपना मत-परिवर्तन नही किया। जैसी नजरसे उसने पहले दिन देखा था, महीने-भरसे अधिक बीतनेके बाद भी, ठीक उसी नज़रसे वह देखती रही। तब न जाने किसके ऊपर मै क्रमशः उत्कंठित और विरक्त होने लगा। किन्तु, उस समय तक मै यह नही जानता था कि जबतक नौकरी करनेकी पूरी जरूरत न हो, तबतक वह दर्शन नही देती। यह ज्ञान एक दिन एकाएक रास्तेमे रोहिणी बाबूको देखकर प्राप्त हुआ। वे बाजारमे रास्तेके किनारे शाक-सब्जी खरीद रहे थे। मैं चुपचाप उनके निकट खड़ा होकर देखता रहा। यद्यपि उनके शरीरपरके कपड़े, जूते आदि जीर्णताकी प्रायः चरम सीमाको पहुँच चुके हैं,—भयकर कड़ी धूपमे सिरपर एक छतरी तक नही है,—किन्तु, खाद्य पदार्थ वे बड़े आदमियोकी तरह खरीद रहे हैं,—इस काममें ढूँढ़-खोज और जाँच-परखकी भी कोई हद नही है। झंझट और जहमत चाहे जितनी क्यो न उठना पड़े, अच्छीसे

अच्छी चीज खरीदनेकी ओर उनके प्राण लगे हुए हैं। पलक मारते सारा व्यापार मेरी नजरके सामने तैर आया। इस खरीद-विक्रीके भीतरसे उनका व्यग्र व्याकुल प्रेम कहाँ जाकर पहुँच रहा है, यह मानो मै सूर्यके प्रकाशके समान सुस्पष्ट देख सका। क्यो यह सब लेकर उन्हे अपने मकानपर पहुँचना ही चाहिए और क्यो उन्हे इन सब चीजोका मूल्य देनेके लिए नौकरी खोजनी ही पडी, इस समस्याकी मीमासा करनेमे जरा भी देर न लगी। आज मै साफ साफ समझ गया कि क्यो इस मनुष्योके जगलमे उसने अपना रास्ता पा लिया है और क्यो मै अभीतक असफल रहा हूँ।

यह दुबला-पतला आदमी रगूनके राजमार्गपर, एक बडी-सी गठरी हाथमे लिए हुए, सैकडो जगह फटे हुए मैले कपड़े पहिने घरकी ओर जा रहा है,—आडमेसे मैने उसके परितृप्त मुखकी ओर नजर की। अपनी ओर नजर करनेका मानो उसे अवकाश ही नहीं है। जिस वस्तुसे उसका हृदय परिपूर्ण हो रहा है उससे, उसके निकट, कपडे लत्तोका दैन्य मानो एकबारगी अकिंचित्कर हो गया है! और मै अपने कपडोके साधारणसे मैलेपनके ही कारण मानो प्रत्येक कदमपर शर्मके मारे सिकुड़कर जड़ हुआ जाता हूँ! रास्तेपरसे चलनेवाले बिल्कुल अपरिचित व्यक्तिकी भी अपने ऊपर नजर पड़ते देख शर्मके मारे मरा जाता हूँ!

रोहिणी भइया चले गये,—मैने उन्हे नहीं पुकारा और दूसरे क्षण ही वे लोगोंके बीच अदृश्य हो गये। क्यो, सो मुझे मालूम नहीं, पर इस बार ऑसुओंके मारे मेरी दोनो ऑखे धुँधली हो गई। चादरके छोरसे उन्हे पोंछते हुए रास्तेके किनारे किनारे धीरे धीरे मै अपने डेरेपर लौट आया और बार बार मन-ही-मन कहने लगा, इस प्रेमसे बढकर शक्ति, इस प्रेमसे बढकर शिक्षक ससारमे शायद और कोई नही! ऐसी कोई बडी बात नही जिसे यह न कर सके।

फिर भी, बहुत युगोका सचित अध-संस्कार मेरे कानोमे चुप-चाप कहने लगा,—यह शुभ नहीं है! यह पवित्र नही है,—अन्ततक इसका परिणाम अच्छा नही होता!

डेरेपर पहुँचते ही एक बडा लिफाफा मिला। खोलकर देखा, नौकरीकी दरखास्त मजूर हो गई है। सागौनकी लकडीका एक बड़ा भारी व्यापारी, अनेक लोगोके आवेदन-पत्र होते हुए भी, मुझ गरीबपर ही प्रसन्न हुआ है। भगवान् उसका भला करें।

नौकरी नामक वस्तुसे पुराना परिचय न था; इसलिए, उसे पाकर भी मनमे संदेह बना रहा कि वह बहुत दिनोतक बनी रहेगी या नहीं। मेरे जो 'साहब' हुए थे वे सच्चे साहब (अँग्रेज) होकर भी, देखा कि, बगला भाषा खूब जानते हैं, क्योकि, वे कलकत्तेके आफिससे बदलकर बर्मा आये थे।

दो हफ्तेकी नौकरीके उपरान्त ही उन्होने बुलाकर कहा, "श्रीकान्त बाबू, तुम इस टेबलपर आकर काम करो, तनख्वाह भी इससे करीब ढाई गुनी पाओगे।"

मैने प्रकट रूपसे तथा मन-ही-मन भी साहबको लाखो आशीर्वाद देते हुए उस हड्डी-पसली निकली हुई टेबलको छोडकर एकदम हरी बानात मढी हुई टेबलपर दखल जमा लिया। मनुष्यका जब भला होना होता है तब इसी तरह होता है,—हम लोगोकी होटलके दादा ठाकुरने बिल्कुल ही मिथ्या नही कहा है।

किरायेकी गाड़ीपर चढकर यह खुशखबरी अभयाको देने गया। रोहिणी भइया आफिससे लौटकर जल-पान करने बैठे थे, किन्तु, आज उन्हे केवल पानी पीकर अपनी भूख मिटाते हुए नही देखा। बल्कि, आज जिस तरह वे अपनी भूख पूरी कर रहे थे, उस तरह पूरी करते ससारमे और चाहे जिसे आपत्ति हो, मुझे तो नहीं थी। अतएव यह कहना फिजूल है कि अभयाके भोजनके प्रस्तावपर मैंने अपनी असम्मति नही प्रकट की। खाना-पीना शेष होते ही रोहिणी भइया कोट पहिरने लगे। अभयाने खिन्न कण्ठसे कहा, "तुमसे मै बराबर कहती आती हूँ रोहिणी भइया, कि यह शरीर लेकर इतना परिश्रम मत किया करो, क्या तुम किसी तरह भी न सुनोगे? अच्छा, हम लोग क्या करेगे अधिक रुपयोका? दिन तो हमारे अच्छी तरह ही कट रहे हैं।"

रोहिणी भइयाके चक्षुओंसे मानो स्नेह झरने लगा। वे कुछ हँसकर बोले, "अच्छा, अच्छा, सो ठीक। एक रसोइया तक तो रख नहीं सकता, चूल्हेके नजदीक दोनो बेला पचते पचते तुम्हारी तो देह सूख गई है।" वे इतना कहकर, पान खाकर, जल्दी जल्दी कदम रखते हुए बाहर चल दिये।

अभया एक छोटी साँस दबाकर, जबरन जरा हँसकर, बोली, "देखिए तो श्रीकान्त बाबू, इनका अन्याय! सारे दिन जी-तोड़ मेहनत करनेके बाद घर आकर कुछ आराम करे, सो तो नही, अब रातको भी नौ बजे तक लड़कोको पढाने बाहर चले गये हैं। मैं इतना कहती हूँ, पर किसी तरह सुनते ही नहीं। दो आदमियोंकी रसोईके लिए रसोइया रखनेकी, कहो तो, जरूरत ही क्या है?

है न, यह सब उनकी ज्यादती ?" इतना कहकर उसने एक ओरको ऑखे फेर ली।

मैंने धीरेसे कुछ हँस दिया। 'ना' या 'हाँ' जवाब देना मेरे लिए सभव नहीं था,—मेरे विधाताके लिए भी सभव था या नहीं, इसमे सदेह है।

अभया उठकर गई और एक पत्र लाकर उसने मेरे हाथपर रख दिया। कुछ दिन हुए वह बर्मा रेलवे कपनीके आफिससे आया था। बड़े साहबने दु:ख प्रकाशित करते हुए लिखा था कि अभयाका पति करीब दो वर्ष पहले किसी बहुत बड़े अपराधके कारण कंपनीकी नौकरीसे बर्खास्त कर दिया गया है, तबसे वह कहाँ चला गया सो वे नही जानते।

हम दोनो ही बहुत देर तक सन्न होकर बैठे रहे। अन्तमे अभयाने ही मौन तोडा, पूछा, "अब आप क्या सलाह देते हैं ?"

मैंने धीरेसे कहा, "मै क्या सलाह दूँ ?"

अभया सिर हिलाकर बोली, "नही, सो नही हो सकता। ऐसी परिस्थितिमे आपको ही कर्तव्य स्थिर कर देना होगा। इस पत्रके मिलनेके बादसे ही मै बड़ी आशासे आपकी राह देख रही हूँ।"

मैंने मन-ही-मन कहा, बहुत खूब! मेरी राय लेकर ही घरसे बाहर निकली थीं न, जो मेरी सलाहके लिए राह जोह रही हो!

बहुत देरतक चुप रहकर पूछा, "घर लौट जानेके सम्बन्धमे आपका क्या मत है ?

अभया बोली, "कुछ भी नही। आप कहे तो जा सकती हूँ, किन्तु, मेरा तो वहॉ कोई है नही।"

"रोहिणी बाबू क्या कहते हैं ?"

"वे कहते हैं कि नही लौटेंगे। कमसे कम दस बरस तक तो वे उस ओर मुँह भी नही फिरायँगे।"

बहुत देर तक चुप रहकर मैंने कहा, "वे क्या आपका बोझा बराबर सँभाले रह सकेंगे ?"

अभया बोली, "पराये मनकी बात, कहिए किस तरह जानूँ ? इसके सिवाय वे खुद भी किस तरह जान सकते हैं ?" इतना कहकर क्षण-भर वह चुप रही,

फिर बोली, " एक बात और है। मेरे लिए वे जरा भी जिम्मेदार नही हैं। दोष कहो, भूल कहो, जो कुछ है सो मेरी है। "

गाड़ीवानने बाहरसे पुकारा, " बाबू, और कितनी देर लगेगी ? "

जैसे मेरी जान बच गई। इस अवस्था-सकटके भीतरसे सहसा परित्राण पानेका कोई उपाय मुझे खोज नही मिल रहा था। यह सच है कि यह विश्वास करनेको मेरा दिल नही चाहता था कि अभया वास्तवमे ही अपार सागरमे गिरकर गोते खा रही है, किन्तु, मैने स्त्रियोकी इतने तरहकी उलटी-सुलटी अवस्थाएँ देखी हैं कि बाहरमे इन आँखोपर विश्वास कर लेना कितना बड़ा अन्याय है सो मै निःसशय रूपसे समझता था।

गाड़ीवानका एक दफे और बुलाना था कि मै क्षण-भर भी विलम्ब किये बगैर उठ खड़ा हुआ और बोला, " मै शीघ्र ही और एक दिन आऊँगा। " इतना कहकर मै तेजीसे बाहर हो गया। अभया और कुछ न बोली। निश्चल मूर्तिकी तरह जमीनकी ओर देखती रह गई।

८

गाड़ीमे बैठते ही गाड़ी चल दी, किंतु, दस हाथ भी नही गया था कि याद आया, छड़ी तो वही भूल आया हूँ। तुरत गाड़ी खड़ी की और मकानमे प्रवेश करते ही देखा कि ठीक दरवाजेके सामने अभया उलटी पड़ी है और बाणसे बिंधे हुए पशुकी तरह अव्यक्त वेदनासे पछाड़ खाकर मानो प्राण विसर्जन कर रही है।

क्या कहकर उसे सात्वना दूँ सो मेरी बुद्धिके परेकी वस्तु थी। वज्राहतकी तरह कुछ देर सन्न खड़ा रहकर उसी तरह चुपचाप लौट आया। अभया जिस तरह रो रही थी उसी तरह रोती रही। उसे यह मालूम ही न हो सका कि उसकी इस निगूढ असीम वेदनाका एक मौन साक्षी भी इस जगत्मे विद्यमान है।

राजलक्ष्मीका अनुरोध मै भूला नहीं था। पटनेको पत्र लिखनेकी बात, जब आया था तभीसे, मेरे मनमे थी। किन्तु, पहली बात तो यह कि ससारमे जितने भी कठिन काम हैं, उनमे चिट्ठी लिखनेको मै किसीसे भी कम नहीं समझता। इसके सिवाय, फिर लिखूँ भी क्या? किन्तु, अभयाका रोना मेरे दिलमें इस तरह भारी हो उठा कि उसमेका कुछ अंश बाहिर निकाल दिये बगैर मेरी गति ही नहीं है,

ऐसा मालूम होने लगा। इसीलिए, डेरेपर पहुँचते ही कागज-कलम जुटाकर बाई-जीको पत्र लिखने बैठ गया।—और उसको छोड़कर मेरे दुःखका अंश बटाने-वाला और था ही कौन ? दो-तीन घण्टे बाद इस 'साहित्य-चर्चा'को समाप्त करके जब मैंने कलम रक्खी तब रातके बारह बज गये थे। किन्तु, कहीं सुबह दिनके उजालेमे उस चिट्ठीको भेजनेमे लज्जा न आने लगे, इसलिए, मिजाज गरम रहते रहते ही मै उसे उसी समय डाक-बाक्समे छोड़ आया।

मुझे संदेह था कि एक भले घरकी स्त्रीकी निदारुण वेदनाका गुप्त इतिहास और किसी दूसरी स्त्रीपर प्रकट करना चाहिए या नहीं, किन्तु, अभयाके इस परम और चरम सकटके समय वह राजलक्ष्मी, जिसने कि एक दिन प्यारी-बाईकी मर्मान्तिक तृष्णा दमन की थी, उसके लिए क्या नेक सलाह देती है, यह जाननेकी आकाक्षाने मुझे एकदम बेकाबू कर दिया। किन्तु, अचरजकी बात यह है कि इस सवालको उलट पलटकर एक बार भी नहीं सोचा,—अभयाके पतिका पता न लगनेकी समस्या भी बार बार मनमे आ रही थी, किन्तु, पता लगनेपर यह समस्या और भी अधिक जटिल हो सकती है,—यह चिन्ता एक दफे भी उदित नही हुई। और, इस गोरखधंधेको सुलझानेका भार भी विधाताने मेरे ही ऊपर निर्दिष्ट कर रक्खा है सो भी किसने सोचा था !

तीन-चार दिनके बाद मेरा एक बर्मी क्लार्क टेबलपर एक फाइल रख गया। उसपर नीली पेंसिलसे लिखा हुआ बड़े साहबका मन्तव्य था। उन्होने मुझे 'केस'का फैसला करनेका हुक्म दिया था। मामलेको शुरूसे अखीरतक पढ़कर कुछ मिनटके लिए मै सन्न होकर रह गया। घटना सक्षेपमे यह थी कि हमारे प्रोम आफिसके एक क्लार्कका, वहाँके अँग्रेज मैनेजरने, लकड़ी चुरानेके सन्देहमे सस्पेण्ड करके रिपोर्ट की है। क्लार्कका नाम देखकर ही मुझे मालूम हो गया कि यही हमारी अभयाका पति है। इसकी भी चार-पाँच पेजकी कैफि-यत थी। बर्मा रेलवेमे भी किसी गभीर अपराधके कारण यह नौकरीसे बरतरफ हुआ होगा, यह अनुमान करनेमे भी मुझे देर नही लगी।

थोडी ही देर बाद उस क्लार्कने आकर कहा कि एक भले आदमी आपसे मिलना चाहते हैं। इसके लिए मै तैयार ही था और मै निश्चयसे जानता था कि प्रोमसे वह स्वय केसकी तदबीर करने आयगा। इसलिए, जब कुछ ही मिनट बाद उसने सशरीर आकर दर्शन दिये तब अनायास ही मैने पहिचान

लिया कि यही अभयाका पति है। उसकी ओर देखते ही सारा शरीर मानो घृणासे कंटकित हो गया। पहिने था वह हैट-कोट, किन्तु जितने ही पुराने उतने ही गन्दे। सारा काला मुँह बड़ी बड़ी मूँछो और दाढ़ीसे ढका हुआ था। नीचेका होठ शायद डेढ़ इंच मोटा था। और पान उसने इतने अधिक खाये थे कि उनका रस दोनो ओर जम गया था,—बात करते डर लगता था कि कहीं छिटककर अँगपर न आ पड़े।

यह मैं जानता हूँ कि पति ही स्त्रीका देवता है,—वही उसका इह-लोक और पर लोक है, किंतु, इस मूर्तिमान् नीचताके निकट अभयाकी कल्पना करते हुए मेरा शरीर और मन सकुचित हो उठा। अभया और चाहे जो हो, फिर भी, एक सुन्दर देहवाली सुरुचिसपन्न कुलीन महिला है; किंतु, यह भैसा बर्माके किस घने जगलमेसे एकाएक बाहर निकल आया है सो जिन ब्रह्मदेवने इसको बनाया है वे ही बता सकते हैं।

बैठनेका इशारा करके मैंने पूछा कि तुम्हारे विरुद्ध जो इलजाम लगाया गया है वह क्या सत्य है? इसके जवाबमे वह दस मिनट तक अनर्गल बकता रहा। भावार्थ यह था कि मै बिलकुल ही निर्दोष हूँ, और, मेरे रहते प्रोम आफिसका साहब दोनो हाथो लूट नही कर सकता था, यही उसके क्रोधका कारण है। जिस तरह भी हो, मुझे अलग करके एक अपने ही आदमीको भरती कर लेनेके लिए उसकी यह चाल है। मुझे उसकी बातपर जरा भी विश्वास नहीं हुआ। मैंने कहा, "यह नौकरी चली जाय तो भी आपके समान होशियार व्यक्तिके लिए बर्मामे चिन्ता ही किस बातकी है? रेलवेकी नौकरी छूट जानेपर कितने-से दिन आपको खाली बैठना पड़ा था?

वह मनुष्य पहले तो अकचकाया, फिर बोला, "आप कहते है सो बिलकुल झूठ नही है। किंतु, आप जानते हैं महाशय, फैमिली-मैन हूँ, बहुत-से बच्चे-कच्चे—"

"आपने क्या किसी बर्मी स्त्रीसे विवाह कर लिया है?"

वह एकाएक बोल उठा, "साहब-सालेने रिपोर्टमे लिख दिया दिखता है! इसीसे आपको उसकी नाराजी मालूम हो सकती है।" यह कहकर वह मेरे मुँहकी ओर ताककर और कुछ नरम होकर बोला, "आप क्या इसपर विश्वास करते हैं?"

मैने गर्दन हिलाकर कहा, " इसमे दोष ही क्या है ? "

वह उत्साहित होकर बोला, " ठीक कहते हैं महाशय । मैं तो यह सबसे कहता हूँ कि जो करूँगा सो 'बोल्डली' स्वीकार करूँगा । मेरा ऐसा नहीं है कि अन्दर कुछ और बाहर कुछ । और फिर मै ठहरा मर्द,–आप जानते तो हैं ? जो कहूँगा सो साफ साफ कहूँगा, महाशय, लुकाने-छुपानेकी बात नही । और फिर देशमे तो मेरा कही कोई है नहीं,—और जब यहॉ ही रहकर चिरकाल तक नौकरी करके पट भरना है तब,—आप समझते ही हैं महाशय । " मैंने सिर हिलाकर बताया कि मै सब समझता हूँ । फिर पूछा, " आपका देशमे क्या कोई भी नहीं है ? "

वह मनुष्य चेहरेपर जरा भी मैल लाये बगैर बोला, " जी नही, कहीं कोई नही है,—'काकस्य परिवेदना' । यदि कोई होता, तो फिर मै इस सूर्य-मामाके देशमे आ पाता ? महाशय, आप विश्वास न करेंगे, मै ऐसे-वैसे घरका लड़का नहीं हूँ, हम लोग भी एक जमीदार थे !—आज भी यदि हमारे देशके मकानको देखे तो आपकी ऑखे चकरा जायॅ । किंतु, छोटी उम्रमे ही सब मर-खप गये ।—मैंने कहा, जाने भी दो, घर-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद यह सब किसके लिए ? सब-कुछ जात-बिरादरी-वालोंको बॉटकर मै बर्मा चला आया । "

जरा स्थिर होकर पूछा, " आप अभयाको जानते हैं ? "

वह चौंक उठा । कुछ देर मौन रहकर बोला, " आपने उसे कैसे जाना ? "

मैंने कहा, " ऐसा भी तो हो सकता है कि आपका पता लगाकर उसने अपने भरण-पोषणके लिए इस आफिसमे दरखास्त दी हो ? " वह कुछ अधिक प्रसन्न स्वरसे बोला, " ओ.—यही कहिए न ! सो मै स्वीकार करता हूँ कि एक समय वह मेरी स्त्री थी—"

" अब ? "

" कोई नहीं । मै उसे त्याग करके यहॉ चला आया हूँ । "

" उसका अपराध ? "

वह मनुष्य चेहरेपर बनावटी दुःख लाकर बोला, " आप जानते हैं महाशय, ' फैमिली सिक्रेट ' कहना उचित नही । किन्तु, इस समय आप मेरे आत्मीयो-की तरह हैं, इसलिए कहनेमे कुछ लज्जा नही है कि वह एक दुश्चरित्र औरत है । इसी मानसिक घृणाके कारण ही तो मुझे देश छोड़ना पड़ा । नही तो, क्या

कोई शौकसे इस देशमे कदम रख सकता है ! आप ही कहिए न, कि यह क्या कोई ऐसी-वैसी घृणाकी बात है ! ”

जवाब क्या दूँ ?—लाजके मारे मेरा मुँह नीचा हो गया । शुरूसे ही मैंने इस घोर मिथ्यावादीकी एक बातपर भी विश्वास नही किया था, किन्तु, अब मुझे निःसदिग्ध रूपसे मालूम हो गया कि यह जितना नीच है उतना ही क्रूर भी है ।

अभयाके सबधमे मै कुछ अधिक नही जानता हूँ, किन्तु, फिर भी शपथ खाकर कह सकता हूँ कि जो अपवाद पति होकर इस पाखण्डीने उसके सिर बिना किसी सकोचके लगा दिया,—गैर होकर भी मै उसे मुँहसे नही निकाल सकता । कुछ देर बाद मुँह उठाकर मैने कहा, “ उसके इस अपराधकी बात आपने आते समय तो उससे कही नहीं थी । और यहाँ आकर भी कुछ दिन तक आप चिठ्ठी-पत्री और रुपया-पैसा भेजते रहे, तब भी पत्रके द्वारा उसपर यह बात प्रकट नहीं की । ”

वह महापापी स्वच्छन्दतासे अपने विराट् स्थूल होठोंको फाडकर हँसता हुआ बोला, “ यही तो बात है ! आप जानते ही हैं महाशय, कि हम शरीफ आदमी हैं, हम लोग गुपचुप सब-कुछ सहन कर लेते हैं, परन्तु हलके लोगोकी तरह अपनी स्त्रीके कलङ्कका नगाडा नही पीट सकते । खैर, ये सब दुःखकी बाते छोड दीजिए महाशय,—ऐसी स्त्रियोंका नाम मुँहपर लानेसे भी पाप होता है ।—तो फिर, ‘ केस ’ तो आप ही ‘ डिस्पोज ’ (निर्णय) करेगे न ? मेरी जान बची, खैरियत हुई किन्तु, फिर भी कहे देता हूँ कि साहब-बच्चूको यो ही न छोड़ दिया जाय । अच्छी तरह ऐसा सबक दिया जाय कि जिससे फिर कभी मेरे पीछे न लगे । वे भी समझ जायँ कि मेरे भी मुरब्बीका कुछ जोर है । समझे न आप ?—अच्छा, मै कहता हूँ, हरामजादेको हेड आफिसमे नही खींचा जा सकता ? ”

मैने कहा, “ नही । ”

उसने हँसीकी छटासे फाइलको कुछ आगे सरकाते हुए कहा, “ लीजिए, मजाक छोड़िए । क्या यह खबर लिये बगैर ही मै आपके पास आया हूँ कि बड़े साहब बिल्कुल आपकी मुट्ठीमे हैं ? खैर, मरने दीजिए इसे, और भी एक दफे वह मेरे पीछे लगकर देख ले । अच्छा, क्या बड़े साहबका ‘आर्डर’

निकालकर आज ही मेरे हाथ नही दिया जा सकता ? रातके नौ बजे ही मै चला जाता, रातको कष्ट न उठाना पड़ता। क्या कहते हैं आप ? ”

मै एकाएक जवाब न दे सका। क्योकि, खुशामद चीज ही ऐसी है कि सारी दुरभिसधि जान-बूझकर भी क्षुण्ण करते क्लेशका अनुभव होता है। विरुद्ध बात मुँहपर लाते सकोच-सा होने लगा, किन्तु, इस बाधाको मैने नही माना। अपने आपको कठोर करके कह ही दिया, “ बड़े साहबका हुक्म हाथ कर लेनेसे आपको लाभ नही होगा। आप और कही नौकरीकी तलाश कीजिए। ”

एक मुहूर्तमे ही वह जैसे काठ हो गया और कुछ देर बाद बोला, “ इसके मानी ? ”

“ इसके मानी यह कि आपको ‘ डिस्मिस् ’ करनेका ‘ नोट् ’ ही मै दूँगा। मेरे द्वारा आपको किसी तरहकी सुविधा न होगी। ”

वह उठकर खड़ा हो गया था,—एकदम बैठ गया। उसकी दोनो आँखे छलछला आई,—हाथ जोड़कर बोला, “ बगाली होकर बगालीको मत मारिए बाबू, मै बच्चो-कच्चोवाला आदमी मर जाऊँगा ! ”

“ यह देखनेका भार मेरे ऊपर नही है। इसके सिवाय, मै आपको जानता नही, आपके साहबके विरुद्ध भी मै नही जा सकता। ”

उसने एक नजर मेरे मुँहपर डालकर शायद समझ लिया कि मै दिल्लगी नही कर रहा हूँ। और भी कुछ देर वह चुपचाप बैठा रहा। इसके बाद ही अकस्मात् वह जोरसे रो पड़ा। क्लार्क, दरबान, पियून जो जहाँ थे सब इस अचिन्तनीय घटनासे दग हो गये। मै भी मानो लज्जित-सा हो गया। उसे रोकनेके इरादेसे मैने कहा, “ अभया आपके लिए ही बर्मा आई है अवश्य ही दुश्चरित्रा स्त्रीको ग्रहण करनेके लिए मै नही कहता। किन्तु, आपकी सब बाते सुनकर भी यदि वह माफ कर सके,—आप उसके पाससे चिट्ठी ला सके,—तो आपकी नौकरी बजा रखनेकी मै कोशिश कर देखूँगा। नही तो दुबारा मिलकर मुझे लज्जित न करना,—मै मिथ्या बात नही कहता। ”

मै जानता था कि ये नीच प्रकृतिके लोग अत्यन्त डरपोक होते है, उसने आँखे पोछकर कहा, “ वह कहाँपर है ? ”

" कल इसी समय आओगे तो उसका ठिकाना बता दूँगा ! "

वह और कुछ न कहकर लम्बी सलाम करके चला गया ।

सध्याके समय अभया मेरे मुँहसे, चुपचाप नीचा मुँह किये, सारा हाल सुनती रही । उसने ऑचलसे केवल अपनी आँखे पोछ डालीं,—कुछ कहा नही । मेरे क्रोधका भी उसने कुछ जवाब नहीं दिया । बहुत देर बाद मैने ही पूछा, " आप उसे माफ कर सकेंगीं ? "

अभयाने केवल गर्दन हिलाकर अपनी सम्मति जाहिर की ।

" तुम्हे वह अपने साथ ले जाना चाहे, तो जाओगी ? "

उसने उसी तरह सिर हिलाकर जवाब दिया ।

" बर्माकी स्त्रियोका स्वभाव कैसा होता है, सो तो तुमने पहले ही दिन खूब जान लिया है, फिर भी वहाँ जानेका तुम्हारा साहस होगा ? "

इस दफे अभयाने अपना मुँह ऊपर उठाया, मैने देखा कि उसकी दोनो ऑखोसे आसुओकी धारा बह रही है । उसने कुछ कहनेकी कोशिश की, परतु, कह न सकी । इसके बाद बारबार ऑचलसे अपनी ऑखोको पोछती हुई रुद्ध कण्ठसे बोली, " नही जाऊँ तो मेरे लिए और उपाय ही क्या है, बताइए ! "

उसकी बात सुनकर मै यह न सोच सका कि मै खुश होऊँ या ऑखोसे नीर बहाऊँ, किन्तु, मुझसे कुछ उत्तर देते नही बन पड़ा ।

उस दिन और कोई बात नही हुई । डेरेको लौटते हुए रास्ते-भर यही एक बात मैं बार बार अपने आपसे पूछता रहा, किन्तु, इस प्रश्नका किसी ओरसे कोई भी उत्तर नही मिल सका । केवल हृदयके भीतरका 'वह' न जाने किसपर एक ओर जिस तरह निष्फल क्रोधसे जल जल उठने लगा, उसी तरह, दूसरी ओर एक निराश्रया रमणीके उससे भी अधिक निरुपाय प्रश्नसे व्यथित और भाराक्रान्त हो उठा । दूसरे दिन, अभयाका ठिकाना पूछनेके लिए जब वह मनुष्य सामने आकर खड़ा हो गया तब, मारे घृणाके, मै उसकी ओर देख भी नही सका । मेरे मनका भाव समझकर आज वह अधिक बात किये वगैर ही केवल ठिकाना लेकर नम्रताके साथ चला गया । किन्तु, उसके बादके दिन जब वह मिलने आया तब उसकी आँखोका और मुँहका भाव पूरी तरह बदल गया था । प्रणाम करके उसने अभयाके हाथकी एक सतर लिखी हुई मेरी टेबलपर रख

दी और कहा, " आपने मेरा जो उपकार किया है उसे मुँहसे क्या कहूँ,— जितने दिन जीऊँगा आपका गुलाम होकर रहूँगा। "

अभयाकी लिखी पंक्तिपर दृष्टि जमाये हुए ही मैंने कहा, " जाइए, आप अपना काम कीजिए, बड़े साहबने इस बार माफ कर दिया है। "

उसने हँसकर कहा, " बड़े साहबकी चिन्ता मैं नही करता, केवल आप क्षमा कर दे तो मैं जी जाऊँ, आपके श्रीचरणोमे मैने बहुत-से अपराध किये हैं।" इतना कहकर उसने फिर बकना शुरू कर दिया,—उसी किस्मकी वैसी ही कोरी मिथ्या खुशामदकी बाते। और बीच-बीचमे वह रूमालसे ऑखे भी पोछने लगा। इतनी बाते सुननेका धीरज और किसीको नहीं हो सकता, इसलिए यह दण्ड मै आपको नहीं दूँगा। मै केवल उसका विस्तृत वक्तव्य सक्षेपमे कहे देता हूँ। वह यह है कि उसने अपनी स्त्रीके ऊपर जो अपवाद लगाया था सो बिल्कुल ही झूठ है। उसने लज्जाके फेरमे पडकर ही वैसा किया था, नही तो, ऐसी सती लक्ष्मी क्या कहीं और है! और, मन-ही-मन चिरकालसे वह अभयाको प्राणोसे भी अधिक चाहता रहा है। तब, यहाँ जो एक और उपसर्ग आ जुटा है उसे जुटानेकी उसकी जरा भी इच्छा नहीं थी, केवल बर्मियोंके हाथसे अपने प्राण बचानेके लिए ही उसने यह किया है। (कुछ सत्य हो भी सकता है।) किन्तु, आज रातको जब वह अपने घरकी लक्ष्मीको ले जा रहा है तब उस बर्मी-बच्चीको दूर करते कितनी देर लगती है! रहे लडके-बच्चे,— आहा! सालोकी जैसी सूरत है वैसा ही स्वभाव है!—हैं वे किस कामके? बुढापेमे न तो उनसे खाने-पहिननेको ही मिलेगा और न मरनेपर एक चुल्लू पानीकी ही उनसे आशा है! जाते ही सबको एक साथ झाड़ू मारकर बिदा कर देगा,—तब उसका नाम,—इत्यादि इत्यादि।

मैंने पूछा," अभयाको क्या आज ही रातको ले जायँगे आप?" वह विस्मयसे अवाक् होकर बोला, "खूब! जितने दिन ऑखो नही देखा था उतने दिन तो खैर किसी तरह रहा आया, किन्तु, ऑखो देखकर फिर क्या उसे ऑखोकी ओट कर सकता हूँ? अकेली, इतनी दूर, इतना कष्ट उठाकर, केवल मेरे लिए ही तो आई है! एक दफे सोच तो देखिए जरा इस बातको!"

मैंने पूछा, " क्या उसे एक साथ ही घरमे रक्खेगे?"

" जी नहीं, इस समय तो ग्रामके पोस्ट मास्टर महाशयके यहाँ ही रक्खूँगा।

उनकी स्त्रीके साथ मजेमे रहेगी। किन्तु, दो-एक दिन ही,—अधिक नही। उसके लिए मकानका प्रबन्ध करूँगा और फिर घरकी लक्ष्मीको घर ले आऊँगा। ”

अभयाके स्वामीने प्रस्थान किया। मैने भी दैनिक कार्यमे मन लगानेके लिए सामनेकी फाइलको खींच लिया।

उसके नीचे अभयाकी उस लिखावटपर फिर मेरी नजर जा पडी। इसके बाद कितनी दफे उन दो सतरोको मैने पढ़ा और न जाने कितनी दफे और पढता सो कह नही सकता। इतनेमे ही ‘ पियून ’ ने कहा, “ बाबूजी, आपके घर क्या कुछ कागज-पत्र पहुँचाने होगे ? ” चौककर मैने सिर उठाया तो देखा, उस समय सामनेकी घड़ीमे साढे चार बज गये हैं, और क्लार्क लोग दैनिक कार्य समाप्त करके अपने अपने घर चले गये हैं।

९

अब मुझे अभयाके पतिका एक पत्र मिला। पहलेके ही समान कृतज्ञता सारी चिट्ठीमे बिखेर देकर इस बातका बडे ही अदब और विस्तारके साथ निवेदन करके कि इस समय वह कैसे सकटमे पडा है उसने मुझसे उपदेश चाहा है। बात सक्षेपमे यह थी कि उसने अपनी शक्तिसे अधिक खर्च करके भी एक बडा मकान किरायेपर ले लिया है, और उसमे एक ओर अपने बर्मी स्त्री-पुत्रादिको रखकर दूसरी ओर अभयाको लाकर रखनेका प्रयत्न कर रहा है, किंतु किसी तरह भी उसे सम्मत नही कर पाता है। सहधर्मिणीकी इस तरहकी हठसे वह अतिशय मर्म-पीड़ा अनुभव कर रहा है। यह केवल ‘ कलि-काल ’का फल है, ‘ सतजुग ’मे ऐसा नही हो सकता था,—बडे बडे ऋषि-मुनि तक भी—। अनेक दृष्टान्तो समेत उनका बार बार उल्लेख करके उसने लिखा है कि, “ हाय ! कहाँ हैं वे आर्य-ललनाएँ ? वे सीता-सावित्री कहाँ गई ? जो आर्य-नारियाँ पतिके चरण-युगलोको हृदयमे धारण करके हँसतीं हँसती चितामे प्राण विसर्जन कर देती थीं और पतिसहित अक्षय स्वर्गलाभ करती थीं वे अब कहाँ हैं ? जो हिन्दू महिला हँसते हुए चेहरेसे अपने कुष्ठ-गलित पति-देवताको कंधेपर लादकर वेश्याके घरतक पहुँचा आई थी, कहाँ है उस जैसी पतिव्रता रमणी ? कहाँ है वह पति-भक्ति ! हाय भारतवर्ष ! क्या एकदम ही तेरा अधःपतन हो गया ! वह सब क्या अब एक दफे भी अपनी आँखो न देखेंगे ! और क्या हम लोग,—इत्यादि

इत्यादि करीब दो पन्ने विलापसे भर दिये हैं। किन्तु, अभया पति-देवताको यहाँ-तक ही मानसिक कष्ट देकर शान्त नही हुई। और भी है। उसने लिखा है कि इतना ही नही कि उसकी अर्द्धाङ्गिनी अब भी दूसरेके घरमे रह रही है, बल्कि उसे आज अपने परम मित्र पोस्टमास्टरसे मालूम हुआ है कि रोहिणी नामक किसी व्यक्तिने उसकी स्त्रीको पत्र लिखा है और कुछ रुपये भेजे हैं। इससे हतभागेकी इज्जतका कितना धक्का लगा है सो लिखकर बताया नही जा सकता।

चिट्ठी पढते पढते मै अपनी हँसी न रोक सका, फिर भी रोहिणीके व्यवहारपर भी कुछ कम क्रोध नही आया। अब उसे चिट्ठी लिखने और रुपये भेजनेकी जरूरत ही क्या थी? जिसने पतिके घरको प्राप्त करनेके लिए इतना कष्ट सहन करना स्वीकार किया उसके चित्तको, जान-बूझकर या बिना जाने-बूझे, उच्चाट करनेकी जरूरत ही क्या थी? और अभयाने भी इस तरहका व्यवहार किस लिए शुरू किया? वह क्या चाहती है? उसके पतिने जिसे स्त्रीकी तरह ग्रहण किया है, लडके-बच्चे पैदा किये हैं,—उन सबको त्याग कर क्या केवल उसीको लेकर वह गृहस्थी चलावे? क्यो, बर्मी स्त्रियाँ क्या स्त्रियाँ नही हैं? उन्हे क्या सुख-दु:ख, मान-अपमानका बोध नही है? न्याय-अन्यायका कानून क्या उनके लिए ताकपर रख देना चाहिए? और, यदि ऐसा ही है तो वहाँ उसे जानेकी जरूरत ही क्या थी? सब झझट यहाँसे ही स्पष्ट करके निबटा देनेसे ही तो हो जाता!

तब तक मैं रोहिणीसे मिलने नही गया था। वह झूठमूठ ही क्लेश पा रहा है, यह मन-ही-मन समझकर ही शायद मेरी उस तरफ पैर बढ़ानेकी प्रवृत्ति नही हुई। आज छुट्टी होनेके पहले ही गाडी बुलानेके लिए आदमी भेजकर मै 'उठूँ उठूँ' कर रहा था कि उसी समय अभयाका पत्र आ पडा। खोलकर देखा कि सारा पत्र आदिसे अन्त तक रोहिणीके ही सबधकी बातोंसे भरा हुआ है। मै सदा ही उसके ऊपर नजर रक्खूँ,—वह कितना दुखी, कितना दुर्बल, कितना अपटु, कितना असहाय है,—यही एक बात पक्ति पक्ति अक्षर अक्षरमेसे ऐसी मर्मान्तिक व्यथाके साथ फूटी पड़ती थी कि कोई अत्यन्त सरल-चित्त मनुष्य भी इस आवेदनके तात्पर्यको समझनेमे भूल करेगा, ऐसा नहीं जान पडा। अपने सुख-दु:खकी बात उसमे प्राय: कुछ भी नही थी। फिर पत्रके अन्तमे उसने बताया था कि अनेक कारणोसे अब भी वह उसी जगह रह रहा है जहाँ कि पहले पहल आकर ठहरा था।

पति सती स्त्रीका एकमात्र देवता हो सकता है कि नहीं, इस विषयमे अपना मतामत छापेके अक्षरोमे प्रकट करनेका दुःसाहस मुझमे नहीं है और न मुझे इसकी कोई ज़रूरत ही दीखती है। किन्तु, सर्वाङ्गीन सती-धर्मकी एक अपूर्वता, दुःसह दुःख और सर्वथा अन्यायके बीचमे भी उसकी आकाश-भेदी विराट् महिमा जो मेरी अन्नदा जीजीकी स्मृतिके साथ चिरकालके लिए मनकी गहराईमे खुदकर अंकित हो गई है, और जिसका असह्य सौन्दर्य ऑखोंसे देखे बिना अवधारण भी नहीं किया जा सकता, जिसने एक ही साथ नारीको अति क्षुद्र और अति-बृहत् बना दिया है, मेरी वह अव्यक्त उपलब्धि आज अभयाकी इस चिट्ठीसे आन्दोलित हो उठी।

जानता हूँ कि सब अन्नदा जीजी नहीं हैं,—उस कल्पनातीत निष्ठुरताको छाती फैलाकर धीरजसे ग्रहण करने जैसी बडी छाती भी सब स्त्रियोंकी नही होती, और जो नहीं है, उसके लिए रोज रोज शोक प्रकाश करना ग्रन्थकार-मात्रका एकान्त कर्तव्य है या नही सो भी मैंने विचारकर स्थिर नही कर रक्खा है,—किन्तु, फिर भी सारा चित्त वेदनासे भर गया। गुस्सेमे भरा हुआ मै गाडीपर जा बैठा और उस निकम्मे परस्त्री-आसक्त रोहिणीको जो कडी कड़ी बाते अच्छी तरह सुनाने जा रहा था उन्हे मन-ही-मन दुहराता हुआ उसके घरकी ओर रवाना हो गया। गाड़ीसे उतरकर, किवाड़ खोलकर, जब मैंने उसके मकानमे प्रवेश किया तब दिया-बत्तीकी बेला हो गई थी, अर्थात् दिनका प्रकाश खत्म होकर रातका अँधेरा अभी अभी उतर रहा था।

वह भर-भादो भी नही था, और न उस समय भरे बादल ही थे,—किन्तु, शून्य घर-बारकी भी यदि कोई सूरत शक्ल होती है तो, उस दिन उस प्रकाश और अंधकारके बीच जो मेरी नजरमे पड़ी, उसे छोड़कर और क्या हो सकती है, सो तो मैं आज भी नहीं जानता। घरके सभी दरवाजे जैसे भॉय भॉय कर रहे थे, केवल रसोईघरकी एक खिड़कीमेंसे धुऑ निकल रहा था। दाहिनी तरफ कुछ आगे बढ़कर झाँककर देखा कि चूल्हा जलकर प्रायः बुझ रहा है और पासमे ही ज़मीनपर रोहिणीबाबू हँसियेसे एक बैगनके दो टुकडे करके गुम-सुम बैठे हुए हैं। मेरे पैरोंकी आहट उनके कानोतक नहीं गई, क्यो कि, कर्णेन्द्रियका जो मालिक था वह उस समय और चाहे जहाँ हो किंतु बैंगनके ऊपर एकाग्र नहीं था, यह मैं निस्सन्देह कह सकता हूँ। किंतु, चुपचाप लौटकर जब उन दो

कमरोंके बीच आ खड़ा हुआ तब मुझे साफ साफ दिखाई दिया कि एक उत्कट वेदनासे भरा हुआ रोदन सारे घरको भरकर दँतौरी बाँधे हुए अडिग रूपसे वहाँ स्थिर हो रहा है और वह सम्पूर्ण समाज, सम्पूर्ण धर्माधर्म, और समस्त पाप-पुण्यसे भी परेकी,—अतीतकी, वस्तु है।

बाहर आकर मै बरामदेमें एक मोढेपर बैठ गया। कितनी ही देर बाद, शायद, दीपक जलानेके लिए रोहिणीबाबू बाहर आये और भयभीत हो उन्होने पूछा, "कौन है ?"

मैने आवाज देकर कहा, "मै हूँ श्रीकान्त।"

"श्रीकान्त बाबू ? ओह—" इतना कहकर वह तेज चालसे नजदीक आये, भीतर जाकर उन्होने दिया-बत्ती की, और फिर मुझे भीतर ले जाकर बिठाया। इसके बाद किसीके भी मुँहसे कोई बात न निकली,—दोनो ही चुपचाप बैठे रहे। सबसे पहले मैने ही मुँह खोला। कहा, "रोहिणी भइया, यहाँ अब क्यो रहते हो ? चलो मेरे साथ।"

रोहिणीने पूछा, "क्यो ?"

मैने कहा, "यहाँ आपको कष्ट होता है, इसलिए।"

रोहिणी कुछ देर ठहरकर बोला, "कष्ट अब मुझे क्या है !"

ठीक है ! किंतु, ऐसी अवस्थामे तो आलोचना की नही जा सकती। मै उसका किस तरह तिरस्कार करूँगा, क्या सत्परामर्श दूँगा, आदि सब सोचता सोचता घरसे आया था,—किंतु, यहाँ वे सब विचार बह गये। नीति-शास्त्रकी पोथी इतनी अधिक नहीं पढी थी कि इतने बड़े प्रेमका अपमान कर सकूँ। कहाँ गया मरा क्रोध, कहाँ गया मेरा विद्वेष ! समस्त साधु-सकल्प अपना सिर नीचा करके कहाँ छिप रहे, पता भी न चला।

रोहिणी बोला कि उसने वह प्राइवेट टयूशन छोड़ दी है, क्योकि उससे तन्दुरुस्ती बिगड़ती है, उसका दफ्तर भी अच्छा नहीं है, बड़ी कड़ी मेहनत पड़ती है। नही तो अब कष्ट क्या है !

मैं चुप हो रहा। क्योकि, इसी रोहिणीके मुँहसे कुछ दिन पहले इससे ठीक उलटी बात सुनी थी। वह कुछ देर चुप रहकर फिर कहने लगा, "आफिससे थके-माँदे लौटनेपर यह राँधना-रूँधना तो बड़ी झुँझलाहट पैदा करता है। क्यो न, श्रीकान्त बाबू ?"

मैं और क्या कहता ! आग बुझ जानेपर, केवल जलसे ही तो इञ्जन चलता नहीं, यह तो जानी हुई बात है ।

फिर भी, वह यह स्थान छोड़कर दूसरी जगह जानेको राजी नहीं हुआ । कल्पनाकी तो कोई सीमा निर्दिष्ट कर नहीं सकता, इसलिए उस बातको नहीं छेड़ता, किन्तु, किसी असभव आशाने उसके मनके भीतर किसी तरह आश्रय नहीं पाया था, सो मैं उसकी कुछ बातोंसे ही जान गया था । फिर भी, क्यों वह इस दुःखके आगारको छोड़ना नहीं चाहता, यह अवश्य ही मैं नहीं सोच सका । किन्तु, उसके अन्तर्यामीके अगोचर नहीं था कि जिस हतभागीके घरका रास्ता रुद्ध हो गया है, उसे इस शून्य घरकी पुञ्जीभूत वेदना यदि खड़ा न रख सके, तो उसे मिट्टीमें मिलनेसे रोकना इस दुनियामें किसीके लिए भी सम्भव नहीं है ।

अपने डेरेपर पहुँचते पहुँचते कुछ रात हो गई । घरमें घुसकर देखा कि एक कोनेमें बिस्तर लगाकर एक आदमी सिरसे पैर तक कपड़े ओढ़े सो रहा है । नौकरानीसे पूछनेपर उसने कहा, "शरीफ आदमी हैं ।"

इसीलिए मेरे कमरेमें !

भोजनादिके उपरान्त उन महाशयसे बातचीत हुई । उनका मकान चटगाँव जिलेमें है । करीब चार वर्षके बाद उनके लापता छोटे भाईका पता मिला है, उसे वापिस घर ले जानेके लिए वे आये हैं । वे बोले, " महाशय, कहानियोंमें सुना था कि पुराने समयमें कामरूपकी स्त्रियाँ विदेशी पुरुषोंको भेड़ बनाकर बाँध रखती थीं । न जाने उस समय वे क्या करती होंगी; किन्तु, इस जमानेमें भी बर्माकी स्त्रियोंकी क्षमता उनसे तिल-भर भी कम नहीं है, सो मैं अपनी नस नससे अनुभव कर रहा हूँ ।"

और भी बहुत-सी बातें करनेके बाद उन्होंने अपने छोटे भाईके उद्धार करनेके लिए मेरी सहायताकी भिक्षा माँगी । मैंने वचन दिया कि उनके इस साधु उद्देश्यको सफल करनेमें मैं कमर बाँधकर लग जाऊँगा । क्यों, सो कहनेकी जरूरत नहीं है । दूसरे दिन सुबह ढूँढ-खोज करके उसके छोटे भाईकी बर्मी ससुरालमें जा पहुँचा । बड़े भाई आड़में रास्तेके ऊपर चहलकदमी करने लगे ।

छोटे भाई उपस्थित नहीं थे, साइकल लेकर सुबहके घूमनेके लिए बाहर गये थे । मकानमें सास-ससुर नहीं थे, केवल स्त्री अपनी एक छोटी बहिनको लेकर एक-दो दासियोंसहित वहाँ रहती है । इन लोगोंकी जीविका बर्मी-चुरूट

बनाना था। उस समय सभी इसी काममे लगे हुए थे। मुझे बगाली देखकर, और सभवतः अपने पतिका मित्र समझकर, उन्होने मेरा आदरके साथ स्वागत किया। बर्मी स्त्रियाँ अत्यन्त परिश्रमी होती हैं, परतु पुरुष बहुत ही आलसी होते हैं। वहाँ घरके छोटे-मोटे काम-काजसे लेकर व्यवसाय-वाणिज्यतक सब-कुछ प्रायः स्त्रियोके हाथमे है। इसलिए, लिखना-पढ़ना सीखे विना उनका काम नहीं चलता, परतु पुरुषोकी बात अलहदा है। पढना-लिखना सीखा हो तो भला, न सीखा हो तो लज्जाके मारे मरना नही होता। निष्कर्मा पुरुष स्त्रीका उपार्जित अन्न नष्ट करके बाहर उसीके पैसेसे बाबूगीरी करता फिरता है और इससे लोगोको कोई अचरज नही होता। स्त्रियॉ भी 'छिः छिः मिनमिन पिनपिन' करके उसकी नाकोदम कर देना आवश्यक नही समझती। बल्कि, यही किसी परिमाणमे मानो उनके समाजके स्वाभाविक आचारमे शामिल हो गया है।

दस-पद्रह मिनटके बीचमे ही बाबूसाहब 'द्वि-चक्र-यान'मे लौट आये। सारी देहपर अँग्रेजी पोशाक, हाथमे दो-तीन अँगूठियाँ, घड़ी-चैन आदि। काम-काज कुछ भी नही करना पडता, फिर भी देखा, हालत खूब अच्छी है। उनकी बर्मी पत्नी अपने हाथका काम छोडकर उठ खडी हुई और उनके हाथसे टोपी तथा छडी लेकर उसने रख दी। छोटी बहिनने चुरुट दियासलाई आदि ला दिये, एक दासीने चाहका सरजाम और दूसरीने पानका डिब्बा ला दिया। वाह, इस मनुष्य-को तो सबने मिलकर एकदम राजाकी तरह रख छोडा है! नाम मै भूल गया हूँ। शायद चारु-वारु ऐसा ही कुछ होगा। जाने दो, हम लोग, न होगा तो, केवल 'बाबू' कहकर पुकार लेंगे।

बाबूने प्रश्न किया कि आप कौन हैं। मैने कहा कि मै आपके भाईका मित्र हूँ। उन्होने विश्वास नहीं किया। बोले, "आप तो कलकतिया हैं, मेरे भाई तो कभी वहाँ गये भी नही, मित्रता किस तरह हुई?"

किस तरह मित्रता हुई, कहाँ हुई, इस समय वे कहाँ है, इत्यादि सक्षेपमे वर्णन करके उनके आनेका उद्देश्य भी मैंने बता दिया और यह भी निवेदन कर दिया कि वे अपने भ्रातृ-रत्नके दर्शनोंकी अभिलाषासे उत्कण्ठित हैं।

दूसरे दिन सुबह ही हमारी होटलमे बाबूकी चरण-धूलि आ पडी और दोनो भाइयोकी बडी देरकी बातचीतके बाद उन्होंने बिदा ग्रहण की। तबसे दोनों भाइयोंका कुछ ऐसा हेल-मेल हो गया, कि—सुबह नहीं, सन्ध्या नहीं,—बाबू

साहब ' भइया ' कहकर पुकारते हुए लगे जब-तब आ उपस्थित होने और फुस-फुस खुस-खुस सलाह, संलाप और खाने-पीनेकी तो कोई सीमा ही नहीं रही। एक दिन तो सध्याको वे अपने भइयाको और मुझे भी चाह-बिस्कुटका निमंत्रण तक दे गये।

उसी दिन उनकी बर्मी स्त्रीसे मेरी अच्छी तरह बातचीत हुई। वह अतिशय सरल, विनयी और भली थी। प्यार करके स्वेच्छासे ही उसने विवाह किया है और तबसे शायद एक दिनके लिए भी इन्हे कोई दुःख नहीं दिया। कोई चार-पाँच दिन बाद बड़े भइयाने मुस्कुराते हुए कानमे कहा, कि परसो सबेरेके जहाजसे हम लोग घर जा रहे हैं। सुनकर मुझे कुछ डर-सा लगा पूछा, " आपके भाई यहाँ फिर लौटकर तो आयँगे ? "

बड़े भइया बोले, " अब ! राम राम करके किसी तरह एक दफे जहाजपर चढ़ तो पावे ! "

मैने पूछा, " यह स्त्रीको जता दिया है ? "

बड़े भइया बोले, " बाप रे ! तब क्या हम बच सकेंगे ! साली जो जहाँ होगी रक्त-बीजकी तरह आकर घेर लेगी। " यह कहकर और फिर दोनो आँखे चमकाकर हँसते हुए बोले " फ्रेञ्च लीव्ह महाशय फ्रेञ्च लीव्ह,—आप समझे या नही ? "

अत्यन्त क्लेश मालूम हुआ, बोला " ऐसा हुआ तब तो स्त्रीको अत्यन्त कष्ट होगा ? "

मेरी बात सुनकर बड़े भइया तो हँसीसे लोट-पोट हो गये। किसी तरह हँसना बन्द करके बोले " वाह, आपने भी खूब कहा ! इन बर्मी औरतोंको कष्ट ! इन सालियोकी जातके लोग खाकर कुल्लातक नही करते, न इनके यहाँ जूठे-मीठेका विचार है, और न जात-पाँतका। साली सब नेप्पी (एक तरहकी सड़ाई हुई मछलियाँ) खाती हैं, महाशय, नेप्पी ! दुर्गन्धके मारे भूतनी-पिशाचियाँतक भाग जावे। इन सालियोको और कष्ट ! एक चला जायगा, तो दूसरेको पकड़ लेगी,—छोटी जातकी हैं साली—"

" ठहरिए महाशय, ठहरिए। आपके भाईको उसने जो इन चार वर्षोंतक राजाकी तरह खिलाया पिलाया है,—और कुछ न हो, इसके लिए भी तो उनका कुछ कृतज्ञ होना चाहिए ! "

बड़े भाईका मुँह गभीर हो गया। वे कुछ देर चुप रहकर बोले, "आपने तो मुझे अवाक् कर दिया महाशय। मर्द-बच्चे हैं, विदेशकी धरतीपर आकर यदि उम्रके दोषसे कुछ शौक ही कर डाला तो क्या हुआ? और फिर कौन है जो ऐसा नही करता, कहिए न? मुझसे तो कुछ छुपा है नही,—इसका कुछ खुल पडा है,—सब लोग जान गये हैं, बस,—सो इसी लिए क्या चिरकाल तक इसे इसी तरह फिरते रहना होगा? भला बनकर, गृहस्थ-धर्म चलाकर, फिरसे पाँच पंचोंमे अपना स्थान ग्रहण न करना होगा? महाशय, यह तो कुछ बात ही नहीं है, कच्ची उम्रमे तो कितने ही लोग होटलोंमे जाकर मुर्गी तक खा आते हैं। किन्तु, उम्र पकनेपर क्या ऐसा करते हैं? करे तो फिर चल ही कैसे सकता है? आप ही विचार कीजिए न, मैं कहता हूँ सो सच है कि झूठ?"

वास्तवमे यह विचार करने जैसी बुद्धि भगवान्ने मुझे नही दी, इसलिए मै चुप रह गया और, आफिसका समय हो रहा था इसलिए, नहा-खाकर बाहर चला गया।

किन्तु, आफिससे लौटते ही वे फिर एकाएक बोल उठे, "मैंने सोच देखा, आपकी सलाह ही ठीक है महाशय। इस जातका कुछ भरोसा नहीं, क्या जाने जाते जाते अन्तमे क्या फसाद खडा कर दे,—कहकर जाना ही ठीक है। ये साली जो न करे सो थोडा! न लाज है न सरम, और न कुछ धर्मका ज्ञान। इन्हे यदि जानवर कहा जाय तो भी कुछ बेजा नहीं है।"

मैने कहा, "हाँ, यही ठीक है।"

किन्तु, उसकी बातपर मैं विश्वास न ला सका। मन-ही-मन मुझे ऐसा लगा कि इसके भीतर कोई षड्यन्त्र है। दर असल षड्यन्त्र था। किन्तु, वह इतना नीच, इतना निष्ठुर होगा, ऑखसे देखे बगैर कोई उसकी कल्पना भी कर सकेगा, —यह मैं नहीं सोच सका।

चटगॉवका जहाज रविवारको जाता है। आफिस बन्द था, सुबहके समय और करता ही क्या; उन्हे 'सी ऑफ' (=बिदा) करनेके लिए जहाज-घाटपर जा पहुँचा; जहाज उस समय जेटीसे लगा हुआ था। जानेवाले और न जानेवाले दोनो श्रेणियोंके लोगोंकी दौड़-धूप, चीख-पुकारमे कोई किसीकी बात नहीं सुन सकता था। यहाँ-वहाँ देखते ही उस बर्मी स्त्रीपर नजर पड़ गई। एक किनारे वह अपनी छोटी बहिनका हाथ पकड़े खड़ी है। सारी रात रोते रहनेके कारण

उसकी दोनो आँखे ठीक जवाके फूलोकी तरह हो रही हैं। छोटे बाबू बहुत ही व्यस्त हैं। वे अपनी दो चक्कोंकी गाड़ी (साइकल), ट्रन्क, बिस्तर तथा और भी न जाने क्या क्या लिये, कुलियोंके साथ दौड-धूप कर रहे हैं,—उन्हें क्षण-भरका भी अवसर नहीं है।

धीरे धीरे सारी चीजे जहाजपर चढ गई, यात्री लोग भी सब ठेल-ठालकर ऊपर चढ गये। जो यात्री नही थे वे नीचे उतर आये, सामनेकी ओरसे लगर उठने लगा। इसी समय छोटे बाबू अपने सामानको हिफाजतसे रखकर और जगह ठीक करके अपनी बर्मी स्त्रीके समीप बिदा लेनेके छलसे ससारके निष्ठुरतम अङ्कका अभिनय करनेके लिए जहाजपरसे नीचे उतरे। द्वितीय दर्जेके यात्री थे, इसलिए उन्हे यह अधिकार प्राप्त था।

मैने अनेक दफे सोचा है कि इसकी भला क्या जरूरत थी! मनुष्य जबर्दस्ती अपनी मानव-आत्माको इस तरह क्यो अपमानित करता है! मन्त्र-दीक्षित पत्नी न हुई तो क्या हुआ, किन्तु वह स्त्री तो है! वह कन्या-भगिनी-जननीकी जातिकी ही तो है! उसीके आश्रयसे वह इतने सुदीर्घ समय तक पतिके समस्त अधिकारोका उपभोग करता हुआ वहाँ रहा है! उसने तो अपने विश्वस्त हृदयकी सारी मधुरता, सारा अमृत, सपूर्ण शरीर और मन उसपर समर्पित कर दिया है! फिर किस लोभसे वह इन अगणित लोगोकी ऑखोमे उसे इतने बडे निर्दय परिहास और तमाशेकी चीज बनाकर चलता बना! वह एक हाथसे रूमालके द्वारा अपनी दोनो ऑखे ढके हुए है और दूसरा हाथ अपनी बर्मी स्त्रीके गलेमे डाले हुए रोनेके स्वरमे बहुत-कुछ कह रहा है। स्त्री ऑंचलमे मुँह छिपाये रो रही है।

आसपास बहुतसे बगाली खडे हैं। उनमेसे कुछ तो मुँह फिराकर हँस रहे हैं, और कुछ मुँहमे कपडा देकर हँसीको रोकनेकी कोशिश कर रहे हैं। मै कुछ दूरीपर था, इसलिए पहले कुछ समझ नही सका, किन्तु नजदीक आते ही सब बातें साफ साफ सुन पडने लगीं। वह रोनेके स्वरमे बर्मी और देहाती बगाली मिलाकर विलाप कर रहा है। यदि बगलामे कुछ मार्जित करके लिखा जाय तो उस विलापका यह रूप हो—" एक महीने बाद रगपुरसे तमाखू खरीदकर कैसे आ

जाऊँगा, यह मै ही जानता हूँ ! ओ री मेरी रत्नमणि ! तुझे केला दिखाकर चला रे, * केला दिखाकर चला।"

वह यह सब केवल हमारे समान कुछ अपरिचित बगाली दर्शकोके हँसानेके लिए ही कह रहा था। पर, उसकी स्त्री बगला नहीं समझती है, केवल रोनेकी आवाजसे ही उस बेचारीकी छाती फट रही है और किसी तरह वह हाथ उठाकर उसकी आँखे पोछकर सात्वना देनेकी चेष्टा कर रही है।

वह आदमी जोर जोरसे बिसूर बिसूरकर रोता हुआ कहने लगा, "बडी मुश्किलसे पॉच सौ रुपये तमाखू खरीदने दिये हैं,—अब कुछ भी तेरे पास नहीं है,—पेट तो भरा ही नहीं,—इसी तरह यदि तेरा मकान भी बेच-बाचकर भले घरके लड़केकी तरह घर जा सकता, तो भी समझता कि हाँ, एक दाव मारा ! हाय, यह सब-कुछ नहीं हुआ रे ! कुछ नही हुआ।"

आस-पासके लोग हँसीको रोक रखनेके कारण फूल फूल उठने लगे, किन्तु, जिसको लेकर इतनी हँसाई हो रही थी उसकी आँखे और कान दुःखके ऑसुओसे एकदम आच्छादित हो रहे थे ! ऐसा जान पड़ने लगा कि, कहीं वेदनाके मारे मर न जाय !

खलासियोंने ऊपरसे पुकारकर कहा, "बाबू, सीढी उठाई जा रही है।"

वह आदमी गला छोड़कर सीढी तक गया और फिर लौट आया। स्त्रीके हाथमे एक पुराने समयकी अच्छे नगवाली अँगूठी थी। उसीपर हाथ रखकर रोता हुआ बोला, "अरी, दे दे री, अँगूठी ही ले जाऊँ। जैसे भी हो दो-ढाई सौ रुपये दाम तो होगे ही,—इन्हींको क्यों छोड़ूँ ?"

स्त्रीने उसे चटपट खोलकर अपने प्रियतमकी अगुलीमे पहिना दिया। "जो मिला वही लाभ है !" कहकर वह आदमी रोता रोता ही सीढीपर चढ गया। जहाज जेटी छोड़कर धीरे धीरे दूर सरकता जाने लगा और वह स्त्री मुखपर आँचल डालकर घुटने टेककर वहीं बैठ गई। बहुतसे लोग दाँत काढकर हँसते हँसते चले गये। किसीने कहा, 'वाहरे लड़के !' किसीने कहा, 'वाह बहादुर छोकरे !' बहुतसे लोग यह कहते कहते चले गये, 'कैसा तमाशा किया ! हँसते हँसते पेट दुखने लगा !' ऐसे ऐसे न जाने कितने मन्तव्य प्रकट किये

---

* यह बगला मुहाविरा है, अर्थ है अँगूठा दिखाकर।

गये । केवल मैं ही अकेला सबके हँसी-तमाशेकी चीज़ उस भोली स्त्रीके अपरिसीम दुःखका साक्षी बनकर गुम-सुम खडा रह गया ।

छोटी बहिन आँखें पोंछती हुई पासमे खडी अपनी बहिनका हाथ खींच रही थी । मेरे पासमे जाकर खडे होते ही वह धीरेसे बोली, "बाबूजी आये हैं, बहिन, उठो।"

मुँह उठाकर उसने मेरी ओर देखा और साथ ही साथ उसका रुदन मानो बाँध तोड़कर फट पडा । मेरे पास सान्त्वना देनेके लिए और था ही क्या ! फिर भी, उस दिन मै उसका साथ नहीं छोड सका । उसके पीछे पीछे उसकी गाडीमे जा बैठा । रास्ते-भर वह रो रो कर यही बात कहती रही कि, "बाबूजी, आज मेरा मकान सूना हो गया । किस तरह मै उसके भीतर पैर रखूँगी; एक माहके लिए तमाखू खरीदने गये हैं,—यह एक मास मैं कैसे काटूँगी ! विदेशमे उन्हे न जाने कितनी तकलीफ उठानी होगी, मैंने उन्हे वहाँ क्यो जाने दिया ! रगूनके बाजारकी तमाखूसे हमारा काम तो मजेसे चल रहा था; तब फिर क्यो अधिक लाभकी आशासे मैंने उन्हे इतनी दूर भेजा ! दुःखके मारे मेरी छाती फटी जाती है ! बाबूजी, अगली मेलसे ही मै उनके पास चली जाऊँगी ।" इस तरह वह न जाने कितना और क्या क्या कहती रही ।

मैं एक बातका भी जवाब न दे सका, केवल अपना मुँह फिराकर खिड़कीके बाहर देखता हुआ अपनी आँखोके आँसुओंको छुपाता रहा ।

वह कहने लगी, "बाबूजी, तुम्हारी जातके लोग जितना प्यार-प्रेम कर सकते हैं, उतना हमारी जातके लोग नहीं कर सकते । तुम लोगोमे जितनी दया माया है उतनी और किसी देशके लोगोमे नहीं है ।"

कुछ देर ठहरकर और दो-तीन दफे आँखे पोछकर वह कहने लगी, "बाबूके प्यारमे पड़कर जब मै उनके साथ रहने लगी तब कितने ही लोगोने मुझे भय दिखाकर रोका था, किन्तु, मैने किसीकी भी बात न सुनी, इस समय न जाने कितनी स्त्रियाँ मेरे सौभाग्यपर मन-ही-मन जलती हैं।"

चौरस्तेके नजदीक मैंने चाहा कि उतरकर अपने डेरेपर चला जाऊँ, किंतु, वह व्याकुल होकर दोनो हाथोंसे गाड़ीका दरवाजा रोककर बोली, "ना बाबूजी, सो नहीं होगा । तुम्हे हमारे साथ चलकर एक प्याला चाह पीकर आना होगा, चलिए ।"

मैं इकार न कर सका। गाडी चलने लगी। उसने एकाएक पूछा, " अच्छा बाबूजी, रंगपुर कितनी दूर है? आप कभी वहाँ गये हैं? कैसी जगह है? बीमार होनेपर वहाँ डाक्टर तो मिल सकते हैं न ? "

बाहरकी ओर देखते हुए मैंने उत्तर दिया, " हाँ, मिलते क्यो नही। "

एक उसास छोडकर वह बोली, "फया (=ईश्वर), उन्हे भला रखे! उनके भाई भी साथमे हैं। वे बडे ही सज्जन आदमी हैं, छोटे भाईको तो वे प्राणोसे ज्यादा रक्खेगे। तुम लोगोका शरीर तो जैसे प्रेमहीका बना है! मुझे कुछ सोच नहीं करना है, क्यो न बाबूजी ? "

मै चुपचाप बाहरकी ओर देखता हुआ केवल यही सोचने लगा, इस महा-पापमे मेरा खुदका कितना हिस्सा है ? चाहे आलस्यवश हो, चाहे आँखोकी शरमके मारे हो, और चाहे अक्ल मारी जानेके कारण हो, यह जो मैंने अपना मुँह बन्द किये रहकर इतना बडा अन्याय अनुष्ठित होते देखा और कुछ कहा नहीं, इसके अपराधसे क्या मैं छुटकारा पाऊँगा ? और यदि ऐसा ही है, तो फिर सिर ऊँचा करके मै सीधा क्यो नही बैठ सकता ? उसकी ऑखोकी ओर देखनेका साहस क्यो नही कर सकता ?

चाह-बिस्कुट लेकर और उनके विवाहित जीवनकी लाखो घटनाओंका विस्तृत इतिहास सुनकर जब मै मकानसे बाहर हुआ तब दिन अधिक बाकी नहीं था। घर लौट जानेकी इच्छा नही हुई। दिनके अन्तमे सब लोग अपना अपना काम-काज खत्म करके डेरेमे लौट आये हैं,—दादा ठाकुरकी होटल उस समय तरह-तरहके सुन्दर हास्य-परिहाससे मुखरित हो रही है। पर, यह सब हो-हल्ला मुझे जहर-जैसा लगने लगा।

अकेला रास्ते रास्ते घूमते हुए मैं यही सोचने लगा कि इस समस्याकी मीमासा होती किस तरह ? बर्मी लोगोंमें विवाहके सम्बन्धमे कोई बँधा हुआ नियम नहीं है! विवाहकी कुलीन विधि भी है और पति-पत्नीकी तरह जो स्त्री-पुरुष तीन दिन एक साथ रहकर एक बर्तनमे भोजन कर लेते हैं, उनका भी विवाह हो गया समझा जाता है। न तो समाज ही इसे नामजूर करती है और न वह स्त्री ही इस कारण किसी तरह हलकी नजरसे देखी जाती है। परतु, ' बाबू ' के लिए हिन्दू कानूनमे यह सब कुछ भी नहीं है। इस स्त्रीको वह अपने देशमे ले जाकर नहीं रह सकता। हिन्दू समाज उन्हें न हो तो न अपनावे, किन्तु, यह भी

तो जीवन-भर सहन करते रहना कठिन है कि नीचसे नीच आदमी भी उन्हें नीची निगाहसे देखे। या तो चिरकालके लिए निर्वासितकी तरह प्रवासमें रहा जाय; या फिर, बड़े भइयाने अपने छोटे भाईकी जो व्यवस्था की, वही ठीक है। इतना होते हुए भी, 'धर्म' नामक शब्दका यदि कोई अर्थ हो सकता है,—चाहे वह धर्म हिन्दूजातिका हो या और किसी जातिका,—तो इतना बड़ा नृशंस व्यापार किस कदर ठीक हो सकता है सो समझना मेरी बुद्धिके परेकी बात है। यह सब बाते तो समयानुसार और कभी सोचकर देखूँगा; किंतु, इस गुस्सेके मारे तो मै जलकर खाक होने लगा कि यह कापुरुष आज बिना किसी अपराधके इस अनन्य-निर्भर नारीके परम स्नेहके ऊपर वेदनाका बोझा लादकर और चकमा देकर भाग गया।

रास्तेके किनारे किनारे जो चलना शुरू किया तो चलता ही गया। बहुत दिन पहले, एक दिन अभयाका पत्र पढने जिस चाहकी दूकानमे गया था उसी दूकानके मालिकने शायद पहिचानकर मुझे हॉक दी, "बाबू साहब, आइए।"

एकाएक जैसे नीद टूटते ही मैंने देखा, यह वही दूकान है और वह रोहिणी भइयाका घर है। बिना कुछ कहे उसके बुलानेका मान रखकर मैं अन्दर चला गया और एक प्याला चाह पीकर बाहर निकला। रोहिणीके दरवाजेपर धक्का देकर देखा कि, भीतरसे बन्द है। बाहरकी सॉकलको पकड़कर दो-चार दफे हिलाते ही किवाड खुल गये। ऑख उठाकर देखा कि सामने अभया है।

"अरे तुम?"

अभयाकी ऑखे और चेहरा लाल हो उठा, कोई भी जवाब दिये बगैर वह पलक मारते-न-मारते अपने कमरेमे चली गई और उसने अदरसे कुडी बन्द कर ली। किन्तु, लज्जाकी जो मूर्ति, शामके उस धुॅधले प्रकाशमे, उसके चेहरेपर फूट उठते देखी, उससे जानने-पूछनेके लिए और कुछ बाकी ही नहीं रहा। अभिभूतकी तरह कुछ देर खड़ा रहकर चुपचाप लौटकर जा रहा था कि अकस्मात् मेरे दोनो कानोमें मानो दो तरहके विभिन्न रोनेके स्वर एक ही साथ गूँज उठे, एक था उस महापापीका और दूसरा उस बर्मी युवतीका। मैं जाना ही चाहता था, किन्तु, फिर लौटकर ऑगनमें खड़ा हो गया। मन-ही-मन कहा, नहीं, मुझे इस तरह नहीं जाना चाहिए। नहीं नहीं,—ऐसा नहीं कहना चाहिए, ऐसा नहीं करना चाहिए,—यह उचित नहीं है, यह अच्छा नहीं है,—यह सब

अनेक दफे सुननेकी आदत रही है, अनेक दफे दूसरोंको सुनाया भी है,—किन्तु बस, अब और नहीं। क्यो अच्छा है, क्या बुरा है, क्या अच्छा है, कहाँ किसके लिए बुरा है,—ये सब प्रश्न यदि हो सकेगा तो स्वय उसीके मुँहसे सुनूँगा और यदि ऐसा न कर सकूँ तो केवल पोथीके अक्षरोपर दृष्टि रखकर मीमासा करनेका अधिकार न मुझे है, न तुम्हे है और न शायद विधाताको ही है !

१०

एकाएक अभया दरवाजा खोलकर सामने आ खड़ी हुई, बोली, "जन्म-जन्मान्तरके अध सस्कारके धक्केसे पहले पहल अपने आपको सम्हाल न सकी, इसीलिए मै भाग खडी हुई थी, श्रीकान्तबाबू ! उसे आप मेरी सचमुचकी लज्जा मत समझना।

उसके साहसको देखकर मै अवाक् हो गया ! वह बोली, "आपको अपने डेरेको लौटनेमे आज कुछ देरी हो जायगी, क्योकि रोहिणीबाबू आते ही होगे। आज हम दोनो ही आपके आसामी हैं। आपके विचारमे यदि हम लोग अपराधी सुबूत हो, तो जो दण्ड आप देंगे उसे हम मजूर करेंगे।"

रोहिणीको 'बाबू' कहते यह पहली बार ही सुना। मैने पूछा, "आप वापिस कब लौट आईं ?"

अभया बोली, "परसो। वहाँ क्या हुआ, यह जाननेका आपको निश्चय ही कुतूहल हो रहा है।" यह कहकर उसने अपना दाहिना हाथ उघाडकर दिखाया। बेतके निशान चमड़ेपर जगह जगह उभड रहे थे। बोली "और बहुतसे ऐसे निशान भी हैं जिन्हे आपको दिखा नहीं सकती !"

जिन दृश्योको देखकर मनुष्यका पुरुषत्व हिताहितका ज्ञान खो बैठता है, यह भी उन्हींमेसे एक था। अभयाने मेरे स्तब्ध कठोर मुखकी ओर देखकर पल-भरमे ही सब-कुछ समझ लिया और कुछ हँसकर कहा, "किन्तु, मेरे वापस लौट आनेका यही एकमात्र कारण नही है श्रीकान्तबाबू, यह तो मेरे सती-धर्मका एक छोटा-सा पुरस्कार है। वे मेरे पति हैं और मै उनकी विवाहिता स्त्री,—यह इसीकी जरा-सी बानगी है।"

क्षण-भर चुप रहकर उसने फिर कहना शुरू किया, "मैने स्त्री होकर पतिकी अनुमतिके बगैर ही इतनी दूर आकर उनकी शान्ति भङ्ग कर दी,—स्त्री-जातिकी

इतनी बड़ी हिमाकत पुरुष-जाति बरदाश्त नहीं कर सकती। यह उसीका दण्ड है। अनेक तरहसे भुलावा देकर वे मुझे अपने घर ले गये और वहाँ मुझसे कैफियत तलब की कि क्यो मैंने रोहिणीके साथ यहाँ तक आई? मैने कहा कि 'पतिका घर कैसा होता है सो तो मैंने आज तक नहीं जाना। मेरे बाप हैं नहीं, माँ भी मर गई,—ऐसा कोई नही है जो मुझे वहाँ खाने-पीनेको दे,—तुम्हे बार बार चिठ्ठी लिखनेपर भी जवाब नही पाया। उन्होने एक बेत उठाकर कहा, 'आज उसका जवाब देता हूँ।'" इतना कहकर अभयाने अपने उस चोट खाये हुए दाहिने हाथको एक बार सहला लिया।

उस अत्यन्त हीन, अमानुष, बर्बरके विरोधमे मेरे सारे अन्तःकरणमे फिर हलचल मच गई, किन्तु, जिस अंध-संस्कारके फलस्वरूप अभया मुझे देखते ही भागकर छिप गई थी, वह सस्कार मेरे भी तो था! मै भी तो उसकी सीमाके बाहर नही था! इसलिए मैं यह भी नहीं कह सका कि 'तुमने अच्छा किया।' साथ ही यह भी मुँहसे न निकला कि, 'अपराध किया है।' दूसरेके अत्यन्त सकटके समय जब अपने निजके विवेक और संस्कारके,—स्वाधीन विचार और पराधीन ज्ञानके, बीच संघर्ष छिडता है तब दूसरेको उपदेश देने जाने जैसी विडम्बना ससारमे शायद ही कोई हो। कुछ देर चुप रहकर बोला, "तुम्हारा वहाँसे चला आना अन्याय्य हुआ, सो तो मै नहीं कह सकता, किन्तु—"

अभया बोली, "इस 'किन्तु' का विचार ही तो मै आपके समीप चाहती हूँ, श्रीकान्तबाबू। वे अपनी बर्मी स्त्रीको लेकर सुखसे रहे, मुझे इसकी कोई शिकायत नही, किन्तु, मै आपसे यह बात जानना चाहती हूँ कि पति जब, एकमात्र बेतके जोरसे, स्त्रीके समस्त अधिकारोको छीन लेता है और उसे अँधेरी रातमे अकेली घरके बाहर निकाल देता है, तब इसके बाद भी विवाहके वैदिक मत्रोके जोरसे उसपर पत्नीके कर्तव्योकी जिम्मेदारी बनी रहती है या नहीं?"

किन्तु, मै चुपकी लगाये रहा। उसने मेरे मुँहपर दृष्टि ठहराकर फिर कहा, "यह तो खूब मोटी बात है कि जहाँ अधिकार नहीं वहाँ कर्तव्य भी नही। उन्होंने भी तो मेरे ही साथ उन्हीं मंत्रोका उच्चारण किया था! किन्तु, वह एक निरर्थक बकवाद ही रहा, उनकी प्रवृत्तिपर,—उनकी इच्छापर, तो जरा-सी भी रोक नहीं लगा सका! मत्रोकी वह अर्थहीन आवृत्ति मुँहसे बाहर निकलनेके साथ ही

मिथ्यामें मिल गई,—किन्तु, क्या वह सारा बन्धन,—सारा उत्तरदायित्व, मैं स्त्री हूँ इसीलिए, केवल मेरे ही ऊपर रख गई ? श्रीकान्त बाबू, आप तो 'किन्तु' तक कहके ही रुक गये। अर्थात् मेरा वहाँसे चला आना अन्याय्य नहीं हुआ, किन्तु,—इस ' किन्तु ' का अर्थ क्या केवल यही है कि जिसके पतिने इतना बडा अपराध किया है उसकी स्त्रीके नारी-जन्मकी यही चरम सार्थकता है कि वह उसका प्रायश्चित्त करती हुई जीवन-भर जीती हुई भी मृतकके समान बनी रहे ? एक दिन मेरे द्वारा जो विवाहके मंत्र बुलवा लिये गये थे,—उन्हीका बुलवा लिया जाना ही क्या मेरे जीवनका एकमात्र सत्य है, बाकी सब बिल्कुल ही मिथ्या है ? इतना बडा अन्याय, इतना बड़ा निष्ठुर अत्याचार, मेरे पक्षमे कुछ भी,—कुछ भी नहीं है ? और क्या मेरा पत्नीत्वका कुछ भी अधिकार नही है, माता होनेका अधिकार नही है, समाज, ससार, आनन्द किसीपर भी मेरा कुछ अधिकार नही है ? यदि कोई निर्दय, मिथ्यावादी, बदचलन पति बिना अपराधके अपनी स्त्रीको घरसे निकाल दे, तो क्या इसीलिए उसका समस्त नारीत्व व्यर्थ, लगडा, पगु हो जाना चाहिए ? क्या इसीलिए भगवान्ने स्त्रियोको बनाकर पृथ्वीपर भेजा था ? सभी जातियों,—सभी धर्मोंमे इस तरहके अन्यायका प्रतीकार है,—मै हिन्दूके घर पैदा हुई हूँ, क्या इसीलिए मेरे लिए सब द्वार बन्द हो गये हैं, श्रीकान्त बाबू ?"

मुझे मौन देखकर अभया बोली, "जवाब नही दिया, श्रीकान्त बाबू ?"

मैंने कहा, "मेरे जवाबसे क्या बनता-बिगडता है ? मेरे मतामतके लिए तो आप राह देख नही रही थी ?"

अभया बोली, "किन्तु, इसके लिए तो समय नहीं था !"

मैंने कहा, "सो हो सकता है। आप जब मुझे देखकर भाग गई तब मैं भी चला जा रहा था। किन्तु, फिर लौट आया सो क्यों, आप जानती हैं ?"

"नहीं।"

"लौट आनेका कारण यह है कि आज मेरा मन बहुत ही उद्विग्न हो रहा है। आपसे भी अधिक निष्ठुर अत्याचार मैंने एक स्त्रीपर होते हुए आज सुबह देखा है।" यह कहकर जहाज-घाटकी उस बर्मी स्त्रीकी सारी कथा मैंने विस्तारसे कह सुनाई और पूछा, "वह स्त्री अब क्या करे, आप बता सकती हैं ?"

अभया सिहर उठी। इसके बाद गर्दन हिलाकर बोली, "नहीं, मैं नहीं बता सकती।"

मैंने कहा, "आज आपको और भी दो स्त्रियोका इतिहास सुनाता हूँ। एक तो मेरी अन्नदा जीजीका और दूसरा प्यारीबाईका। दुःखके इतिहासमे इनमेंसे किसीका भी स्थान आपसे नीचे नही है।"

अभया चुप हो रही। शुरूसे आखिरतक अन्नदा जीजीकी सारी कथा कहकर मैंने आँख उठाकर देखा कि अभया काठकी मूर्तिकी तरह स्थिर होकर बैठी है, उसकी दोनो ऑखोसे पानी झर रहा है। कुछ देर इसी तरह बैठी रहकर उसने जमीनपर सिर लगाकर नमस्कार किया और वह उठकर बैठ गई। फिर ऑचलसे ऑखोंको पोछते हुए बोली, "उसके बाद?"

मैंने कहा, "उसके बादका कुछ मालूम नहीं, अब प्यारी बाईकी कथा सुनो। जब उसका नाम राजलक्ष्मी था तबसे वह एक आदमीको चाहती थी। वह चाहना किस तरहका था सो आप जानती हैं? रोहिणीबाबू आपको जिस तरह चाहते हैं उसी तरह। यह मैंने अपनी ऑखो देखा है, इसीलिए तुलना कर सका। इसके उपरान्त बहुत दिनोके बाद दोनोकी मुलाकात हुई। तब वह 'राजलक्ष्मी' नहीं रही थी, 'प्यारी बाई' हो गई थी। किन्तु, यह बात उसी दिन प्रमाणित हो गई कि राजलक्ष्मी मरी नही है, बल्कि प्यारीके भीतर ही चिरकालके लिए अमर हो गई है।"

अभया उत्सुक हो कर बोली, "उसके बाद?"

बादकी घटनाऍ एकके बाद एक विस्तारके साथ सुनाकर कहा, "इसके बाद एक दिन ऐसा आ पड़ा कि जिस दिन प्यारीने अपने प्राणाधिक प्रियतमको चुपचाप दूर हटा दिया।"

अभयाने पूछा, "उसके बाद क्या हुआ, जानते हैं?"

"जानता हूँ। पर अब नही कहूँगा।"

अभयाने एक निःश्वास छोड़कर कहा, "आप क्या यह कहना चाहते हैं कि मैं अकेली ही नहीं हूँ,—चिरकालसे ही स्त्रियोंको ऐसे दुर्भाग्यका भोग करना पड़ रहा है और इस दुःखको सहन करते रहनेमे ही उनके जीवनकी चरम सफलता है?"

मैंने कहा, " मै यह कुछ भी नही कहना चाहता। आपको मै केवल इतना ही जतला देना चाहता हूँ कि स्त्रियाँ मर्द नहीं हैं। दोनोंके आचार-व्यवहार एक ही तराजूसे नही तौले जा सकते, और तौले भी जायँ तो कोई लाभ नही।"

" क्यो नही है, कह सकते हैं?"

" नही, सो भी नही कह सकता। इसके सिवाय आज मेरा मन कुछ ऐसा उद्भ्रान्त हो रहा है कि इन सब जटिल समस्याओंकी मीमासा करना सभव ही नहीं! आपके प्रश्नपर मै और एक दिन विचार करूँगा। फिर भी, आज मैं आपसे यह कहे जा सकता हूँ कि मैंने अपने जीवनमे जो थोड़ेसे महान् नारी-चरित्र देखे हैं उन सबने दुःखके भीतरसे गुजरकर ही मेरे मनमे ऊँचा स्थान पाया है। मै यह शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि मेरी अन्नदा जीजी अपने दुःखका सारा भार चुपचाप सहन करनेके सिवाय और कुछ न कर सकतीं। यह भार असह्य होनेपर भी वे अपने पथसे हटकर कभी आपके पथपर पैर रख सकती, यह बात सोचनेसे भी शायद दुखके मारे मेरी छाती फट जायगी।"

कुछ देर चुप रहकर कहा, " और वह राजलक्ष्मी। उसके त्यागका दुःख कितना बडा है सो तो मैं स्वय अपनी नजरसे देख आया हूँ। इस दुःखके जोरसे ही उसने आज मेरे समस्त हृदयको परिव्याप्त कर रक्खा है।"

अभयाने चौंककर कहा, " तो फिर क्या आप ही उनके—"

मैंने कहा, " यदि ऐसा न होता तो वह इतनी स्वच्छन्दतासे मुझे इतनी दूर न पडा रहने देती, खो जानेके डरसे प्राणपणसे खीचकर अपने पास ही रखना चाहती।"

अभया बोली, " इसके मानी यह कि राजलक्ष्मी जानती है कि उसे आपके खोये जानेका डर ही नही है।"

मैंने कहा, " केवल डर ही नहीं, राजलक्ष्मी जानती है कि मैं खोया जा ही नही सकता। इसकी सभावना ही नहीं है। पाने और खोनेकी सीमासे बाहर जो एक सम्बन्ध है, मुझे विश्वास है कि उसने उसे ही प्राप्त कर लिया है और इसीलिए मेरी भी इस समय उसे जरूरत नहीं है। देखो, मैंने स्वय भी इस जीवनमें कुछ कम दुःख नहीं उठाया है। उससे मैंने यही समझा है कि 'दुःख'

जिसे कहते हैं वह वस्तु न तो अभावरूप ही है और न शून्यरूप। भयहीन जो दुःख है, उसका उपभोग सुखकी तरह ही किया जा सकता है।"

अभया देरतक स्थिर रहकर धीरेसे बोली, "मै आपकी बात समझती हूँ श्रीकान्तबाबू! अन्नदा जीजी, राजलक्ष्मी,—इन दोनोने ही जीवनमे दुःखको ही सम्बलरूपसे प्राप्त किया है। किन्तु, मेरे हाथ तो वह भी नही। पतिके समीप मैने पाया है केवल अपमान,—केवल लाछना और ग्लानि लेकर ही मै लौट आई हूँ। इस मूल-धनको लेकर ही क्या आप मुझे जीवित रहनेके लिए कहते हैं?"

सवाल बड़ा ही कठिन है। मुझे निरुत्तर देखकर अभया फिर बोली, "इनके साथ मेरे जीवनका कहीं भी मेल नहीं है, श्रीकान्तबाबू। ससारके सभी स्त्री-पुरुष एक साँचेमे ढले नहीं होते, उनके सार्थक होनेका रास्ता भी जीवनमे केवल एक नहीं होता। उनकी शिक्षा, उनकी प्रवृत्ति और मनकी गति एक ही दिशामे चलकर उन्हे सफल नही बना सकती। इसीलिए, समाजमे उनकी व्यवस्था रहना उचित है। मेरे जीवनपर ही आप एक दफे अच्छी तरह शुरूसे आखिरतक नजर डाल जाइए। मेरे साथ जिनका विवाह हुआ था उनके समीप आये बगैर भी कोई उपाय नहीं था और आनेपर भी कोई उपाय नहीं हुआ। इस समय उनकी स्त्री, उनके बाल-बच्चे, उनका प्रेम, कुछ भी मेरा खुदका नही है। इतनेपर भी उन्हींके समीप उनकी एक रखेल वेश्याकी तरह पड़े रहनेसे ही क्या मेरा जीवन फलो-फूलोसे लदकर सफल हो उठता श्रीकान्तबाबू? और उस निष्फलताके दुःखको लादे हुए सारे जीवन भटकते फिरना ही क्या मेरे नारी-जीवनकी सबसे बड़ी साधना है? रोहिणीबाबूको तो आप देख ही गये हैं। उनका प्यार तो आपकी दृष्टिसे ओझल है नही। ऐसे मनुष्यके सारे जीवनको लँगड़ा बनाकर मैं 'सती'का खिताब नही खरीदना चाहती, श्रीकान्तबाबू।"

हाथ उठाकर अभयाने आँखोंके कोने पोंछ डाले और फिर रुँधे हुए कण्ठसे कहा, "न-कुछ एक रात्रिके विवाह-अनुष्ठानको, जो कि पति-पत्नी दोनोंके ही निकट स्वप्नकी तरह मिथ्या हो गया है, जबर्दस्ती जीवन-भर 'सत्य' कहकर खड़ा रखनेके लिए इतने बड़े प्रेमको क्या मैं बिल्कुल ही व्यर्थ कर दूँ? जिन विधाताने प्रेमकी यह देन दी है, वे क्या इसीसे खुश होंगे? मेरे विषयमे आपकी जो इच्छा हो वही धारणा कर लें, मेरी भावी सन्तानको भी आप जो चाहे सो कहकर पुकारे, किन्तु जीती रहूँगी, श्रीकान्त बाबू, तो मैं निश्चयपूर्वक कहे रखती हूँ कि हमारे

निष्पाप प्रेमकी सन्तान ससारमे मनुष्यत्वके लिहाजसे किसीसे भी हीन न होगी और मेरे गर्भसे जन्म ग्रहण करनेको वह अपना दुर्भाग्य कभी न समझेगी। उसे दे जाने लायक वस्तु उसके माँ-बापके समीप शायद कुछ भी न होगी; किन्तु, उसकी माता उसको यह भरोसा अवश्य दे जायगी कि वह सत्यके बीच पैदा हुई है, सत्यसे बढ़कर सहारा उसके लिए ससारमे और कुछ नही है। इस वस्तुसे भ्रष्ट होना, उसके लिए कठिन होगा।—ऐसा होनेपर वह बिल्कुल ही तुच्छ हो जायगी।"

अभया चुप हो रही, किन्तु सारा आकाश मानो मेरी आँखोके सामने काँपने लगा, मुहूर्त-भरके लिए मुझे भास हुआ कि इस स्त्रीके मुँहकी बाते मानो मूर्त्त रूप धारण करके बाहर हम दोनोको घेरकर खडी हो गई है।—हाँ, ऐसा ही मालूम हुआ। सत्य जब सचमुच ही मनुष्यके हृदयसे निकलकर सम्मुख उपस्थित हो जाता है तब मालूम होता है कि वह सजीव है, मानो उसके रक्तमासयुक्त शरीर है,—और मानो उसके भीतर प्राण भी हैं,—'नही' कहकर अस्वीकार करनेपर मानो वह चोट करके कहेगा, "चुप रहो! मिथ्या तर्क करके अन्यायकी सृष्टि मत करो।"

सहसा अभया एक सीधा प्रश्न कर बैठी, बोली, "आप स्वय भी क्या हमे अश्रद्धाकी नजरसे देखेंगे श्रीकान्त बाबू? और अब क्या हमारे घर न आवेंगे?"

उत्तर देते हुए मुझे कुछ देर इधर-उधर करना पड़ा। इसके बाद मै बोला, "अन्तर्यामीके समीप तो शायद आप निष्पाप हैं,—वे आपका कल्याण ही करेंगे; किन्तु, मनुष्य तो मनुष्यका अन्तस्तल नही देख सकते,—उनके लिए तो प्रत्येकके हृदयका अनुभव करके विचार करना सभव नहीं है। यदि वे प्रत्येकके लिए अलहदा अलहदा नियम गढने लगे तो उनके समाजकी सबकी सब कार्य-शृखला ही टूट जाय।"

अभया कातर होकर बोली, "जिस धर्ममे,—जिस समाजमे, हम लोगोको उठा लेने योग्य उदारता है, स्थान है,—क्या आप हम लोगोसे उसी समाजमें आश्रय ग्रहण करनेके लिए कहते हैं?"

इसका क्या जवाब दूँ, मै सोच ही न सका।

अभया बोली, "अपने आदमी होकर भी अपने ही आदमीको आप सङ्कटके समय आश्रय नही दे सकते?—उस आश्रयकी भीख माँगनी होगी हमें दूसरोंके निकट? उससे क्या गौरव बढ़ता है श्रीकान्त बाबू?"

प्रत्युत्तरमें केवल एक दीर्घश्वासके सिवाय और कुछ मुँहसे बाहर नहीं निकला।

अभया स्वयं भी कुछ देर मौन रहकर बोली, "जाने दीजिए, आप लोगोंने जगह नहीं दी न सही, मुझे सान्त्वना यही है कि जगतमें आज भी एक बड़ी जाति है जो खुले तौरपर स्वच्छन्दतासे स्थान दे सकती है।"

उसकी बातसे कुछ आहत होकर बोला, "क्या हर हालतमें आश्रय देना ही भला काम है, यह मान लेना चाहिए?"

अभया बोली, "इसका प्रमाण तो हाथोहाथ मिल रहा है, श्रीकान्त बाबू. 'पृथिवीमें कोई अन्याय कार्य अधिक दिन तक नहीं फल-फूल सकता', यह बात यदि सत्य है तो, क्या यह कहना पड़ेगा कि इसीलिए वे अन्यायको आश्रय देते हुए दिनों दिन ऊँचे बढ़ रहे हैं, और हम लोग न्याय-धर्मको आश्रय देकर प्रतिदिन क्षुद्र और तुच्छ होते जा रहे हैं?—हम लोग तो यहाँ कुछ ही दिन हुए आये हैं, परन्तु, इतने दिनोंमें ही देखती हूँ कि मुसलमानोंसे यह सारा देश छाया जा रहा है। सुनती हूँ, ऐसा एक भी गाँव नहीं है जहाँ कमसे कम एक घर मुसलमानका न हो और जहाँपर एकाध मसजिद तैयार न हो गई हो। हम लोग शायद अपनी आँखों न देख जा सकें, किन्तु, ऐसा दिन शीघ्र ही आवेगा जिस दिन हमारे देशकी तरह यह बर्मा देश भी मुसलमान-प्रधान देश बन जायगा। आज सुबह ही जहाज-घाटपर एक अन्याय देखकर आपका मन खराब हो गया है। आप ही कहिए, किस मुसलमान बड़े भाईको धर्म और समाजके भयसे ऐसे षड्यंत्रका,—ऐसी नीचताका, आसरा लेकर सुख-चैन की ऐसी गिरस्ती राख करके भाग जानेकी जरूरत पड़ती? इतना ही नहीं, वरन्, वह तो सभीको अपने दलमें खींच लेकर आशीर्वाद देता और बड़े भाईके योग्य सम्मान और मर्यादा ग्रहणकर घर लौट जाता। इन दोनोंमेंसे किससे सच्चा धर्म बना रहता है श्रीकान्तबाबू?"

मैंने गहरी श्रद्धासे भरकर पूछा, "अच्छा, आप तो गँवई-गाँवकी कन्या हैं, आपने यह सब बातें किस तरह जानीं? मैं तो नहीं समझता कि इतने प्रशस्त हृदय हम पुरुषोंमें भी अधिक हैं। आप जिसकी माता होंगी वह अभागी हो सकता है इसकी, कमसे कम, मैं तो किसी तरह कल्पना नहीं कर सकता।"

अभया अपने म्लान मुखपर जरा-सा हँसीका आभास लाकर बोली, "तो फिर श्रीकान्तबाबू, मुझे समाजसे बाहर कर देनेसे ही क्या हिन्दूसमाज अधिक

पवित्र हो उठेगा ? उससे क्या किसी ओरसे भी समाजको नुकसान नहीं उठाना पड़ेगा ? ”

कुछ देर स्थिर रहकर और फिर कुछ जरा-सा हँसकर कहा, “ किन्तु, मैं किसी तरह भी समाजसे बाहर न होऊँगी । सारा अपयश, सारा कलक, सारा दुर्भाग्य अपने सिरपर लेकर हमेशा आप लोगोंकी ही होकर रहूँगी । अपनी एक सन्तानको भी यदि किसी दिन मनुष्यकी तरह मनुष्य बनाकर खडा कर सकूँ, तो मेरा यह सारा दुःख सार्थक हो जाय,—बस, यही आशा लेकर मैं जीऊँगी । मुझे परीक्षा करके देखना होगा कि सचमुचका वास्तविक मनुष्य ही मनुष्योंमे बड़ा है या उसके जन्मका हिसाब ही ससारमे बडा है । ”

११

मनोहर चक्रवर्ती नामक एक प्राज्ञ सज्जनसे मेरी मुलाकात हो गई थी । दादा ठाकुरकी होटलमे एक हरि-सकीर्तन-दल था । पुण्य बटोरनेकी इच्छासे बीच-बीचमे वे उसी निमित्त वहाँ आते थे । किन्तु, कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं सो मैं कुछ नहीं जानता था । सिर्फ इतना ही सुना था कि उनके पास बहुत-सा रुपया है, और सब तरफसे वे अत्यन्त हिसाबी हैं ।

न जाने क्यों, मुझसे बेहद प्रसन्न होकर, वे एक दिन अकेलेमे बोले, “ देखो श्रीकान्तबाबू, तुम्हारी उम्र छोटी है,—जीवनमे यदि उन्नति प्राप्त करना चाहते हो तो तुम्हे मैं कुछ ऐसे ‘गुर’ बतला सकता हूँ जिनका मूल्य लाख रुपया है । मैंने खुद जिनके समीप ये गुर प्राप्त किये थे उन्होने ससारमे कितनी उन्नति की थी, सुनोगे तो शायद अवाक् हो जाओगे, किन्तु, बात बिल्कुल सच है । वे केवल पचास रुपया महीना पाते थे, परंतु, मरते समय घर-बार, बाग-बगीचा, तालाब, ज़मीन-ज़ायदाद आदिके सिवाय दो हजार रुपये नगद छोड गये । कहो न, यह क्या कोई सहज बात है ? अपने माँ-बापके आशीर्वादसे मैं खुद भी तो—”

परतु, वे अपनी बात यहींपर दबा देकर बोले, “सुनता हूँ, तनखा तो खूब मोटी-सी पाते हो, भाग्य भी तुम्हारा बड़ा अच्छा है,—बर्मामे आते ही तो किसीका ऐसा नहीं सुना गया,—किन्तु, फिजूलखर्ची भी कितनी करते हो,—है न यह बात ? भीतर ही भीतर पता लगानेसे दुःखके मारे छाती फट जाती है । देखते ही तो हो

कि मै लोगोंकी किसी बातमें नहीं पड़ता। किन्तु, मेरे कहे माफिक, अधिक नही, दो बरस तो चल देखो। मैं कहता हूँ तुमसे, कि देश लौटकर अगर चाहोगे तो तुम अपना विवाह तक कर सकोगे।"

इस सौभाग्यके लिए भीतर ही भीतर मै इस कदर लालायित हो उठा हूँ, यह तथ्य न मालूम उन्होने किस तरह पा लिया,—किंतु, यह तो वे खुद ही प्रकट कर चुके थे कि वे भीतर ही भीतर पता लगाये बिना किसीकी भी किसी बातमे नहीं पड़ते!

जो हो, उनके उन्नतिके बीज-मंत्र-रूप सत्परामर्शके लिए मैं लुब्ध हो उठा। वे बोले, "देखो, दान-वान करनेकी बात छोड़ दो,—चोटीका पसीना एड़ी तक बहाकर रोज़ी कमानी होती है, कमर-भर मिट्टी खोदनेपर भी पैसा नही मिलता। अपने खूनको जलाकर पैदा की हुई कौड़ी गैरोंको बख्श दे, आजकल-की दुनियामे ऐसा पागल और भी कोई है? अपने स्त्री-बच्चो और परिवारके लिए रख छोड़ा जाय, तब न दूसरोंको दान किया जाय? इस बातको बिल्कुल ही छोड़ दो, यह मैं नहीं कहता,—किन्तु देखो, जिसके घरमे पैसेकी खींच-तान हो, उस आदमीको कभी प्रश्रय न देना। अधिक नही, दो-चार दिनकी आमद-रफ्तके बाद ही वह अपनी गिरिस्तीकी कष्ट-कहानी उठाकर दो-चार रुपये माँग बैठेगा। जो दिये सो तो गये ही, और बाहरका झगड़ा घरमे खींच लाये सो अलग। रुपयोंकी ममता वैसे कोई सचमुचमे छोड़ तो सकता नहीं,—तकाजा करना ही पड़ता है, और तब दौड़-धूप झगड़ा-बखेड़ा। भला हमे इसकी जरूरत ही क्या पड़ी है?" मैंने गर्दन हिलाकर कहा, "जी हाँ, आप बिल्कुल सही कहते हैं।"

वे उत्साहित होकर बोले, "तुम अच्छे घरके लड़के हो, इसीलिए चट्से बात समझ गये; किंतु, इन छोटी जातके लोहा पीटनेवाले सालोंको समझाओ देखूँ! हरामजादे सात जन्ममे भी नहीं समझेंगे। सालोंके पास खुदका एक पैसा नहीं, फिर भी, पराये घरसे कर्ज लाकर दूसरोंको दे आयँगे। ये छोटी जातवाले ऐसे ही अहमक होते हैं!"

कुछ देर चुप रहकर बोले, "तब हाँ, देखो, कभी किसीको भी रुपये उधार मत देना। कहेंगे, बड़ा कष्ट है!—तुम्हें कष्ट है भाई, तो हमें क्या? और यदि सचमुचमें ही कष्ट है तो दो-भर सोना लाकर रख जाओ न, देता हूँ दस रुपये अभी उधार! क्यो भइया, है न ठीक?"

मैने कहा, " जी हॉ, ठीक तो है ! "

वे बोले, " एक दफे ही नहीं, सौ दफे ठीक है ! और देखो, झगड़े-बखेड़ेकी जगह कभी मत जाना । किसीका खून हो जाय तो भी नहीं। हमे उससे मतलब ? किसीको बचाने गये तो दो-एक चोटे अपनेपर भी आ पड़ेगीं । सिवाय इसके कोई एक पक्ष अपना गवाह मान बैठेगा । तब फिर क्या है, करो दौड़ादौड़ अदालतो तक ! बल्कि, लड़ाई-झगडा जब खत्म हो जाय तब, यदि जी चाहे तो, घूम आओ एक दफे वहॉ तक, और दो बाते भली-बुरी सलाहकी भी दे आओ,—पॉच आदमियोंमे तुम्हारा नाम हो जायगा । है न बात ठीक ? "

कुछ देर चुप रहकर फिर उन्होने कहना शुरू किया, " और फिर, इन लोगोंके रोग-शोकके समय तो, भइया, मैं इनके महल्लेमें भी पैर नहीं रखता । उसी समय कह बैठेगे कि भाई, मै मर रहा हूँ,—इस विपत्तिमे दो रुपया देकर ज़रा सहायता करो ! भइया, मनुष्यके मरने-जीनेकी बात कुछ कही नही जा सकती,—इसलिए, उसे रुपया देना और पानीमे फेक देना एक ही बात है,—बल्कि पानीमे फेक देना कही भला है, परतु उस जगह नहीं । और कुछ नही तो शायद यही कह बैठे, ' जरा रत-जगा करने आ बैठना । ' बहुत खूब ! मै जाऊँ उनकी बीमारीमे रात-जागने किंतु कही इस दूर परदेसमे मुझे ही कुछ,—न करे माता शीतला, कान पकडता हूँ मॉ ! "—यो कहकर उन्होने जीभको दॉतो-तले दबाया तथा अपने कान अपने ही हाथो ऐंठकर और नमस्कार कर कहा, "हम लोग सभी तो उनके चरणोंमे पडे हैं,—किन्तु, बताओ भला, ऐसी विपत्तिमे मेरी खबर कौन लेगा ? "

अबकी मैं हॉमे हॉ न मिला सका । मुझे मौन देखकर वे मन-ही-मन शायद कुछ दुविधामे पड़कर बोले, " देखो न साहब लोगोंको । वे क्या कभी ऐसे स्थानमे जाते हैं ?—कभी नहीं । अपना एक कार्ड-भर पठा दिया, बस, हो गया ! इसीलिए देखो न उनकी उन्नतिको ! उसके बाद, अच्छे होनेपर, फिर वैसा ही मेल-जोल,—ठीक उसी तरह । सो भइया, किसीके झगडे-झझटमे कभी न पड़ना चाहिए । "

आफिसका समय होते देख मैं उठ खड़ा हुआ । इन प्राज्ञ महाशयकी भली सलाहसे इतनी उम्रमे मेरी अधिक मानसिक उन्नति होना सभव हो, सो बात नहीं । मनके भीतर, और तो क्या, हलचल भी उससे कुछ अधिक नही मची । क्योंकि,

इस किस्मके अनुभवी व्यक्तियोका बिल्कुल अभाव देहातमे भी मैंने नही देखा तथा और और बदनामी उनकी चाहे जितनी हो, किंतु, सलाह देनेमे व कजूसी करते हो, उनके बारेमे यह अपवाद भी कभी नहीं सुना। और, देशके लोगोने मान भी लिया है कि यह सलाह भली सलाह है,—जीवन-यात्राके कार्यमें निस्सदिग्ध सज्जनोचित उपाय है,—फिर भले ही पारिवारिक जीवनमे वह उतनी कारगर न हो जितनी कि सामाजिक जीवनमे। बगाली गृहस्थका कोई लड़का यदि अक्षरशः इसके अनुसार चले तो उसके माँ-बाप असन्तुष्ट होंगे,—बगाली माता-पिताओंके विरुद्ध इतनी बडी झूठी बदनामी फैलाते हुए पुलीसके सी० आई०डी०के आदमियोका भी विवेक बाधा डालेगा। सो चाहे जो हो, किंतु, इस प्रतिज्ञाके भीतर कितना बड़ा अपराध था सो हफ्ते दो-हफ्ते गुजरते न गुजरते ही भगवान्ने इन्हीके द्वारा मेरे निकट प्रमाणित कर दिया।

तबसे मैं अभयाके घरकी ओर नही गया था। यह सत्य है कि मै उसकी सारी अवस्थाके साथ उसकी बातोका मिलान करके शुरूसे अन्ततकके इस व्यापारको ज्ञानके द्वारा एक तरहसे देख सकता था, यह भी ठीक है कि उसके विचारोकी स्वाधीनता, उसके आचरणकी निर्भीक सावधानता, उनका परस्परका सुन्दर और असाधारण स्नेह,—यह सब मेरी बुद्धिको उसी ओर निरन्तर आकर्षित करते थे, किन्तु फिर भी, मेरे जीवन-भरके संस्कार किसी तरह भी उस ओर मुझे पैर नही बढाने देना चाहते थे। मनमे केवल यही आता था कि,—मेरी अन्नदा जीजी यह कार्य न करती। वे कहीं भी दासी-वृत्ति करके लाछना, अपमान और दुःखके भीतरसे गुजरते हुए अपना बाकी जीवन काट देती, किंतु, ब्रह्माण्डके सारे सुखोंके बदलेमे भी जिसके साथ उनका विवाह नही हुआ उसके साथ गिरस्ती करनेको राजी न होती। मैं जानता हूँ, उन्होंने भगवान्मे एकान्तभावसे अपने आपको समर्पित कर दिया था। अपनी उस साधनाके भीतरसे उन्होने पवित्रताकी जो धारणा और कर्तव्यका जो ज्ञान प्राप्त किया था,—सो अभयाकी सुतीक्ष्ण बुद्धिकी मीमासाके समीप क्या एकबारगी ही बच्चोका खेल था?

हठात् अभयाकी एक बात याद आ गई। तब, भली भाँति तहतक पहुँचनेका मुझे अवकाश नहीं मिला था। उसने कहा था, 'श्रीकान्तबाबू, दुःखका भोग करनेमे भी एक किस्मका नाशकारी मोह है। मनुष्यने अपनी युग-युगोंकी

जीवन-यात्रामें यह देखा है कि कोई भी बड़ा फल किसी बड़े भारी दुःखको उठाये विना नहीं प्राप्त किया जा सकता। उसका जन्म-जन्मान्तरका अनुभव इस भ्रमको सत्य मान बैठा है कि जीवनरूपी तराजूमें एक तरफ जितना ही अधिक दुःखका भार लादा जाय, दूसरी ओर उतना ही अधिक सुखका बोझा ऊपर उठ आता है। इसीलिए तो, मनुष्य जब संसारमें अपनी सहज और स्वाभाविक प्रवृत्तिको अपनी इच्छासे वर्जित करके और यह समझकर निराहार घूमता फिरता है कि 'मैं तपस्या करता हूँ' तब, इस सम्बन्धमें कि उसके खानेके लिए कहींपर उससे चौगुना आहार संचित हो रहा है, न तो उसके ही मनमें तिल-भर सन्देह उठता है और न किसी औरके ही मनमें। इसीलिए, जब कोई सन्यासी निदारुण शीतमें गले तक जल-मग्न होकर और भीषण गर्मीकी भयंकर धूपमें धूनी रमाये जमीनपर सिर और ऊपर पैर करके अवस्थित रहता है तब उसके दु:ख-भोगकी कठोरता देखकर दर्शकोंके दल केवल दुःखका ही अनुभव नहीं करते, बल्कि उसपर एकबारगी मुग्ध हो जाते हैं। भविष्यमें उसे मिलनेवाले आरामके भारी और असंभव हिसाबकी खतौनी करके उनका प्रलुब्ध चित्त ईर्ष्यासे व्यस्त हो उठता है और वे कहने लगते हैं कि वह नीचे सिर और ऊपर पैर रखनेवाला व्यक्ति ही संसारमें धन्य है, मनुष्य-देह धारण करके करने योग्य कार्य वास्तवमें वही कर रहा है, हम लोग तो कुछ भी नहीं कर रहे हैं,—व्यर्थ ही जीवन गवाँ रहे हैं। इस तरह अपने आपको हजारों धिक्कार देते हुए वे मलीन मनसे घर लौट आते हैं। श्रीकान्तबाबू, सुख प्राप्त करनेके लिए दुःख स्वीकार करना चाहिए, यह बात सत्य है, किन्तु इसी-लिए, इससे उलटा, जिस तरह भी हो, बहुत-सा दु:ख भोग लेनेमें ही सुख आकर कंधोंपर आ पड़ेगा, यह स्वतःसिद्ध नहीं है। इस कालमें भी सत्य नहीं है और परकालमें भी नहीं।"

मैंने कहना शुरू किया, "किन्तु, विधवाका ब्रह्मचर्य—"

अभयाने मुझे बीचमें ही टोककर कहा, "विधवाका 'आचरण' कहिए,—उसके साथ 'ब्रह्म'का बिन्दुमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। विधवाका चाल-चलन ही ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय है, यह मैं नहीं मानती। वास्तवमें वह तो कुछ भी नहीं है। कुमारी, सधवा, विधवा,—सभी अपने अपने मार्गसे ब्रह्म-लाभ कर सकती हैं। विधवाका आचरण ही इसके लिए रिजर्व नहीं कर रक्खा गया है।"

मैंने हँसकर कहा, " बहुत ठीक, ऐसा ही सही । उसका आचरण ब्रह्मचर्य न हो न सही,—नामसे क्या आता-जाता है ? "

अभयाने बिगड़कर कहा, " नाम ही तो सब-कुछ है, श्रीकान्तबाबू , नामको छोड़कर दुनियामें और है ही क्या ? गलत नामोंके भीतरसे मनुष्यकी बुद्धिकी, विचारशीलताकी और ज्ञानकी धारा कितनी बड़ी भूलोंके बीच बहाई जा सकती है, सो क्या आप नहीं जानते ? इसी नामके भुलावेके कारण ही तो सब देश और सब काल विधवाके आचरणको सबसे श्रेष्ठ मानते आ रहे हैं । यह निरर्थक त्यागकी निष्फल महिमा है, श्रीकान्तबाबू , बिल्कुल ही व्यर्थ, बिल्कुल ही गलत । मनुष्यको इह-लोक और पर-लोक दोनोंमें पशु बना देनेवाली इससे बढ़कर जादूगरी और कोई हो नहीं सकती । "

उस समय और बहस न करके मैं चुप हो गया था । दर असल उसे बहसमें हरा देना एक तरहसे असंभव ही था । पहले पहल जब जहाजपर उससे परिचय हुआ, डाक्टर साहब केवल उसे बाहरसे ही देखकर मजाकमें बोले थे, " औरत तो बड़ी ही ' फारवर्ड ' है,—परन्तु, उस समय दोनोंमेंसे किसीने भी यह नहीं सोचा था कि, इस ' फारवर्ड ' शब्दका अर्थ कहाँका कहाँ पहुँच सकता है ! यह रमणी अपने समस्त अन्तस्तल तकको किस तरह अकुण्ठित तेजसे बाहर खींचकर सारे संसारके सामने खोलकर रख सकती है,—लोगोंके मतामतकी पर्वाह ही नहीं करती, उस समय इसके सम्बन्धमें हमारी यह धारणा नहीं थी । अभया केवल अपने मतको अच्छा प्रमाणित करनेके लिए ही वाग्वितंडा नहीं करती,—वह अपने कार्यको भी बलपूर्वक विजयी करनेके लिए बाकायदा युद्ध करती है । उसका मत कुछ हो और काम कुछ और हो, ऐसा नहीं है इसीलिए, शायद, बहुत दफे मैं उसके सामने उसकी बातका जवाब खोजे नहीं पाता था, कुछ अप्रतिभ-सा हो जाता था । परंतु, लौटकर जब अपने डेरेपर पहुँचता था तब खयाल आता था,—अरे यह तो उसका खूब करारा उत्तर था ! खैर, जो भी हो, उसके सम्बन्धमें आज भी मेरी दुविधा नहीं मिटी है । अपने आपसे मैं जितना ही प्रश्न करता कि,—इसके सिवाय अभयाके लिए और क्या गति थी, उतना ही मेरा मन मानो उसके विरुद्ध टेढ़ा होकर खड़ा हो जाता । जितना ही मैं अपने आपको समझाता कि

उसपर अश्रद्धा करनेका मुझे जरा भी हक नहीं है,—उतनी ही अव्यक्त अरुचिसे मानो मेरा अन्तर भर उठता ।

मुझे खयाल आता है कि मनकी ऐसी कुंठित अप्रसन्न अवस्थामे ही मेरे दिन बीत रहे थे, इसीलिए, न तो मै उसके समीप ही जा सकता था और न एकबारगी उसे अपने मनसे दूर ही हटा सकता था ।

ऐसे ही समय हठात् एक दिन प्लेगने शहरके बीच आकर अपना घूँघट खोल दिया और अपना काला मुँह बाहर निकाला । हायरे ! उसे समुद्र-पार रोक रखनेके लिए किये गये लक्ष कोटि जन्तर-मन्तर, और अधिकारियोकी अधिकसे अधिक निष्ठुर सावधानी, सब मुहूर्त-भरमे एकबारगी धूलमे मिल गई ! लोगोमे बेहद आतङ्क छा गया । शहरके चौदह आने लोग या तो नौकर-पेशा थे या फिर व्यापार-पेशा । इस कारण, उनको एकबारगी दूर भाग जानेका भी सुभीता नही था । वही दशा हुई जैसी किसी सब ओरसे रुद्ध कमरेके बीच आतिशबाजीकी छछूंदर छोड देनेपर होती है । भयके मारे इस महल्लेके लोग स्त्री-पुत्रोका हाथ पकडे, छोटी-मोटी गठरियाँ कंधेपर लादे, उस महल्लेको भागते थे और उस महल्लेके लोग ठीक उसी तरह इस महल्लेको भागते आते ! मुँहसे ‘ चूहा ’ शब्द निकला नही कि फिर खैर नही । वह मरा है या जीता, यह सुननेके पहले ही लोग भागना शुरू कर देते ! मालूम होता था, लोगोके प्राण मानो वृक्षके फलोकी तरह प्लेगकी हवा लगते ही रात-भरमे पककर डठलोमे झूल रहे हैं,—उनमेसे कौन कब ‘ टपसे ’ नीचे टपक पडेगा, इसका कोई निश्चय ही नहीं ।

वह दिन शनिवार था । एक साधारणसे कामके लिए सुबह ही मै बाहर चला गया था । शहरके बीचोबीच एक गलीके भीतरसे बडे रास्तेपर जानेके लिए जल्दी जल्दी पैर बढ़ाये चला जा रहा था कि देखा एक अत्यन्त जीर्ण मकानके दो-मंजिलेके बरामदेमे मनोहर चक्रवर्ती खडे हुए बुला रहे हैं ।

मैने हाथ हिलाकर कहा, “ समय नही है । ”

वे अतिशय अनुनय-सहित बोले, “ दो मिनिटके लिए एकदफे ऊपर आइए श्रीकान्तबाबू, बडी आफतमे हूँ । ”

आखिर बिल्कुल इच्छा न रहनेपर भी ऊपर जाना पडा । मै यही तो बीच-बीचमे सोचा करता हूँ कि क्या मनुष्यकी हरएक हरकत पहलेसे ही निश्चित की हुई होती है ! नहीं तो, मेरा कोई ऐसा काम भी न था और न मैने उस

गलीके भीतर इससे पहले कभी प्रवेश ही किया था; तब, आज सुबह ही मै इस ओर आकर हाजिर ही क्यो हुआ ?

नजदीक जाकर कहा, " बहुत दिनसे तो आप उस तरफ आये नहीं,—आप क्या इसी मकानमे रहते हैं ? "

वे बोले, " नही महाशय, मै बारह-तेरह दिन हुए तभी आया हूँ। एक तो महीने-भरसे ' डिसेण्ट्री ' (दस्त लगनेकी बीमारी) भुगत रहा हूँ, फिर उसपर हो गई हमारे महल्लेमे प्लेग ! क्या करूँ महाशय, उठ तक नहीं सकता हूँ, फिर भी जैसे-तैसे जल्दीसे भाग आया। "

मैंने कहा, " बहुत ठीक किया। "

वे बोले, " बहुत ठीक किया, यह कैसे कहूँ महाशय, मेरा 'कम्बाइण्ड हैण्ड' बहुत ही बदजात है। बोलता है ' नहीं रहूँगा, चला जाऊँगा। ' जरा मालेको अच्छी तरह धमका तो दीजिए। "

मुझे जरा अचरज हुआ। किन्तु, इसके पहले इस ' कम्बाइण्ड हैण्ड'नामक चीजकी व्याख्या कर देना जरूरी है। क्योंकि, जो लोग यह नही जानते कि ' हिन्दुस्तानी लोग ' पैसेके लिए जो न कर सके दुनियामे ऐसा कोई काम ही नहीं है, वे लोग यह सुनकर विस्मित होंगे कि इस अँग्रेजी शब्दका मतलब है दुबे, चौबे, तिवारी, आदि हिन्दुस्तानी ब्राह्मण, जो, यहाँपर तो किसीके चौकेके पास फटकते ही उछल पड़ते हैं, परतु, वहाँ जाकर रसोई बनाते हैं, जूठे बर्तन माँजते हैं, तम्बाकू भरते हैं और बाबूसाहबोके आफिस जाते समय उनके बूट झाड़कर साफ कर देते हैं,—फिर वे बाबू चाहे किसी भी जातिके क्यो न हो। हाँ, यह बात अवश्य है कि दो-चार रुपये महीना अधिक देनेपर ही ये त्रिवेदी, चतुर्वेदी आदि पूज्य लोग ब्राह्मण और शूद्र दोनोका काम ' कम्बाइण्ड ' तौरपर करते हैं। बेवकूफ उड़िया और बगाली ब्राह्मण आजतक भी यह कार्य करनेको राजी नही किये जा सके, किये जा सके तो सिर्फ ये ही। इसका कारण पहले ही कह चुका हूँ कि पैसा पानेपर सारे कुसस्कारोको छोड़नेमे 'हिन्दुस्तानी लोगो'को मुहूर्त-भरकी भी देर नहीं लगती। (मुर्गी पकानेके लिए चार-आठ आने महीने और अधिक देने पड़ते हैं; क्योंकि, ' मूल्यके द्वारा सब कुछ शुद्ध हो जाता है, '—शास्त्रके इस वचनार्थका यथार्थ तात्पर्य हृदयंगम

करने तथा शास्त्र-वाक्यमें अविचिलित श्रद्धा रखनेमे आजतक यदि कोई समर्थ हुए हैं तो यही 'हिन्दुस्तानी लोग,'—यह बात स्वीकार करनी ही होगी।)

किन्तु, मनोहरबाबूके इस 'कम्बाइण्ड हैण्ड'को मै किस लिए धमकी दूँ और वह भी क्यो मेरी धमकी सुनेगा, यह मैं नहीं समझ सका। और यह 'हैण्ड' भी मनोहर बाबूने हाल ही रक्खा था। इतने दिन वे अपने 'कम्बाइण्ड हैण्ड' खुद ही थे, केवल 'डिसेण्ट्री'के खातिर कुछ दिनोके लिए इसे रख लिया था। मनोहरबाबू कहने लगे, "महाशय, आप क्या कोई साधारण आदमी हैं! शहर-भरके लोग आपकी बातपर मरते-जीते हैं,—सो क्या, आप समझते हैं, मै नही जानता? अधिक नहीं एक सतर ही यदि आप लाट साहबको लिख दे तो उसे चौदह सालकी जेल हो जाय, सो क्या मैंने नही सुना? लगा तो दीजिए बच्चूको अच्छी तरह डॉट।"

बात सुनकर मैं जैसे दिग्भ्रमित-सा हो गया। जिन लाट साहबका नामतक मैंने नहीं सुना था उनको, अधिक नहीं, एक ही सतर लिख देनेमे चौदह सालके कारावासकी सम्भावना,—मेरी इतनी बडी अद्भुत शक्तिकी बात इतने बड़े सु-चतुर व्यक्तिके मुँहसे सुनकर मै क्या कहूँ और क्या करूँ, सोच ही न सका। फिर भी, उनके बारबारके आग्रह और जबर्दस्तीके मारे जब और गति नही रही तब उस 'कम्बाइण्ड हैण्ड'को डॉट बताने रसोई-घरमे घुसा। देखा कि वह अन्ध-कूपकी तरह ॲधेरा है।

वह आडमे खडा हुआ अपने मालिकके मुँहसे मेरी क्षमताकी बिरद सुन चुका था, इसलिए रुआसा होकर हाथ जोड़कर बोला, "इस घरमे 'देवता' हैं, यहाँपर मै किसी तरह भी नहीं रह सकता। तरह तरहकी 'छाया' रात-दिन घरमे घूमा करती है। बाबू यदि किसी और मकानमे जाकर रहे तो मैं सहज ही उनकी नौकरी कर सकता हूँ, किंतु, इस मकानमे तो—"

भला ऐसे अँधेरे घरमे 'छाया'का क्या अपराध! किन्तु, छाया ही नहीं, वहाँ एक बहुत बुरी सड़ाध भी, जब मैं आया था तभीसे, आ रही थी। पूछा, "यह दुर्गन्ध काहेकी है रे?"

'कम्बाइण्ड हैण्ड' बोला, "कोई चूहा ऊहा सड़ गया होगा।"

मैं चौंक पड़ा। "चूहा कैसा रे! इस घरमें चूहे मरते हैं क्या?"

उसने हाथको उलटाकर अवज्ञाके साथ बतलाया कि रोज सुबह कमसे कम पाँच-छः मरे चूहे तो वह उठाकर खुद ही बाहर गलीमे फेक दिया करता है।

मिट्टीके तेलकी डिब्बी जलाकर खोज की गई, किन्तु, सड़े हुए चूहेका पता नही लगा। फिर भी मेरा शरीर सन् सन् करने लगा और जी खोलकर उस आदमीको किसी तरह भी यह सदुपदेश न दे सका कि 'रुग्ण मालिकको अकेला छोड़कर उसे भाग जाना उचित नही है।'

सोनेके कमरेमे लौटकर देखता हूँ, मनोहरबाबू खाटपर बैठे मेरी राह देख रहे हैं। मुझे पासमे बैठाकर वे इस मकानके गुणोका बखान करने लगे,— इतने कम किरायेमे शहरके बीच इतना अच्छा मकान और कोई नहीं, ऐसा मकान-मालिक भी कोई नही और न ऐसे पड़ौसी ही सहजमे मिल सकते हैं। पासके मकानमे जो चार-पॉच मद्रासी क्रिस्तान 'मेस' चलाते हैं वे जितने ही शिष्ट और शान्त हैं उतने ही मायालु हैं। उन्होने अपना यह इरादा भी बतला दिया कि जरा कुछ चगे होते ही उस साले बाम्हनको निकाल बाहर करेंगे। फिर एकाएक बोले, "अच्छा महाशय, आप स्वप्नपर विश्वास करते हैं?"

मै बोला, "नहीं।"

वे बोले, "मै भी नही करता. किन्तु, कैसे अचरजकी बात है महाशय, कल रातको मैंने स्वप्न देखा कि मै सीढीपरसे गिर पड़ा हूँ और जागकर ही देखा, दाहिने पैरका कूल्हा सूज आया है! सच-झूठ आप मेरे शरीरपर हाथ धर-कर देखिए महाशय, तकलीफसे ज्वर तक हो आया है।"

सुनने-मात्रसे मेरा मुँह काला पड़ गया। इसके बाद कूल्हा भी देखा और शरीरपर हाथ रखकर ज्वर भी।

मिनट-भर मूढकी तरह बैठे रहनेके बाद अन्तमे बोला, "डाक्टरको अबतक आपने क्यो नही बुला भेजा, अब किसीको जल्दी भेजिए।"

वे बोले, "महाशय, यह देश!—यहॉपर डाक्टरकी फीस भी तो कम नहीं है! उसे लाये नही कि चार-पॉच रुपये यो ही चले जायेंगे! सिवाय इसके फिर दवाईके दाम! करीब दो रुपयेकी दच इस तरह और लग जायगी।"

मैंने कहा, "सो लगने दीजिए, बुलाने भेजिए।"

"कौन जायगा महाशय? तिवारी साला तो चीन्हता भी नहीं है। सिवाय इसके वह चला जायगा तो खाना कौन पकायेगा?"

"अच्छा, मै ही जाता हूँ," कहकर डाक्टरको बुलाने बाहर चल दिया।

डाक्टरने आकर और परीक्षा करके आड़मे ले जाकर पूछा, " ये आपके कौन होते हैं ? "

मैंने कहा, " कोई नहीं, " और किस तरह सुबह यहाँ आ पड़ा सो भी मैंने खोलकर कह दिया।

डाक्टरने प्रश्न किया, " इनका और भी कोई कुटुम्बी यहाँपर है क्या ? "

मैंने कहा, " सो मुझे नहीं मालूम। शायद कोई नहीं है। "

डाक्टर क्षण-भर मौन रहकर बोले, " मै एक दवा लिखकर दिये जाता हूँ; सिरपर बरफ रखनेकी भी ज़रूरत है, किन्तु, सबसे बड़ी जरूरत इस बातकी है कि इन्हें प्लेग-हास्पिटलमे पहुँचा दिया जाय। आप खुद भी इस मकानमे न ठहरिए। और देखिए, मुझे फीस देनेकी जरूरत नहीं है। "

डाक्टर चले गये। बड़े सकोचके साथ मैंने अस्पतालका प्रस्ताव किया, सुनते ही मनोहर रोने लगे! " वहाँपर जहर देकर रोगी मार डाले जाते हैं, वहाँ जाकर कोई लौट कर नहीं आता, "—इस तरह बहुत-कुछ बक गये।

दवाई लाने भेजनेके लिए तिवारीको खोजता हूँ तो देखा कि, ' कम्बाइण्ड हैण्ड ' अपना लोटा-कम्बल लेकर इस बीच न मालूम कब खिसक गया है! जान पडता है, उसने डाक्टरके साथ मेरी बातचीत किवाड़की सधिमेसे सुन ली थी। हिन्दुस्तानी और चाहे कुछ न समझे किन्तु ' पिलेग ' शब्दको खूब समझते हैं।

तब मुझे ही ओषधि लेने जाना पडा। बरफ, आईस-बैग, आदि जो कुछ आवश्यक था सब मैंने ही खरीद लाकर हाजिर कर दिया। इसके बाद रह गये मैं और वे,—वे और मै। एक दफे मैं उनके सिरपर आईस-बैग रखता था,—और एक दफे वे मेरे सिरपर रखते थे। इसी तरह उठा-धरी करते करते जब करीब दो बज गये तब उन्होंने निस्तेज होकर शय्या ग्रहण कर ली। बीच-बीचमे वे खूब होश-हवासकी भी बाते करते थे। शामके लगभग क्षण-भरके लिए सचेतनसे होकर मेरे मुँहकी ओर देखकर बोले, " श्रीकान्त बाबू, अब मै न बचूँगा। "

मै चुप हो रहा। इसके बाद बड़ी कोशिश करके कमरमेसे उन्होने चाबी निकाली और उसे मेरे हाथमे देकर कहा, " मेरे ट्रङ्कमे तीन सौ गिन्नियाँ रक्खी

हैं,—मेरी स्त्रीको भेज देना। पता मेरे बाक्समे लिखा रक्खा है जो खोजनेसे मिल जायगा।"

मुझे एकमात्र हिम्मत थी पासके 'मैस' की। वहाँवालोंकी आहट, धीमा कण्ठस्वर, मैं सुन सकता था। सन्ध्याके बाद एक दफे कुछ अधिक उठा-धरी, और गोलमाल सुन पड़ा। कुछ देर बाद ही जान पड़ा कि वे लोग दरवाजेमे ताला लगाकर कहीं जा रहे हैं। बाहर आकर देखा, यही बात है। सचमुच दरवाजेमे ताला लटक रहा है। मैंने समझा, वे लोग घूमने बाहर गये हैं, कुछ देर बाद ही लौट आवेंगे। किन्तु, फिर भी न जाने क्यो मेरा जी और भी खराब हो गया।

इधर वह रुग्ण आदमी उत्तरोत्तर जो जो चेष्टाएँ करने लगा, उनके सम्बन्धमे इतना ही कह सकता हूँ कि, वह अकेले बैठकर मजा लेने जैसी वस्तु नही थी। उधर रातके बारह बजनेको हुए, किन्तु, न तो पासके कमरेके खुलनेकी आहट ही मिली और न कोई शब्द ही सुनाई दिया। बीच-बीचमे बाहर आकर देख जाता था,—ताला उसी तरह लटक रहा है। एकाएक नजर पडी कि लकडीकी दीवालकी एक सन्धिमेंसे उस कमरेका तीव्र प्रकाश इस कमरेमे आ रहा है। कुतूहल-के वश होकर छिद्रमें ऑख लगाकर उस तीव्र प्रकाशके कारणका पता लगाया, तो उससे मेरे सर्वांगका रक्त जमकर बरफ हो गया। सामने खाटपर दो जवान आदमी पास ही पास तकिएपर सिर रक्खे सो रहे हैं और उनके सिरहाने खाटके बगलमे मोम-बत्तियोंकी एक कतार जल-जलाकर प्रायः समाप्त होनेको आ गई है। मुझे पहलेसे ही मालूम था कि रोमन कैथालिक लोग मुर्देके सिरहाने रोशनी जला देते हैं। अतएव, ऐसे हृष्टपुष्ट सबल शरीर लोगोंकी इस असमयकी नींदका जो कारण था वह सब मुहूर्तमात्रमे समझमे आ गया और मैं जान गया कि अब उन दोनोकी नींद हजार चिल्लानेपर भी नहीं टूटेगी। इधर इस कमरेमे भी हमारे मनोहर बाबू करीब दो घण्टे और छटपटानेके बाद सो गये!—चलो, जान बची।

किन्तु, मजा यह कि जिन्होने मुझे उस दिन यह बहुत-सा उपदेश दिया था कि जान-पहिचानके किसी भी आदमीकी बीमारीकी खबर पाकर उस महल्लेमे पैर भी न रखना चाहिए, उन्हींके मुर्देकी और गिन्नियोंके बाक्सकी रखवाली करनेके लिए भगवानने मुझे नियुक्त कर दिया। नियुक्त तो कर दिया, किन्तु, बाकी रात मेरी जिस तरह कटी, सो लिखकर बतलाना न तो सभव है और न

उस ओर प्रवृत्ति ही होती है। फिर भी, इसपर कोई पाठक अविश्वास न करेगा कि वह, मोटे तौरपर, भली तरह नही कटी।

दूसरे दिन 'डेथ सर्टिफिकेट' लेने, पुलिसको बुलाने, तार देने, गिन्नियोंका इन्तजाम करने और मुर्देको बिदा करनेमें तीन बज गये। खैर, मनोहर तो ठेला-गाड़ीपर चढकर शायद स्वर्गकी ओर रवाना हो गये,—रहा मैं, सो मै अपने डेरेपर लौट आया। पिछले दिन तो एकादशी की ही थी,—आज भी शाम हो गई। डेरेपर लौटनेपर जान पडा कि जैसे दाहिने कानकी जडमे सूजन आ गई है और दर्द हो रहा है। क्या जाने, सारी रात हाथमे छेड-छेड़कर मैने खुद ही दर्द पैदा कर लिया है अथवा सचमुच ही गिन्नियोंका हिसाब देने मुझे भी स्वर्ग जाना पडेगा,—एकाएक कुछ नही समझ सका। किन्तु, यह समझनेमे देर नही लगी कि बादमे चाहे जो हो फिलहाल तो होश-हवास दुरुस्त रहनेकी हालतमे अपनी सब व्यवस्था खुद ही कर रखनी होगी। क्योकि मनोहरकी तरह आईस-बैग लेकर उठा-धरी करना न तो ठीक ही मालूम देता है और न सुन्दर। निश्चय करते मुझे देर न लगी। क्योकि, पल-भरमे ही मैने देख लिया कि इतने बडे बुरे रोगका भार यदि मै किसी पुण्यात्मा साधु पुरुषके ऊपर डालने जाऊँगा तो निश्चय ही बड़ा भारी पाप होगा। किसी भले आदमीको हैरान करना कर्तव्य भी नही है,—अशास्त्रीय है! इसलिए, उसकी जरूरत नही। बल्कि, इस रंगूनके एक कोनेमे अभया नामकी जो एक महापापिष्ठा पतिता नारी रहती है,—एक दिन जिसे घृणा करके छोड़ आया हूँ, उसीके कंधेपर अपनी इस साघातिक बीमारीका गन्दा बोझा घृणाके साथ डाल देना चाहिए,—मरना हो तो वहीं मरूँ। शायद, इससे कुछ पुण्य संचय भी हो जाय। यही सोचकर मैने नौकरको गाड़ी लानेका हुक्म दे दिया।

१२

उस दिन जब मृत्युका परवाना हाथमे लेकर मै अभयाके द्वारपर जा खड़ा हुआ तब मुझे मरनेकी अपेक्षा मरनेकी लाजने ही अधिक भय दिखाया।

अभयाका मुँह फक् सफेद पड़ गया। किन्तु, उसके सफेद होठोंसे केवल यही शब्द फूटकर बाहर निकले, "तुम्हारा दायित्व मैं न लूँगी तो और कौन लेगा?

यहाँ तुम्हारी मुझसे बढ़कर और किसे गरज है ? " दोनो आँखोंमें पानी भर आया, फिर भी, मैंने कहा, " मै तो बस, चला। रास्तेका कष्ट मुझे उठाना ही होगा, उसे निवारण करनेकी शक्ति किसीमे भी नहीं है। किन्तु, जाते समय तुम्हारी इस नई घर-गिरस्तीके बीच इतनी बड़ी विपत्ति डालनेका अब किसी तरह भी मन नहीं होता। अभया, अभी गाड़ी खड़ी है, होश-हवास भी दुरुस्त हैं,—अब भी अच्छी तरह प्लेग हास्पिटल तक जा सकता हूँ। तुम केवल मुहूर्त-भरके लिए जी कड़ा करके कह दो, " अच्छा जाओ। " अभयाने कोई उत्तर दिये विना हाथ पकड़ लिया और मुझे बिछौनेमे ले जाकर सुला दिया। अब, उसने अपने आँसू पोंछे और मेरे उत्तप्त ललाटपर धीरे धीरे हाथ फेरते हुए कहा, " यदि तुमसे ' जाओ ' कह सकती, तो नये सिरेसे यह घर-गिरस्ती कायम न करती। आजसे ही मेरी नई गिरस्ती सचमुचकी गिरस्ती हुई। "

किन्तु, बहुत संभव है कि वह प्लेग नहीं था। इसीलिए, मृत्यु केवल जरा-सा परिहास करके ही चली गई। दसेक दिनमे मै उठ खड़ा हुआ। किन्तु, अभयाने फिर मुझे होटलके डेरेमें नहीं लौटने दिया।

आफिस जाऊँ या और भी कुछ दिन छुट्टी लेकर विश्राम करूँ, यह सोच ही रहा था कि एक दिन आफिसका चपरासी एक चिट्ठी दे गया। खोलकर देखा तो प्यारीकी चिट्ठी है। बर्मा आनेके बाद यही एक पत्र उसका मिला। जवाब न मिलनेपर भी मैं कभी कभी उसे पत्र लिख दिया करता था,—आते समय यही शर्त मुझसे उसने करा ली थी। पत्रके प्रारंभमें ही इसका उल्लेख करके उसने लिखा था, " मेरे मरनेकी खबर तो तुम जरूर पाओगे। जीते-जी मेरा ऐसा कोई समाचार ही नहीं हो सकता जिसे जाने बिना तुम्हारा काम न चले। लेकिन, मेरे लिए तो ऐसा नहीं है। मेरे सारे प्राण तो मानो विदेशमे ही निरन्तर पड़े रहते हैं।—यह बात इतनी अधिक सत्य है कि तुम भी इसपर विश्वास किये बगैर नहीं रह सकते। इसीलिए, उत्तर न पानेपर भी बीच-बीचमे तुम्हें चिट्ठी देकर बतलाना पड़ता है कि तुम वहाँ अच्छी तरह हो।

" मैं इस महीनेके भीतर ही बंकूका विवाह कर देना चाहती हूँ। तुम अपनी सम्मति लिखना। कुटुम्बके भरण-पोषणकी शक्ति हुए बगैर विवाह होना उचित नहीं है, तुम्हारी इस बातको मैं अस्वीकार नहीं करती। बंकूमें अभी तक वह क्षमता नहीं आई है; फिर भी, क्यों मैं इसके लिए तुम्हारी सम्मति चाहती हूँ

सो मुझे और एक बार अपनी आँखों देखे बगैर तुम नहीं समझोगे। जैसे भी बने यहाँ आ जाओ। तुम्हें मेरे सिरकी कसम है।"

पत्रके पिछले हिस्सेमें अभयाकी बात थी। अभयाने जब लौट आकर कहा था कि जिसे मैं चाहती हूँ,—प्रेम करती हूँ, उसीकी गिरस्ती बसानेके लिए मैं एक पशुका त्याग करके चली आई हूँ, और इसी विषयको लेकर सामाजिक रीति-नीतिके सम्बन्धमे स्पर्द्धाके साथ उसने बहस की थी, तब उससे मै इतना विचलित हो उठा था कि प्यारीको बहुत-सी बातें लिख डाली थीं। आज उन्हींका प्रत्युत्तर उसने दिया है—

" तुम्हारे मुँहसे यदि वे मेरा नाम सुन चुकी हों तो अनुरोध है कि तुम उनसे एक बार मिलना और कहना कि राजलक्ष्मीने तुम्हें सहस्र-कोटि नमस्कार लिखे हैं। उमरमें वे मुझसे छोटी हैं या बड़ी सो मैं नहीं जानती, जानना जरूरी भी नहीं है, वे केवल अपनी तेजस्विताके कारण ही मेरे समान सामान्य स्त्रीके द्वारा वन्दनीय हैं। आज मुझे अपने गुरुदेवके श्रीमुखकी कुछ बातें बार बार याद आती हैं। मेरे काशीके मकानमें दीक्षाकी सब तैयारियाँ हो गई हैं, गुरुदेव आसन ग्रहण करके स्तब्ध भावसे कुछ सोच रहे हैं। मै आड़मे खड़ी बहुत देरतक उनके प्रसन्न मुखकी ओर एकटक देख रही थी। एकाएक भयके मारे मेरी छातीके भीतर उथल-पुथल मच गई। उनके पैरोंके पास औंधे पड़कर मैंने रोते हुए कहा, 'बाबा, मैं मन्त्र नहीं लूँगी।' वे विस्मित होकर मेरे सिरपर अपना दाहिना हाथ रखकर बोले, 'क्यों बेटी, क्यों न लोगी?'

" मैंने कहा, 'मै महापापिष्ठा हूँ—'

" उन्होंने बीचमे ही रोककर कहा, 'ऐसा है, तब तो मन्त्र लेनेकी और भी अधिक जरूरत है बेटी।'

" रोते रोते मैंने कहा, 'लाजके मारे मैंने अपना सच्चा परिचय नहीं दिया है, देती तो इस मकानकी चौखट भी आप लाँघना नहीं चाहते।'

" गुरुदेव मुसकिराकर बोले, 'नहीं, तो भी मैं लाँघता, और दीक्षा देता। प्यारीके मकानमे भले ही न आता; किन्तु, अपनी राजलक्ष्मी बेटीके मकानमे क्यों न आऊँगा बेटी?'

"मै चौंककर स्तब्ध हो गई। कुछ देर चुप रहकर बोली, 'किन्तु, मेरी माँके गुरुने तो कहा था कि मुझे दीक्षा देनेसे पतित होना पड़ेगा,—सो बात क्या सच नही थी ?'

"गुरुदेव हँसे। बोले, 'सच थी इसीलिए तो वे दे नही सके बेटी! किन्तु, जिसे वह भय नहीं है, वह क्यो नहीं देगा ?'

"मैंने कहा, 'भय क्यो नहीं है ?'

"वे फिर हँसकर बोले, 'एक ही मकानमे जो रोगके कीटाणु एक आदमीको मार डालते हैं, वे ही कीटाणु दूसरे आदमीको स्पर्श तक नही करते,—बतला सकती हो क्यो ?'

"मैंने कहा, 'शायद स्पर्श तो करते हैं, किन्तु, जो लोग सबल हैं वे बच जाते हैं, जो दुर्बल होते हैं, वे मारे जाते हैं।'

"गुरुदेवने मेरे सिरपर पुनः अपना हाथ रखकर कहा, 'इस बातको किसी दिन भी मत भूलना बेटी। जो अपराध एक आदमीको मिट्टीमे मिला देता है, उसी अपराधमेंसे दूसरा आदमी स्वच्छन्दतासे पार हो जाता है। इसीलिए, सारे विधि-निषेध सभीको एक डोरीमे नही बाँध सकते।'

"सकोचके साथ मैंने धीरेसे पूछा, 'जो अन्याय है, जो अधर्म है, वह क्या सबल और दुर्बल दोनोके निकट समानरूपसे अन्याय-अधर्म नही है ? यदि नहीं है, तो यह क्या अविचार नही है ?'

"गुरुदेव बोले, 'नही बेटी, बाहरसे चाहे जैसा दीखे, उनका फल समान नहीं है। यदि ऐसा होता तो ससारमें सबल-दुर्बलमे कोई अधिक भेद ही नहीं रहता। जो विष पाँच वर्षके बच्चेके लिए घातक है वही विष यदि इकतीस वर्षके मनुष्यको न मार सके तो दोष किसे दोगी बेटी ? किन्तु, यदि आज तुम मेरी बात पूरी तरह न समझ सको तो, कमसे कम इतना जरूर याद रखना कि जिन लोगोके भीतर आग जल रही है, और जिनमे केवल राख ही इकट्ठी होकर रह गई है,—उनके कर्मोका वजन एक ही तराजूसे नहीं किया जा सकता। यदि किया जाय, तो गलती होगी।'

"श्रीकान्त भइया, तुम्हारी चिट्ठी पढ़कर आज मुझे अपने गुरुदेवकी वही भीतरकी आगवाली बात याद आ रही है। अभयाको नज़रोंसे देखा नहीं है फिर भी ऐसा लगता है कि,—उनके भीतर जो आग जल रही है उसकी ज्वालाका

आभास तुम्हारी चिट्ठीके भीतरसे भी जैसे मैं पा रही हूँ। उनके कर्मोंका विचार जरा सावधानीसे करना। मेरे जैसी साधारण स्त्रीके बाँटखरे लेकर उनके पाप-पुण्यका वज़न न कर बैठना।"

चिट्ठीको अभयाके हाथमे देकर कहा, "राजलक्ष्मीने तुम्हे शत-सहस्त्र नमस्कार लिखा है,—यह लो।"

अभया, जो कुछ लिखा था उसे दो-तीन बार पढ़कर और किसी तरह पत्रको मेरे बिछौनेपर डालकर, तेजीसे बाहर चली गई। दुनियाकी नजरोंमें उसका जो नारीत्व आज लाछित और अपमानित हो रहा है, उसीके ऊपर शत योजन दूरसे एक अपरिचिता नारीने सम्मानकी पुष्पाञ्जलि अर्पण की है, उसीकी अपरिसीम आनन्द-वेदनाको वह एक पुरुषकी दृष्टिसे बचाकर चटपट आड़मे ले गई।

करीब आध घण्टे बाद अभया अच्छी तरह मुँह-आँखे धोकर लौट आई और बोली, "श्रीकान्त भइया—"

मैंने रोककर कहा, "अरे यह क्या! 'भइया' कबसे हो गया?"

"आजसे ही।"

"नही नही, 'भइया' नही। तुम सब लोग मिलकर सभी ओरसे मेरा रास्ता बन्द न कर देना!"

अभयाने हँसकर कहा, "मालूम होता है, मन-ही-मन कोई मतलब गाँठ रहे हो, क्यो?"

"क्यों, क्या मै आदमी नहीं हूँ?"

अभया बोली, "बेढब आदमी दीखते हो। बेचारे रोहिणी बाबूने बीमारीके समय आसरा दिया, अब चगे होकर, जान पडता है, उन्हे यही पुरस्कार देना निश्चय किया है! किन्तु, मेरी बड़ी भूल हो गई। उस समय बीमारीका एक तार दे देती, तो आज उन्हें देख लेती।"

मैंने गर्दन हिलाकर कहा, "आश्चर्य नहीं कि वह आ जाती।"

अभया क्षण-भर स्थिर रहकर बोली, "तुम एकाध महीनेकी छुट्टी लेकर एक बार चले जाओ, श्रीकान्त भइया। मुझे जान पड़ता है, तुम्हारी उन्हें बड़ी जरूरत हो रही है।"

न जाने कैसे खुद भी मैं इस बातको समझ रहा था कि मेरी उसे बड़ी जरूरत है। दूसरे ही दिन आफिसको चिट्ठी लिखकर मैने और एक महीनेकी

छुट्टी ले ली और आगामी मेलसे यात्रा करनेके विचारसे टिकट खरीदनेके लिए आदमी भेज दिया।

जाते समय अभयाने नमस्कार करके कहा, "श्रीकान्त भइया, एक वचन दो।"

"क्या वचन दूँ बहिन?"

"पुरुष संसारकी सभी समस्याओंकी मीमांसा नहीं कर सकते। यदि कहीं अटको तो चिट्ठी लिखकर मेरी राय जरूर ले लोगे, बोलो?"

मैं, स्वीकार करके, जहाज-घाट जानेके लिए गाड़ीपर जा बैठा। अभयाने गाड़ीके दरवाजेके निकट खड़े होकर और एक दफे नमस्कार किया, बोली, "रोहिणी बाबूके द्वारा मैंने कल ही वहाँ टेलीग्राम करा दिया है। किन्तु, जहाजपर कुछ दिन अपने शरीरकी ओर जरा नज़र रखना श्रीकान्त भइया,—इसके सिवाय मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहती।"

'अच्छा' कहकर मैंने मुँह उठाकर देखा,—अभयाकी आँखोंकी दोनों पुतलियाँ पानीमें तैर रही हैं।

१३

कलकत्तेके घाटपर जहाज जा भिड़ा। देखा, जेटीके ऊपर बंकू खड़ा है। वह सीढ़ीसे चटपट ऊपर चढ आया और ज़मीनपर सिर टेक प्रणाम करके बोला, "माँ रास्तेपर गाड़ीमें राह देख रहीं हैं। आप नीचे जाइए, मैं सामान लेकर पीछे आता हूँ।"

बाहर आते ही और भी एक आदमी झुककर पैर छूकर खड़ा हो गया। मैंने कहा, "अरे रतन! कहो, अच्छे तो हो?"

रतन कुछ हँसकर बोला, "आपके आशीर्वादसे। आइए।" यह कहकर उसने रास्ता दिखाते हुए गाड़ीके समीप लाकर दरवाजा खोल दिया। राजलक्ष्मी बोली, "आइए,—और रतन, तुम लोग और एक गाड़ी करके पीछेसे आ जाना,—दो बज रहे हैं, अभी तक इन्होंने नहाया-खाया भी नहीं, हम लोग डेरेपर चलते हैं। गाड़ीवानसे गाड़ी हाँकनेको कह दे।"

मैं गाड़ीपर बैठ गया। रतनने 'जी, अच्छा' कहकर गाड़ीका दरवाजा बन्द

कर दिया और गाड़ीवानको हाँकनेके लिए इशारा कर दिया। राजलक्ष्मीने झुक-कर पद-धूलि ली और कहा, "जहाजमे कष्ट तो नहीं हुआ?"

"नहीं।"

"तबीयत बहुत खराब हो गई थी क्या?"

"तबीयत खराब तो जरूर हो गई थी, परंतु बहुत नहीं। किन्तु, तुम भी तो स्वस्थ नहीं दीख पड़तीं। घरसे कब आईं?"

"परसों। अभयाके द्वारा तुम्हारे आनेकी खबर पाते ही हम लोग घरसे चल दिये। सो आना तो था ही,—दो दिन पहले ही चले आये। यहाँपर तुम्हे कितना काम करना है, मालूम है?"

मै बोला, "कामकी बात फिर होगी,—किन्तु तुम ऐसी क्यो दिखाई दे रही हो? तुम्हें क्या हुआ था?"

राजलक्ष्मी हँस दी। इस हँसीको देखकर ही आज खयाल आया कि न जाने कितने दिनोसे यह हँसी नही देखी है, और, साथ ही साथ एक कितनी बड़ी अदम्य स्पृहाको उस समय चुपचाप दमन कर डाला, सो अन्तर्यामीके सिवाय और किसीने नही जाना। किन्तु, दीर्घश्वासको मैं उससे छिपा नहीं सका। उसने विस्मितकी तरह क्षण-भर तक मेरी तरफ ताकते रहकर फिर हँसकर पूछा, "कैसी देख पड़ती हूँ मै,—बीमार?"

एकाएक इस प्रश्नका उत्तर न दे सका।—बीमार? हाँ, कुछ बीमार-सी जान पड़ती है, किन्तु नही, यह कुछ भी नहीं है। खयाल हुआ, मानो वह कितने ही देश-विदेश पैदल चलकर, तीर्थाटन करके, इसी समय लौटकर आई है—ऐसी मुरझाई-सी, ऐसी थकी सी। अपना भार आप वहन करनेकी जैसे अब उसमे शक्ति ही नही है, प्रवृत्ति भी नहीं है,—इस समय वह केवल निश्चिन्त, निर्भय होकर आँखे मूँदकर सोनेकी जरा-सी जगह ढूँढ़ रही है। मुझे निरुत्तर देखकर बोली, "क्यों, कहते क्यो नही।"

मैंने कहा, "मत कहलवाओ।"

राजलक्ष्मी बच्चोकी तरह जोरसे सिर हिलाकर बोली, "नही, कहना ही होगा। लोग तो कहते हैं कि देखनेमे मै बिल्कुल बदसूरत हो गई हूँ। यह सच है?"

मैंने गभीर होकर कहा, "हाँ, सच है।"

राजलक्ष्मी हँस पड़ी, बोली, "तुम आदमीको इस कदर अप्रतिभ कर देते

हो कि,—अच्छा, बुरा क्या है ! अच्छा ही तो है ! सुन्दरता लेकर अब मेरा होगा क्या ! तुम्हारे साथ मेरा सुन्दर-असुन्दरका,—अच्छी बुरी दीख पड़नेका, तो सम्बन्ध है नही, जो मै इसकी चिन्तामे मर जाऊँ ! ”

मैंने कहा, “सो ठीक, चिन्तामे मरनेका कोई कारण नहीं है। एक तो लोग यह बात तुमसे कहते नहीं हैं, इसके सिवाय, यदि वे कहें भी, तो तुम विश्वास करनेवाली नही। मन-ही-मन समझती तो हो कि—”

राजलक्ष्मी गुस्सेसे बोल उठी, “तुम अन्तर्यामी जो हो कि सबके मनकी बात जानते हो ! मै कभी यह बात नही सोचती। तुम खुद ही सच सच कहो, जब वहाँ शिकार करने गये थे तब तुमने जैसा देखा था, अब भी क्या मै वैसी ही हूँ ? तबसे तो कितनी ही बदसूरत हो गई हूँ ! ”

मैने कहा, “नही, बल्कि तबसे अब अच्छी देख पड़ती हो। ”

राजलक्ष्मीने पल-भरमे खिड़कीके बाहर मुँह फेरकर अपना हँसता हुआ चेहरा शायद मेरी मुग्ध दृष्टिकी ओरसे हटा लिया और कोई उत्तर न देकर चुपी साध ली। कुछ देर बाद परिहासके सब निशान अपने चेहरेपरसे दूर करके उसने अपना चेहरा फिर इस ओर फेर लिया और पूछा, “तुम्हे क्या बुखार आ गया था ? उस देशका हवा-पानी क्या माफिक नहीं आता ? ”

मैंने कहा, “न आवे तो उपाय ही क्या है ! जैसे बने वैसे माफिक ही कर लेना पड़ता है। ” मै मन ही-मन निश्चित रूपसे जानता था कि राजलक्ष्मी इस बातका क्या उत्तर देगी। क्योंकि, जिस देशका जल-वायु आज तक अपना नहीं हो सका, किसी सुदूर भविष्यमे भी उसे अपने अनुकूल कर लेनेकी आशाके भरोसे वह किसी तरह भी मेरे लौट जानेपर सम्मत नही होगी, बल्कि घोर आपत्ति उठाकर रुकावट डालेगी,—यही मेरा ख्याल था। किन्तु, ऐसा नहीं हुआ। वह क्षण-भर मौन रहकर कोमल स्वरसे बोली, “सो तो सच है। इसके सिवाय, वहाँपर और भी तो बहुत-से बंगाली रहते हैं। उन्हे जब माफिक आता है, तब तुम्हे ही क्यो न माफिक आवेगा ?—क्या कहते हो ? ”

मेरे स्वास्थ्यके सम्बन्धमे उसकी इस प्रकारकी उद्वेगहीनताने मुझे चोट पहुँचाई। इसीलिए, केवल एक इशारे-भरसे ‘हाँ’ कहकर चुप हो गया। एक बात मै बार बार सोचता था कि अपनी प्लेगकी कथा किस रूपमे राजलक्ष्मीके कानोंपर डालूँ। सुदूर प्रवासमें जिस समय मेरे दिन जीवन-मृत्युके सन्धि-स्थलमे

बीत रहे थे उस समयके हजारो तरहके दुःखोका वर्णन सुनते सुनते उसके हृदयके भीतर कैसा तूफान उठेगा !—दोनो नेत्रोको प्लावित करके कैसी ऑसुओकी धारा बह निकलेगी !—इसे कह नहीं सकता कि कितने रसों और कितने रगोमे भरकर मै कल्पनाके नेत्रोसे दिन प्रतिदिन देखता रहा हूँ । इस समय इसी कल्पनाने मुझे सबसे अधिक लज्जित किया, सोचा,—छिः छिः, सौभाग्यसे कोई किसीके मनकी बात नही जानता । नहीं तो,—परतु जाने दो उस बातको । मन-ही-मन कहा, और चाहे जो करूँ, अपनी उस मरने जीनेकी कहानी उससे न कहूँगा ।

बहूबाजारके डेरेपर आ पहुँचा । राजलक्ष्मीने हाथसे दिखाकर कहा, " यह ज़ीना है,—तुम्हारा कमरा तीसरे मंजिलपर है । जरा जाकर सो रहो, मै आती हूँ । " यह कहकर वह अपने रसोई-घरकी ओर चल दी ।

कमरेमे घुसते ही देखा कि कमरा मेरे ही लिए सजाया गया है । प्यारी पटनेके मकानसे मेरी किताबे, मेरा हुक्का तक, लाना नही भूली है । सूर्यास्तका एक कीमती चित्र मुझे बहुत पसद था । वहाँपर उसने उसे अपने कमरेमेसे निकालकर मेरे सोनेके कमरेमे टॉग दिया था । उस चित्र तकको वह कलकत्ते अपने साथ लाई है और ठीक उसी तरह उसने उसे दीवालपर टॉग दिया है । मेरे लिखने-पढ़नेका साज-सरजाम, मेरे कपड़े, मेरी लाल मखमली चट्टियॉ, ठीक उसी तरह यत्नपूर्वक सजाकर रक्खी हुई हैं । वहॉ एक आराम-कुर्सी मै सदा ही व्यवहारमे लाता था । उसे शायद लाना सभव नही हुआ, इसीलिए, उसी तरहकी एक नई कुर्सी खिड़कीके समीप रक्खी हुई है । धीरे धीरे जाकर मै उसीके ऊपर ऑखे मूँदकर लेट गया । जान पड़ा, जैसे भाटेकी नदीमे ज्वारके जलोच्छ्वासका शब्द मुहानेके निकट फिर सुनाई दे रहा है ।

नहा-खाकर थकावटके मारे दिन-दोपहरको ही सो गया । नींद टूटते ही देखा, पश्चिमके ओरकी खिड़कीसे शामकी धूप मेरे पैरोके समीप आकर पड़ रही है और प्यारी एक हाथके बल मेरे मुँहपर झुकी हुई दूसरे हाथसे ऑचलके छोरसे सिर कंधे और छातीपरका पसीना पोछ रही है । बोली, " पसीनेसे तकिये और बिछौने भीज गये हैं । पश्चिमकी ओर खुला होनेसे यह कमरा बड़ा गरम है । कल दूसरे मंजिलपर अपने पासके कमरेमे ही तुम्हारे बिस्तर कर दूँगी । "

यह कहकर मेरी छातीके बिल्कुल निकट बैठकर पंखा उठाकर हवा करने लगी। रतनने कमरेमे आकर पूछा, "माँ, बाबूके लिए चाह ले आऊँ ?"

"हाँ, ले आ। और, बकू यदि मकानमे हो तो उसे जरा भेज देना।" मैंने फिर अपनी आँखे बंद कर लीं। थोड़ी ही देर बाद बाहरसे चट्टियोकी आवाज सुन पड़ी। प्यारीने पुकारकर कहा, "कौन, बकू ? जरा इधर तो आ।"

उसके पैरोंके शब्दसे मालूम हुआ कि उसने अतिशय सकुचित भावसे अन्दर प्रवेश किया है। प्यारी उसी तरह पखा झलते झलते बोली, "जरा कागज-पेन्सिल लेकर बैठ जा। क्या क्या लाना है, उसकी एक फेहरिस्त बनाकर दरबानके साथ जरा बाजार जा बेटा, घरमे कुछ है नही।"

मैंने देखा, यह एक बिल्कुल नया वाकया है। बीमारीकी बात अलहदा, पर उसे छोड़कर इसके पहले किसी दिन मेरे बिछौनेके इतने समीप बैठकर उसने हवा तक नहीं की थी। किन्तु यह भी, न हो तो, मै एक दिन सभव मान सकता। किन्तु, यह जो उसने रच-मात्र भी दुबिधा नहीं की, सब नौकर-चाकरोंके,—यहाँ तक कि बकूके, सामने भी दर्पके साथ अपने आपको प्रकट कर दिया,—इसके अपूर्व सौन्दर्यने मुझे अभिभूत कर डाला ! मुझे उस दिनकी बात याद आ गई जिस दिन पटनेके मकानसे मुझे इसलिए विदा लेनी पड़ी थी कि यह बंकू ही कहीं कुछ और ख्याल न करने लगे ! उस दिनके साथ आजके आचरणमे कितना अन्तर है !

चीज-बस्तकी फेहरिस्त बनाकर बकू चला गया। रतन भी चाह-तमाखू देकर नीचे चला गया। प्यारी कुछ देर चुपचाप मेरे मुँहकी ओर निहारती रही, फिर एकाएक बोली, "तुमसे मैं एक बात पूछती हूँ,—अच्छा, रोहिणी बाबू और अभयामेसे किसका प्यार अधिक है, बता सकते हो ?"

मैंने हँसकर कहा, "जो तुमपर पूरी तरह हावी हो गई है, उस अभयाका ही निश्चयसे अधिक प्यार है।"

राजलक्ष्मी भी हँस पड़ी, बोली, "यह तुमने कैसे जाना कि वह मुझपर हावी हो गई है ?"

मैंने कहा, "चाहे जैसे जाना हो, पर बात सच है या नही, बताओ ?"

राजलक्ष्मी क्षण-भर स्थिर रहकर बोली, "जो जैसे भी हो, किन्तु, अधिक प्यार तो रोहिणी बाबू ही करते हैं। दर असल वे इतना प्यार करते थे, इसीलिए

उन्होंने इतना बड़ा दुःख अपने सिरपर उठा लिया । अन्यथा, यह उनका कोई अवश्य कर्तव्य तो था नहीं । उनकी तुलनामें अभयाको कितना-सा स्वार्थ-त्याग करना पड़ा, बताओ भला ?"

उसके सवालको सुनकर मै सचमुच ही विस्मित हो गया । मैं बोला, "बल्कि, मै तो ठीक इससे उलटा देखता हूँ । और उस हिसाबसे जो कुछ कठिन दुःख-भोग और त्याग है, वह सब अभयाको ही करना पड़ा है । रोहिणीबाबू चाहे जो करे, समाजकी नजरोंमें आखिर वे मर्द हैं,—तुम इस अभ्रान्त सत्यको क्यों भूली जाती हो ?"

राजलक्ष्मीने सिर हिलाकर कहा, "मैं कुछ भी नहीं भूलती । उन्हे मर्द बतलाकर सहजमे बच निकलनेके जिस मौकेकी ओर तुम इशारा कर रहे हो वह अत्यन्त क्षुद्र और अधम पुरुषोंके लिए है,—रोहिणी बाबू सरीखे मनुष्यके लिए नही । शौक पूरा हो गया, अथवा हालमे पानी न पाया, कि छोड़-छाड़कर फेककर भाग सकते हैं और घर लौटकर फिर गण्य-मान्य भद्र मनुष्योकी तरह जीवन-यात्रा कर सकते हैं,—यही न कहते हो ? कर सकते हैं,—ठीक है; किन्तु, क्या सभी कर सकते हैं ? तुम कर सकते हो ? तब, जो नहीं कर सकता उसके बोझके वजनको तो जरा सोच देखो । उसे अपना निन्दित जीवन मकानके निराले कोनेमे काट डालनेका भी सुभीता नहीं । उसे तो संसारके बीचमें द्वन्द्व-युद्धमे उतर आना होगा, अविचार और अपयशका बोझा चुपचाप अकेले ही वहन करना पड़ेगा । अपने एकान्त स्नेहकी पात्रीको,—भावी सन्तानकी जननीको, समाजके सारे अपमानो और अकल्याणोंसे बचाकर रखना होगा,—तुम क्या इसे मामूली कष्ट समझते हो ? और, सबसे बढ़कर दुःख यह है कि जो अनायास ही इस दुःखके बोझेको उतारकर खिसक सकता है, सर्वनाशी विकट प्रलोभनसे अपने आपको रात-दिन बचाकर चलनेका गुरु भार भी उसको ही लिये घूमना पड़ता है । दुःखके तराजूमें इस आत्मोत्सर्गके साथ समतौलता बनाये रखनेके लिए जिस प्रेमकी जरूरत है, उसे यदि पुरुष अपने भीतरसे बाहर न प्रकट कर सके, तो किसी भी स्त्रीके लिए यह सम्भव नहीं है कि वह उसे पूरा कर सके ।"

इस बातको इस पहलूसे, इस तरह, कभी सोचकर नहीं देखा था । रोहिणीका वह सीधा-सादा गुमसुम भाव और, उसके बाद, अभया जब अपने पतिके घर

चली गई तब उसके उसी शान्त मुखमंडलके ऊपर अपरिसीम वेदनाको चुपचाप सहन करनेका जो चित्र मैंने अपनी आँखो देखा था, वही पल-भरमे ज्योका त्यो, प्रत्येक रेखासहित, मेरे मनमे खिंच गया। किन्तु, मुँहसे मैंने कहा,—"चिट्ठीमे तो तुमने सिर्फ अभयाके लिए ही पुष्पाञ्जलि भेजी थी।"

राजलक्ष्मी बोली, "उनका जो प्राप्य है वह आज भी उन्हें देती हूँ। क्यो कि, मेरा विश्वास है कि जो भी पाप या अपराध था उसने उनके आन्तरिक तेजसे जलकर उन्हे शुद्ध-निर्मल कर दिया है। यदि ऐसा न होता, तो आज वे बिल्कुल साधारण स्त्रियोंके समान ही तुच्छ-हीन हो जाती।"

"हीन क्यो ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "खूब! पति-परित्यागके पापकी भी कोई सीमा है ? उस पापको ध्वस करने योग्य आग उनमे न होती तो आज वे—"

मैंने कहा, "आगकी बात जाने दो। किन्तु, उनका पति कैसा नष्ट है, सो तो एक दफे सोच देखो।"

राजलक्ष्मी बोली, "पुरुष जाति चिरकालसे ही उच्छृंखल रही है,—चिरकाल-से ही कुछ कुछ अत्याचारी भी रही है; किन्तु, इसीलिए तो स्त्रीके पक्षमे भाग खड़े होनेकी युक्ति काम नहीं दे सकती। स्त्री-जातिको सहन करना ही होगा; नहीं तो, ससार चल नही सकता।"

बात सुनकर मेरे सारे विचार गड़बड़ा गये। मन-ही-मन बोला, यह स्त्रियोका वही सनातन दासत्वका सस्कार है! कुछ असहिष्णु होकर पूछा, "तो फिर, अभी तक तुम 'आग आग' क्या बक रही थीं ?"

राजलक्ष्मीने हँसकर कहा, "क्या बक रही थी, सुनोगे ? आज ही दो घण्टे पहले पटनेके ठिकानेपर लिखी हुई अभयाकी चिट्ठी मिली है। आग क्या है, जानते हो ? उस दिन 'प्लेग' कहकर उनकी तुरतकी जमाई गिरस्तीके द्वारपर जब तुम जा खड़े हुए तब जिस वस्तुने तुम्हे निर्भयतासे, बिना किसी सोच-विचारके, भीतर बुला लिया, मै उसीको कहती हूँ उनकी 'आग'। उस समय उन्हें अपने सुखका ख्याल नहीं था। कर्तव्य समझकर जो तेज मनुष्यको सामनेकी ओर ही ढकेलता है, दुविधासे पीछे नहीं हटने देता, अब तक मै उसीको 'आग आग' कह रही थी। आगका एक नाम 'सर्वभुक्' है, सो क्या तुम नहीं जानते ? वह सुख और दुःख,—दोनोंको खींच लेती है, उसे किसी

तरहका भेद-विचार नहीं होता। उन्होने एक और बात क्या लिखी है, जानते हो? वे रोहिणी बाबूको सार्थक कर देना चाहती हैं। क्यो कि, उनका विश्वास है कि केवल अपने जीवनकी सार्थकताके भीतरसे ही ससारमें दूसरेके जीवनमे सार्थकता पहुँचाई जा सकती है, और, व्यर्थतासे सिर्फ अकेला एक ही जीवन व्यर्थ नही होता,—वह अपने साथ और भी अनेक जीवनोको जुदी जुदी दिशाओमे व्यर्थ करके व्यर्थ हो जाता है। बिलकुल सच है न?" इतना कहकर वह एका-एक एक दीर्घ श्वास छोड़कर चुप हो रही। इसके बाद हम दोनो ही बहुत देर तक मौन रहे। जान पड़ता है, कहनेको कुछ न होनेके कारण ही अब वह मेरे सिरके रूखे बालोंको अपनी अँगुलियोंसे व्यर्थ ही इधर-उधर विपर्यस्त करने लगी। उसका यह आचरण भी बिल्कुल नया था! सहसा बोली. "वे खूब शिक्षिता हैं न? नहीं तो, इतनी तेजस्विता नहीं होती।"

मैंने कहा, "हॉ, दर असल वे एक शिक्षिता रमणी हैं!"

राजलक्ष्मी बोली, "किन्तु, एक बात उन्होने मुझसे छिपाई है। मॉ होनेके लोभको वे चिट्ठीके अन्दर बारबार दबा गई हैं।"

मैंने कहा, "क्या उन्हे यह लोभ है? कहाँ, मैने तो नहीं सुना?"

राजलक्ष्मी बोल उठी, "जाओ,—यह लोभ भला किस स्त्रीको नही है! किन्तु, क्या इसीलिए उसे मर्दोंके सामने कहते फिरना चाहिए? तुम तो खूब हो!"

मैने कहा, "तो फिर तुम्हे भी है, क्यो?"

"जाओ!" कहकर वह अकस्मात् लज्जासे लाल हो गई और दूसरे ही क्षण अपने आरक्त मुखको छिपानेके लिए बिछौनेपर झुक गई। उसी समय अस्तोन्मुख सूर्यकी किरणोंने पश्चिमकी खुली हुई खिड़कीसे प्रवेश किया था। वह आरक्त आभा उसके मेघके समान काले केशोंपर विचित्र शोभाके साथ बिखर गई। और, कानोके हीरेके दोनों लटकनोमे नाना वर्णोंकी द्युति झिलमिल झिल-मिल करती हुई खेलने लगी। क्षण-भर बाद ही अपने आपको सम्हालकर और सीधे बैठकर उसने कहा, "क्यो, क्या मेरे लड़के-बच्चे नहीं हैं जो लोभ होगा? लड़कियोंका ब्याह कर चुकी हूँ, लड़केको ब्याहने आई हूँ,—एक-दो नाती-नातिनी होजायँगे, उनको लेकर सुख-स्वच्छन्दतासे रहूँगी,—मुझे अभाव किस बातका है, कहो?"

मैं चुप हो रहा। इस बातको लेकर बहस करनेकी प्रवृत्ति नहीं हुई।

रातको राजलक्ष्मीने कहा, "बकूके ब्याहके लिए तो अब भी दस-बारह दिनकी देर है; चलो काशी चलें, तुम्हें अपने गुरुजीको दिखा लाऊँ।"

मैंने हँसकर कहा, "मैं क्या कोई नुमाइशकी चीज हूँ?"

राजलक्ष्मीने कहा, "यह सोचनेका भार तो जो लोग देखते हैं उनपर है, तुमपर नहीं।"

मैंने कहा, "ऐसा ही सही, परन्तु, इससे मुझे ही क्या लाभ और तुम्हारे गुरुदेवको भी क्या लाभ होगा?"

राजलक्ष्मीने गभीर होकर कहा, "लाभ तुम लोगोंको नहीं है, किन्तु, मुझे है। न हो, तो केवल मेरे लिए ही चले चलो।"

इसलिए मैं राजी हो गया।

आगे बहुत समय तक लग्न न थी, इसलिए उस समय जैसे चारों ओरसे विवाहोंकी बाढ आ गई थी। जब-तब बैंडका कार्नेट और बैग-पाइपकी बाँसुरी विविध तरहके वाद्य-भाण्डोंके सहयोगसे मनुष्यको पागल बना डालनेकी तजवीज कर रही थी। हम लोगोंकी स्टेशन-यात्राके समय भी इस तरहकी कुछ उन्मत्त आवाजोंकी झड़ प्रचण्ड वेगसे बह गई। वेगके कुछ कम हो जानेपर राजलक्ष्मीने सहसा प्रश्न किया, "अच्छा, तुम्हारे मतसे यदि सभी लोग चलने लगें, तो फिर, गरीबोंका विवाह ही न हो और घर-गिरिस्ती भी न बने। तब फिर सृष्टि कैसे रहे?"

उसकी असाधारण गभीरता देखकर मैं हँस पड़ा। बोला, "सृष्टि-रक्षाके लिए चिन्ता करनेकी तुम्हें जरा भी जरूरत नहीं। क्योंकि, हमारी तरह चलनेवाले लोग दुनियामें अधिक नहीं हैं। कमसे कम अपने इस देशमें तो नहीं हैं,—यह कहा जा सकता है।"

राजलक्ष्मीने कहा, "न रहना ही भला है। केवल बड़े आदमी ही मनुष्य हैं? और गरीब क्या बेचारे संसारमें कहींसे बह आये हैं? बाल-बच्चोंको लेकर घर-गिरस्ती करनेकी साध क्या उन्हें नहीं होती?" मैंने कहा—"पर इसका क्या यह अर्थ है कि साध होती है इसलिए उसे प्रश्रय देना ही चाहिए?"

राजलक्ष्मीने पूछा, "क्यों नहीं, मुझे समझा दो।"

कुछ देर चुप रहकर मैंने कहा, "सभी दरिद्रोंके सम्बन्धमें मेरा यह मत नहीं

है। मेरा मत केवल दरिद्र भले आदमियोके सम्बन्धमे है, और मेरा विश्वास है कि तुम उसका कारण भी जानती हो।"

राजलक्ष्मीने जिदके स्वरमें कहा, "तुम्हारा यह मत गलत है।"

मुझपर भी मानो जिद सवार हो गई, मैंने कह डाला, "हज़ार ग़लत होनेपर भी तुम्हारे मुँहसे यह बात शोभा नही देती। बकूके बापने सिर्फ बहत्तर रुपयोंके लोभसे तुम दोनों बहनोंको ब्याह लिया था,—वह दिन अभी इतना पुराना नही हुआ है कि तुम भूल गई होओ। खैर मनाओ कि उस आदमीका पेशा ही यह था। नहीं तो, कल्पना करो, यदि वह तुम्हे अपने घर ले जाता, तुम्हारे दो-चार बाल-बच्चे होते,—तब एक दफे सोच देखो कि तुम्हारी क्या दशा होती?"

राजलक्ष्मीकी आँखोमे जैसे झगड़नेका भाव घना हो उठा; बोली, "भगवान् जिन्हे भेजते हैं, उनकी देख-भाल भी वे ही करते हैं। तुम नास्तिक हो, इसीलिए विश्वास नहीं करते।"

मैने भी जवाब दिया, "मै नास्तिक होऊँ, कुछ भी होऊँ, परन्तु आस्तिक लोगोको भगवान्‌की जरूरत क्या केवल इसीलिए है?—इन सब बच्चोको आदमी बनानेके लिए?"

राजलक्ष्मीने क्रुद्ध कण्ठसे कहा, "भले ही वे न बनावें। किन्तु, मै तुम्हारी तरह डरपोक नहीं हूँ। मैं द्वार-द्वार भिक्षा माँगकर भी उन्हे आदमी बनाती। और जो भी हो, नाचने-गानेवाली बननेकी अपेक्षा वह मेरे हकमें बहुत अच्छा होता।"

मैंने फिर और तर्क नहीं किया। आलोचना बिल्कुल ही व्यक्तिगत और अप्रिय ढगमे उतर आई थी, इसलिए, मैं खिड़कीके बाहर रास्तेकी ओर देखता हुआ बैठ रहा।

हमारी गाड़ी धीरे धीरे सरकारी और गैर-सरकारी आफिस-क्वार्टर्स छोड़कर बहुत दूर आ पड़ी। शनिवारका दिन था, दो बजेके बाद अधिकांश दफ्तरोके क्लर्क छुट्टी पाकर अढाईकी ट्रेन पकड़नेके लिए तेजीसे चले आ रहे हैं। प्रायः सभीके हाथोमे कुछ न कुछ खाद्य-सामग्री है। किसीके हाथमे एक दो बड़ी बड़ी मछलियाँ, किसीके रूमालमे बकरेका मास, किसीके हाथमें गँवई-गाँवमे नहीं मिलनेवाली हरी तरकारियाँ और फल। सात दिनोके बाद घर पहुँचकर उत्सुक बाल-बच्चोंके मुँहपर जरा-सी आनन्दकी हँसी देखनेके लिए करीब करीब

सभी अपने अपने सामर्थ्यके अनुसार थोड़ी-बहुत मिठाई चादरके छोरमे बॉधकर भागे जा रहे हैं। प्रत्येकके मुँहपर आनन्द और ट्रेन पकड़नेकी उत्कण्ठा एक साथ इस तरह परिस्फुटित हो उठी है कि राजलक्ष्मीने मेरा हाथ खींचकर अत्यन्त कुतूहलके साथ पूछा, " हॉ जी, ये सब लोग इस तरह स्टेशनकी ओर क्यो भाग रहे हैं? आज क्या है?"

मैने घूमकर कहा, " आज शनिवार है। ये सब दफ्तरोके क्लर्क हैं, रविवार-की छुट्टीमे घर जा रहे हैं।"

राजलक्ष्मीने गर्दन हिलाकर कहा, " हॉ, यही मालूम होता है। और देखो, सब एक-न-एक खानेकी चीज़ लिये जाते हैं। गवँई-गॉवमे तो यह सब मिलता नही, इसीलिए, मालूम होता है, बाल-बच्चोको हाथमे देनेके लिए खरीद लिये जाते हैं, क्यो न?"

" मैने कहा, " हाँ।"

उसकी कल्पना तेजीसे दौड़ने लगी। इसीलिए, उसने उसी क्षण कहा "आः, लड़के-लड़कियोमे आज कितना उत्साह होगा! कोलाहल मचायेगे, गलेसे लिपटकर बापकी गोदमे चढनेकी चेष्टा करेगे, मॉको खबर दने रसोई-घरमे दौड़ जायॅगे, घर-घरमे आज मानो एक काण्ड-सा मच जायगा। क्यो न?" कहते कहते उसका सारा मुँह उज्ज्वल हो उठा।

मैने स्वीकार करते हुए कहा, " खूब सभव है।"

राजलक्ष्मीने गाड़ीकी खिड़कीमेसे और भी कुछ देर उनकी तरफ निहारते रहकर एकाएक एक गहरी निःश्वास छोड़ दी और कहा, " हॉजी, इनकी तनखा कितनी होगी?"

मैने कहा, " क्लर्कोंकी तनख्वाह और कितनी होती है,—यही बीस पच्चीस तीस रुपये।"

राजलक्ष्मीने कहा—किन्तु, घरपर तो इनक मा हैं, भाई-बहिन हैं, स्त्री है, लड़के-बच्चे हैं!"

मैंने इतना और जोड़ दिया, " दो-एक विधवा बहिनें हैं; शादी-ब्याह, क्रिया-कर्म, लोक-व्यवहार, भलमसी है; कलकत्तेका भोजन-खर्च है, लगातार रोगोका खर्च है,—बगाली क्लर्कके जीवनका सब कुछ इन्हीं तीस रुपयोपर निर्भर रहता है।"

राजलक्ष्मीकी मानो साँस ही अटकने लगी। वह बहुत ही व्याकुल होकर बोल उठी "तुम नहीं जानते। इन लोगोंके घर जमीन-जायदाद भी है, निश्चयसे है।"

उसका मुँह देखकर निराश करते हुए मुझे वेदना हुई, फिर भी, मैंने कहा, "मै इन लोगोकी घर-गिरस्तीका इतिहास खूब घनिष्ठतासे जानता हूँ। मैं निश्चयपूर्वक जानता हूँ कि इनमेंसे चौदह आने लोगोंके पास कुछ नहीं है। नौकरी चली जाय तो या तो भिक्षावृत्ति करनी होगी या फिर पूरे परिवारके साथ उपवास करना होगा। इन लोगोके लड़के-लड़कियोकी कहानी सुनोगी?"

राजलक्ष्मी अकस्मात् दोनो हाथ उठाकर चिल्ला उठी, "नहीं नहीं, नही सुनूँगी,—मै नहीं सुनना चाहती।"

यह बात मै उसकी आँखोकी ओर निहारते ही जान गया कि उसने प्राणपणसे आँसुओंको रोक रक्खा है। इसीलिए मैंने और कुछ न कहकर फिर रास्तेकी ओर मुँह मोड लिया। बहुत देरतक उसकी कोई आहट नहीं मिली। इतनी देर, शायद, अपने आपसे वकालत करके और अन्तमे अपने कुतूहलके निकट ही पराजय मानकर उसने मेरे कोटका खूँट पकड़कर खीचा और पलटकर देखते ही करुण कण्ठसे कहा, "अच्छा तो, कहो उनके लड़के-लड़कियोकी कहानी। किन्तु, तुम्हारे पैरो पडती हूँ, झूठ-मूठ बढाकर मत कहना। दुहाई है तुम्हारी!"

उसकी मिन्नत करनेकी भाव-भङ्गी देखकर हँसी छूटी, किन्तु हँसा नहीं। बल्कि, कुछ अतिरिक्त गभीरतासे बोला, "बढाकर कहना तो दूर, तुम्हारे पूँछनेपर भी मै नही सुनाता यदि तुमने अभी कुछ ही पहले अपने सम्बन्धमे भीख माँगकर बच्चोको आदमी बनानेकी बात न कही होती। भगवान् जिन्हे भेजते हैं उनकी सुव्यवस्थाका भार भी वे लेते हैं,—यह बात अवश्य है। इसे अस्वीकार करूँ तो शायद नास्तिक कहकर फिर भला-बुरा कहोगी, किन्तु, सन्तानकी जवाबदारी बापके ऊपर कितनी है और भगवान्के ऊपर कितनी है, इन दो समस्याओकी मीमासा तुम खुद ही करो। मैं जो जानता हूँ केवल वही कहूँगा,—है न ठीक?"

यह देखकर कि वह चुपचाप मेरी ओर जिज्ञासु-मुखसे निहार रही है मैंने कहा, "बच्चा पैदा होनेपर उसे कुछ दिन छातीका दूध पिलाकर जिलाये रखनेका भार, मै समझता हूँ, उसकी माँके ऊपर ही है। भगवान्के ऊपर अचला भक्ति है,

उनकी दयापर भी मुझे अन्ध विश्वास है, किन्तु, फिर भी, माँके बदले इस भारको खुद अपने ऊपर लेनेका उपाय उनके पास है कि नहीं,—"

राजलक्ष्मी नाराज होकर हँस पड़ी और बोली, "देखो चतुराई रहने दो,— यह मैं भी जानती हूँ।"

"जानती हो! जाने दो, तब तो एक जटिल समस्याकी मीमासा हो गई। किन्तु, तीस रुपयेके घरकी जननीके दूधका स्रोत सूख जानेमें देर क्यो नही लगती, यह जानना हो तो किसी तीस रुपये मासिकके घरकी जच्चाके आहारके समय उपस्थित रहना आवश्यक होगा किन्तु, तुमसे जब यह नही हो सकता तब इस विषयमें न हो तो मेरी ही बात मान लो।"

राजलक्ष्मी मलीन मुख किये चुपचाप मेरी ओर ताकती रही।

मै बोला, "देहातमें गो दुग्धका बिल्कुल अभाव है, यह बात भी तुम्हें मान लेनी होगी।"

राजलक्ष्मीने चटसे कहा, "सो तो मै खुद भी जानती हूँ। घरमे गाय हो तब तो ठीक, नहीं तो, आजकल सिर पटककर मर जानेपर भी किसी गाँवमे एक बूँद दूध पाना कठिन है। ढोर ही नहीं हैं, तब दूध कहाँसे हो!'

मैंने कहा, "खैर, और भी एक समस्याका समाधान हो गया। तब फिर, बच्चोंके भागमें रहा खालिस स्वदेशी ताल-तलैयोंका जल और विदेशी डब्बोंका खालिस बार्ली (जौ) का चूरा। फिर भी अभागियोंके भाग्यमे अक्सर उनका स्वाभाविक खाद्य,—थोड़ा बहुत माताका दूध, जुट जाता है, किन्तु, वह सौभाग्य भी इन सब घरोमे अधिक दिन टिकनेका नियम नही। चारेक महीनेके भीतर ही और एक नूतन आगन्तुक अपने अविर्भावका नोटिस देकर अपने भाईके दूधका हक एकदम बन्द कर देता है। यह शायद तुम—"

राजलक्ष्मी लज्जाके मारे लाल होकर बोल उठी, "हाँ हाँ, जानती हूँ, जानती हूँ। मुझे व्याख्या करके समझानेकी जरूरत नहीं। तुम इसके बादकी बात कहो।"

मैंने कहा, "इसके बाद धर दबाते हैं बच्चेको पेटका दर्द और स्वदेशी मलेरिया बुखार। तब बापका कर्तव्य होता है विदेशी कुनैन और बार्लीका चूरा जुटाना, और माँके सिरपर पड़ता है,—जैसा कि मैंने पहले कहा, प्रसूति-गृहमें पुनः भर्ती होनेके बीचके समयकी फुरसतमें इन सबको खालिस देशी जलमें घोलकर

उसे पिलाना। इसके बाद यथासमय सूतिका-गृहका झगड़ा मिटनेपर नवजात शिशुको गोदमें लेकर बाहर आना और पहले बच्चेके लिए कुछ दिन तक रोना। "

राजलक्ष्मीने नीले पड़कर कहा " रोना क्यों ? "

मैंने कहा, " अरे, यह तो माताका स्वभाव है; और ऐसा स्वभाव जो क्लर्कके घरमें भी अन्यथा नहीं हो सकता जब कि भगवान् दायित्वसे मुक्त करनेके लिए उस पहले बच्चेको अपने श्रीचरणोंमें खींच लेते हैं। "

" हायरे ! "

इतनी देर बाहरकी ओर ताकते रहकर ही बातें कर रहा था, अकस्मात् नजर घुमाकर देखा कि उसकी बड़ी बड़ी आँखें अश्रु-जलमें तैर रही हैं। मुझे अत्यन्त दुःख मालूम हुआ। सोचा, इस बेचारीको व्यर्थ दुःख देनेसे क्या लाभ ? अधिकांश धनियोंके समान, जगत्के इस विराट् दुःखकी बाजू यदि इसके लिए भी अगोचर बनी रहती, तो क्या हर्ज था ! भयंकर दरिद्रतासे पीडित बङ्गालके क्षुद्र नौकर-पेशा गृहस्थ परिवार केवल अन्नके अभावसे ही, मलेरिया हैजा आदिके बहाने, दिनपर दिन शून्य होते जा रहे हैं,—यह बात अन्य बहुत-से बड़े आदमियोंकी तरह, न होता, यह भी न जानती। इससे क्या ऐसी कोई बड़ी भारी हानि हो जाती ! "

ठीक ऐसे ही समय राजलक्ष्मी आँखें पोंछते पोंछते अवरुद्ध कण्ठसे बोल उठी, " भले ही क्लर्क हों, फिर भी वे तुमसे कई दर्जे अच्छे हैं। तुम तो पत्थर हो ! तुम्हें स्वयं कोई दुःख नहीं है, इसीलिए इन लोगोंके दुःख-कष्ट इस तरह आह्लादके साथ वर्णन कर रहे हो। किन्तु, मेरा तो हृदय फटा जाता है। "

यह कहकर वह आँचलसे बारबार आँखें पोंछने लगी। इसका मैंने कोई प्रतिवाद नहीं किया। क्यों कि, इससे कोई लाभ न होता। बल्कि नम्रताके साथ कहा, "इन लोगोंके सुखका हिस्सा भी तो मेरे भाग्यमें नहीं है। घर पहुँचनेकी इनकी उत्सुकता भी तो एक सोचने-देखनेकी चीज़ है। "

राजलक्ष्मीका मुँह हँसी और आँसुओंसे एक साथ दीप्त हो उठा। वह बोली, " मैं भी तो यही कहती हूँ। आज पिता आ रहे हैं, इसलिए सारे बाल-बच्चे रास्ता देख रहे हैं। उन्हें कष्ट किस बातका है ? उन लोगोंकी तनखा शायद कम हो, किन्तु वैसी बाबूगीरी भी तो नहीं है। किन्तु, फिर भी क्या पचीस-तीस

रुपया !—इतना कम ? कभी नहीं। कमसे कम सौ डेढ़-सौ रुपये तो होंगे, मैं निश्चयसे कहती हूँ।"

मैंने कहा, "हो भी सकता है। मैं शायद ठीक ठीक नहीं जानता।"

उत्साह पाकर राजलक्ष्मीका लोभ बढ गया। अतिशय क्षुद्र क्लर्कके लिए भी डेढ सौ रुपया महीना उसे नही जँचा। बोली, "क्या तुम समझते हो कि केवल उसी मासिकपर ही उनका सारा दारो-मदार है? ऊपरसे भी तो कितना ही पा जाते हैं।"

मैंने कहा, "ऊपरसे? प्याला?"

अब उसने कुछ नहीं कहा। वह मुँह भारी करके रास्तेकी ओर देखते हुए बैठी रही। कुछ देर बाद बाहरकी ओर दृष्टि रक्खे हुए ही उसने कहा, "तुम्हे जितना ही देखती हूँ उतना ही तुम्हारे ऊपरसे मेरा मन हटता जाता है। तुम जानते हो कि तुम्हे छोड़कर मेरी और कोई गति नही है, इसीलिए तुम मुझे इस कदर छेदते हो।"

इतने दिनो बाद, आज शायद पहले ही पहल मैंने उसके दोनो हाथ जोरसे अपने हाथोमे खीच लिये और उसके मुँहकी ओर देखकर मानो कुछ कहना भी चाहा. किन्तु, इतनेमें ही गाड़ी स्टेशनके समीप आकर खडी हो गई। एक स्वतत्र डिब्बा रिजर्व कर लिया गया था, फिर भी, बकू कुछ सामान लेकर दो पहरके पहले ही आ गया था। कोचबाक्सपर रतनको देखते ही वह दौड आया। मै हाथ छोडकर सीधा बैठ गया। जो बात मुँहपर आ गई थी, वह चुपचाप अन्तरमे जाकर छिप गई।

अढाई बजेकी लोकल ट्रेन छूटनेहीको थी। हमारी ट्रेन उसके बाद जाती थी। इसी समय एक प्रौढ अवस्थाका दरिद्र भला आदमी एक हाथमे तरह तरहकी हरी सरकारियोंकी पोटली और दूसरे हाथमे डण्डीपर बैठा हुआ एक मिट्टीका पक्षी लिये केवल प्लेटफार्मपर लक्ष्य रक्खे, और सब दिशाओके ज्ञानसे शून्य होकर, दौडता हुआ राजलक्ष्मीके ऊपर आ पड़ा। मिट्टीका खिलौना नीचे गिरकर चूर चूर हो गया! वह हाय हाय करके शायद उसे बटोरने जा रहा था कि पॉडजीने एक हुकार छोड़कर एक छलागमे उसकी गर्दन धर दबाई और बकू छडी उठाकर 'अन्धे' आदि कहकर मारनेको तैयार हो गया! मैं कुछ दूरीपर अन्यमनस्क-सा खड़ा था,—घबड़ाकर रंगभूमिपर आ गया। वह बेचारा भय और शर्मके मारे बार बार कहने लगा," देख नहीं पाया माँ, मुझसे बड़ा कुसूर हो गया—"

मैंने उसे चटपट छुड़ा दिया और कहा, "जो होना था सो हो गया, आप शीघ्र जाइए, आपकी गाड़ी छूट रही है।"

उस बेचारेने फिर भी अपने खिलौनेके टुकड़े इकट्ठा करनेके लिए कुछ देर इधर-उधर किया और अन्तमें दौड़ लगाई। किन्तु अधिक दूर नहीं जाना पड़ा, गाड़ी चल दी। तब लौटकर फिर उसने एक दफे क्षमा माँगी और उन टूटे टुकड़ोंको बटोरनेमें ही प्रवृत्त हो गया। यह देखकर मैंने जरा हँसकर कहा, "इससे अब क्या होगा?"

उसने कहा, "कुछ नहीं महाशय। लड़की बीमार है, पिछले सोमवारको घरसे आते समय उसने कह दिया था, 'मेरे लिए एक खिलौना खरीद लाना।' खरीदने गया तो बच्चूने गरज समझकर दाम हाँके-'दो आने,'—एक पैसा भी कम नहीं। खैर वही सही। राम राम करके किसी तरह पूरे आठ पैसे फेंककर ले लिया। किन्तु देखिए दुर्भाग्यकी बात कि ऐन मौकेपर फूट गया, रोगी लड़कीके हाथमें न दे सका। बिटिया रोकर कहेगी, 'बाबा, लाये नहीं!' कुछ भी हो, टुकड़े ही ले जाऊँ, दिखाकर कहूँगा, 'बेटी, इस महीनेकी तनख्वा पानेपर पहले तेरा खिलौना खरीदूँगा, तब और काम करूँगा।"

इतना कहकर सारे टुकड़े बटोरकर और चादरके छोरमें बाँधकर कहने लगा, 'आपकी स्त्रीको शायद बहुत चोट लग गई है, मैंने देखा नहीं,—नुकसानका नुकसान हुआ और गाड़ी भी नहीं मिली। मिल जाती तो रोगी बिटियाको आध घण्टे पहले पहुँचकर देख लेता।" कहते कहते वह फिर प्लेटफार्मकी ओर चल दिया। बंकू, पांडेजीको लेकर किसी कामसे कहीं अन्यत्र चला गया। मैंने एकाएक पीछेकी ओर घूमकर देखा, सावनकी धारकी तरह राजलक्ष्मीकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं। व्यस्त होकर निकट जाकर पूछा, "ज्यादा चोट आगई है क्या? कहाँ लगी है?"

राजलक्ष्मीने आँचलसे आँखें पोंछकर कहा, "हाँ, बहुत चोट लगी है,—परन्तु लगी है ऐसी जगह कि तुम जैसे पत्थर न उसे देख सकते हैं और न समझ सकते हैं!"

१४

श्रीमान् बंकूको चूँकि बाध्य होकर हमारे लिए एक स्वतन्त्र डब्बा रिजर्व करना पड़ा था, इस लिए जब मैं उससे इस बातका पता लगा रहा था तब राजलक्ष्मी कान लगाकर सुन रही थी। इस समय उसके जरा अन्यत्र जाते ही राजलक्ष्मीने

बिल्कुल ही गले पड़कर मुझे सुना दिया कि अपने लिए फिजूल खर्च करना वह जितना ही नापसन्द करती है उतनी ही उसके भाग्यसे ये सब विडम्बनाये उपस्थित हो जाती हैं। वह बोली "सेकण्ड क्लास फर्स्ट क्लासमें जानेसे ही उन लोगोकी यदि तृप्ति होती हो तो ठीक है, फिर भी तो मेरे लिए औरतोका डब्बा था! रेलवे कम्पनीको फिजूल ही इतने अधिक रुपये क्यो दिये जायँ?"

बकूकी कैफियतके साथ उसकी माँकी इस मितव्यय-निष्ठाका कोई विशेष सामञ्जस्य मैं नहीं देख पाया। किन्तु, यह बात स्त्रियोंसे कहनेसे व्यर्थका कलह होता है। अतएव, चुपचाप मैं केवल सुनता रहा। कुछ बोला नही।

प्लेटफार्मकी एक बेञ्चपर बैठकर पूर्वोक्त सज्जन ट्रेनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सामनेसे जाते हुए मैंने पूछा, "आप कहाँ जावेंगे?"

वे बोले, "बर्दवान।"

कुछ आगे जाते ही राजलक्ष्मीने मुझसे धीरेसे कहा, "तो फिर वे अनायास ही अपने डब्बेमें चल सकते हैं, न? किराया तो देना न होगा,—फिर क्यो नही उन्हे बुला लेते!"

मैंने कहा, "टिकिट तो निश्चयसे खरीद लिया गया है,—कियायेक पैसे नहीं बचेंगे।"

राजलक्ष्मी बोली, "भले ही खरीद लिया हो,—भीड़के कष्टसे तो बच जायँगे।"

मैंने कहा, "उन्हे अभ्यास है, वे भीडकी तकलीफकी परवा नही करते।"

राजलक्ष्मीने तब जिद करके कहा, "नही नहीं, तुम उनसे कहो। हम लोग तीन आदमी बातचीत करते हुए जायँगे, इतना रास्ता मजेसे कट जायगा।"

मैंने समझ लिया कि इस समय उसे अपनी भूल महसूस हो रही है। बकू और अपने नौकर-चाकरोंकी नज़रमे मेरे साथ अकेली अलहदा डब्बेमे बैठनेकी खटकको वह किसी तरह कुछ हलका कर लेना चाहती है। फिर भी, इसीको ही और भी आँखोंमें उँगली डालकर देखनेके अभिप्रायसे मैंने लापर्वाहीके भावसे कहा, "जरूरत क्या है एक अनावश्यक आदमीको डब्बेमें बुलानेकी? तुम जितनी चाहो मेरे साथ बातें कर लेना,—मजेसे समय कट जायगा।"

राजलक्ष्मीने मुझपर एक तीक्ष्ण कटाक्ष निक्षेप करके कहा, "सो मैं जानती हूँ। मुझे छकानेका इतना बड़ा मौका क्या तुम छोड़ सकते हो?"

इतना कहकर वह चुप हो रही। किन्तु ट्रेनके स्टेशनपर आते ही मैंने जाकर कहा, " आप क्यों न हमारे ही डब्बेमें बैठ जायँ। हम दोको छोड़कर उसमे और कोई नहीं है। भीड़की तकलीफसे आप बच जायँगे।"

कहनेकी जरूरत नहीं, उन्हे राजी करनेमे कोई तकलीफ नहीं उठाना पड़ी। अनुरोध करने-भरकी देर थी कि वे अपनी पोटली लेकर हमारे डब्बेमें आ बैठे।

ट्रेन दो-चार स्टेशने ही पार कर पाई थी कि राजलक्ष्मीने उनके साथ खूब बातचीत करना शुरू कर दिया और कुछ और स्टेशनोको पार करते करते तो उनके घरकी खबरे, मुहल्लेकी खबरे, यहाँतक कि आसपासके गाँवोंतककी खबरे कुरेद कुरेदकर जान लीं।

राजलक्ष्मीके गुरुदेव काशीमे अपने नाती-नातिनोंके साथ रहते हैं, उनके लिए वह कलकत्तेसे अनेक चीजे लिये जा रही थी। बर्दवानके नजदीक आते ही ट्रंक खोलकर उसने उनमेसे चुनकर एक सब्ज रगकी रेशमकी साड़ी बाहर निकाली और कहा, " सरलाको उसके खिलौनेके बदले यह साड़ी दे देना।"

वे सज्जन पहले तो अवाक् हो रहे, बादमें सलज्ज भावसे जल्दीसे बाले, " नहीं नहीं बेटी, सरलाको मै अबकी दफे खिलौना खरीद दूँगा,—आप साड़ी रहने दे, इसके सिवाय, यह तो बहुत बेशकीमती कपड़ा है बेटी!"

राजलक्ष्मीने कपड़ेको उनके पास रखते हुए कहा, " बेशकीमती नही है। और कीमत कुछ भी हो, इसे उसके हाथमे देकर कहिएगा कि तुम्हारी मौसीने उसके अच्छे होनेपर पहिननेके लिए दिया है।"

सज्जनकी ऑखे छलछला आई। आध घण्टेकी बातचीतमे ही एक अपरिचित आदमीकी पीडिता कन्याको एक मूल्यवान् वस्तुका उपहार देना, उन्होने शायद अपने जीवनमे और कभी नही देखा था। कहा, " आशीर्वाद दीजिए कि वह अच्छी हो जाय, किन्तु, गरीबके घर इतने कीमती कपड़ेका वह क्या करेगी बेटी? आप उसे उठाकर रख लीजिए।" इतना कहकर उन्होंने मेरी आरे भी एक दफे देखा। मैंने कहा, " जब उसकी मौसी पहरनेके लिए दे रही है तब आपका ले जाना ही उचित है।" फिर हँसकर कहा, " सरलाका भाग्य अच्छा है, हम लोगोकी भी कोई मौसी-औसी होती तो बड़ा सुभीता होता! अबकी बार महाशय, आपकी लड़की, आप देखेंगे कि, चटपट अच्छी हो जायगी।"

उस समय उस पुरुषके समस्त चेहरेसे कृतज्ञता मानो उछल पड़ने लगी। और आपत्ति न करके उन्होंने उस वस्त्रको ग्रहण कर लिया। अब दोनो जनोंमें फिर बातचीत होने लगी। गृहस्थाश्रमकी बाते, समाजकी बातें, सुख-दुखकी बातें, और न जाने क्या क्या। मै सिर्फ खिड़कीके बाहर ताकता हुआ स्तब्ध होकर बैठा रहा और जो प्रश्न अपने आपसे बहुत बार पूछ चुका था वही इस छोटी-सी घटना-के सूत्रके सहारे फिर मेरे मनमे उठ खड़ा हुआ कि इस यात्राका अन्त कहाँ है?

एक दस-बारह रुपये मूल्यका वस्त्र दान कर देना राजलक्ष्मीके लिए न कठिन बात थी और न नई। उसके दास-दासी शायद इस बातका कभी ख्याल भी नही करते। किन्तु मेरी चिन्ता दूसरी ही थी। यह दी हुई चीज दानके हिसाब-से उसके लिए न कुछ थी,—यह मै जानता था। किन्तु, मै सोच रहा था कि उसके हृदयकी धारा जिस ओर लक्ष्य करके अपने आपको निःशेष करनेके लिए उद्दाम गतिसे दौड़ी चली जा रही है,—उसका अवसान कहाँ होगा और किस तरह?

समस्त रमणियोके अन्तरमे 'नारी' वास करती है या नहीं, यह जोरसे कहना अत्यन्त दुःसाहसका काम है। किन्तु, नारीकी चरम सार्थकता मातृत्वमे है, यह बात शायद खूब गला फाड़ करके प्रचारित की जा सकती है।

राजलक्ष्मीको मैंने पहिचान लिया था। यह मैंने विशेष ध्यानपूर्वक देखा था कि उसमेंकी प्यारी बाई अपने अपरिणत यौवनके समस्त दुर्दम्य मनस्तापोके साथ प्रति-मूहूर्त मर रही थी। आज उस नामका उच्चारण करनेसे भी वह मानो लज्जाके मारे मिट्टीमे मिल जाती है। मेरे लिए समस्या यही हो गई।

सर्वस्व लगाकर संसारका उपभोग करनेका वह उत्तप्त आवेग राजलक्ष्मीमें अब नहीं है, आज वह शान्त, स्थिर है। उसकी कामना-वासना आज उसीके मध्यमे इस तरह गोता लगा गई है कि बाहरसे एकाएक सन्देह होता है कि वह है भी या नहीं। उसीने इस सामान्य घटनाको उपलक्ष्य करके मुझे फिर स्मरण दिला दिया कि आज उसके परिणत यौवनके सुगभीर तल-देशसे जो मातृत्व सहसा जाग उठा है, तुरत ही जागे हुए कुम्भकर्णके समान उसकी विराट् क्षुधाके लिए आहार कहाँ मिलेगा? उसकी निजकी सन्तान होनेपर जो बात सहज और स्वाभाविक हो सकती, उसीके अभावमे समस्या इस तरह एकान्त जटिल हो उठी है।

उस दिन पटनेमें उसके जिस मातृरूपको देखकर मैं मुग्ध और अभिभूत हो गया था, आज उसी मूर्तिका स्मरण करके अत्यन्त व्यथाके साथ मैं केवल यही सोचने लगा कि इतनी बड़ी आगको केवल फूँक मारकर नहीं बुझाया जा सकता। इसीलिए, आज पराये लड़केको पुत्र कल्पित करनेके खिलवाड़से राजलक्ष्मीके हृदयकी तृष्णा किसी तरह भी नहीं मिट रही है। इसीलिए, आज एकमात्र बंकू ही उसके लिए पर्याप्त नहीं है, आज दुनियामें जहाँ जितने भी लड़के हैं उन सबका सुख-दुःख भी उसके हृदयको आलोड़ित कर रहा है।

बर्दवानमें वे महाशय उतर गये। राजलक्ष्मी बहुत देर चुपचाप बैठी रही। मैंने खिड़कीकी ओरसे दृष्टि हटाकर पूछा, "यह रोना किसके लिए हुआ? सरलाके लिए, या उसकी माँके लिए?"

राजलक्ष्मीने मुँह उठाकर कहा, "मालूम होता है, तुम इतनी देर तक हम लोगोंकी बातचीत सुन रहे थे।"

मैंने कहा, "यों ही अनायास। स्वयं बात न करनेपर भी बाहरसे बहुत-सी बातें मनुष्यके कानोंमें आ घुसती हैं। संसारमें भगवान्‌ने कम बोलनेवालोंके लिए इस दण्डकी सृष्टि कर रक्खी है। इससे बचनेकी कोई युक्ति नहीं। खैर, जाने दो, किन्तु आँखोंका पानी किसके लिए झरा था सो नहीं सुन पाया?"

राजलक्ष्मीने कहा, "मेरी आँखोंका पानी किसके लिए झरता है, यह जाननेसे तुम्हें कोई लाभ नहीं।"

मैंने कहा, "लाभकी आशा नहीं करता,—केवल नुकसान बचाकर ही चला जा सके तो काफी है। सरला अथवा उसकी माँके लिए जितनी इच्छा हो आँसू बहाओ, मुझे कोई आपत्ति नहीं,—किन्तु, उसके बापके लिए बहाना मैं पसन्द नहीं करता।"

राजलक्ष्मी केवल एक 'हूँ' करके खिड़कीके बाहर झाँकने लगी।

सोचा था कि यह दिल्लगी निष्फल नहीं जायगी, अनेक रुँधे हुए झरनोंके द्वार खोल देगी। किन्तु, सो तो हुआ नहीं, हुआ यह कि अबतक वह इस ओर देख रही थी सो दिल्लगी सुनकर उस ओरको मुँह फेरकर बैठ गई।

किन्तु, बहुत देरसे मौन था,—बातचीत करनेके लिए भीतर ही भीतर एक आवेग उपस्थित हो गया था। इसीलिए, अधिक देर तक चुप न रह सका और बोला, "बर्दवानसे कुछ खानेको मोल ले लिया होता!"

राजलक्ष्मीने कोई जवाब नहीं दिया। वह उसी तरह चुप बनी रही।

मैं बोला, " दूसरेके दुःखमें रो-रोकर नद बहा दिया, और घरके दुःखपर कान ही नहीं देतीं ! यह विलायतसे लौटे हुओंकी विद्या कहाँ सीख ली ? "

राजलक्ष्मीने इस दफे धीरेसे कहा, " देखती हूँ कि विलायतसे लौटे हुओंपर तुम्हारी भारी भक्ति है ! "

मैंने कहा, " हाँ, वे लोग भक्तिके पात्र जो हैं। "

" क्यों, उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? "

" अभी तक तो कुछ नहीं बिगाड़ा; किन्तु, बादमें न कहीं कुछ बिगाड़ दे, इस डरसे पहलेसे ही भक्ति करता हूँ। "

राजलक्ष्मीने क्षण-भर चुप रहकर कहा, " यह तुम लोगोंका अन्याय है, तुम लोगोंने उन्हें अपने दलसे, जातिसे, समाजसे,—सब ओरसे बहिष्कृत कर दिया है। फिर भी, यदि वे लोग तुम्हारे लिए थोड़ा-सा भी कुछ करते हैं, तो उतनेही-के लिए तुम्हें उनका कृतज्ञ होना चाहिए। "

मैंने कहा, " हम लोग बहुत ज़्यादा कृतज्ञ होते, यदि वे उस क्रोधके कारण पूरे पूरे मुसलमान या क्रिस्तान हो जाते ! उन लोगोंमें जो अपनेको 'ब्राह्म' कहते हैं वे ब्राह्म-समाजको नष्ट करते हैं, जो हिन्दू समझते हैं वे हिन्दू समाजको हैरान करते हैं। यदि वे पहले यह ठीक करके कि स्वयं कौन हैं दूसरोंके लिए रोने बैठते तो उससे उनका खुदका कल्याण होता और जिनके लिए रोते हैं उनका भी शायद कुछ उपकार हो जाता। "

राजलक्ष्मी बोली, " किन्तु, मुझे तो ऐसा नहीं जान पड़ता। "

मैंने कहा, " नहीं जान पड़ता तो कोई विशेष हानि नहीं। किन्तु, *जिसके लिए इस समय अटका हुआ हूँ वह अन्य बात है।*—कहाँ, उसका तो कोई जवाब ही नहीं दिया ? "

इस दफे राजलक्ष्मीने हँसकर कहा, ' अजी, उसके लिए अटकना नहीं पड़ेगा। पहले तुम्हारी भूख तो पक जाय, उसके बाद विचार किया जायगा। "

मैंने कहा, "तब विचार क्या होगा, जिस-किसी स्टेशनसे जो कुछ मिलेगा वही निगलनेको दे दोगी !—किन्तु, सो नहीं होगा, मैं कहे रखता हूँ। "

मेरा उत्तर सुनकर वह मेरे मुँहकी ओर कुछ देर चुपचाप देखती रही और फिर कुछ हँसकर बोली, " सो मैं कर सकती हूँ,—तुम्हें विश्वास होता है ? "

मैंने कहा, " खूब ! इतना-सा भी विश्वास तुमपर नहीं होगा ? "

"तो ठीक है !" कहकर वह फिर अपनी खिड़कीसे बाहर झाँकती हुई चुपचाप बैठी रही । "

अगले स्टेशनपर राजलक्ष्मीने रतनको बुलाकर खानेके लिए जगह करा दी और उसे हुक्का लानेका हुक्म देकर थालीमें समस्त खाद्य-सामग्री सजाकर सामने रख दी । देखा, इस विषयमें कहीं बिन्दु-भर भी भूल-चूक नहीं हुई है,—मुझे जो कुछ अच्छा लगता है वह सब चुन-चुनकर सग्रह करके लाया गया है ।

बेञ्चपर रतनने बिस्तर कर दिये । इतमीनानके साथ भोजन समाप्त करके गुड़गुड़ीकी नली मुँहमे डालकर आरामसे आँखें मूँदनेकी तैयारी कर रहा था कि राजलक्ष्मी बोली, " खानेकी चीजें उठा ले जा रतन, इसमेंसे जो भावे सो खा लेना,—और तेरे डब्बेमें यदि और भी कोई खावे तो दे देना । "

किन्तु, रतनको अत्यन्त लज्जित और संकुचित लक्ष्य करके मैंने कुछ अचरजके साथ पूछा, " कहाँ, तुमने तो नहीं खाया ? "

राजलक्ष्मी बोली, " नहीं मुझे भूख नहीं है । जा न रतन, खड़ा क्यो हो रहा ? गाडी चल देगी जो !"

रतन लज्जाके मारे मानो गड गया । "मुझसे बड़ी भूल हो गई बाबू, मुसलमान कुलीसे खाना छू गया है । कितना ही कहता हूँ,—माँ, स्टेशनसे कुछ खरीद लाने दो, किन्तु किसी तरह मानती ही नहीं । " इतना कहकर उसने मेरे मुँहपर अपनी कातर-दृष्टि डाली जैसे मेरी ही अनुमति चाह रहा हो ।

किन्तु मै कुछ कहूँ, इसके पहले ही राजलक्ष्मीने उसे धमकाकर कहा " तू जायगा नहीं, खड़ा खड़ा तर्क करेगा ? "

रतन फिर कुछ न बोला और भोजनके बर्तन हाथमें लेकर बाहर चला गया । ट्रेनक चलते ही राजलक्ष्मी मेरे सिरहाने आ बैठी । सिरके बालोमे धीरे धीरे अंगुलियाँ चलाते चलाते बोली, " अच्छा देखो—"

बीचमे ही टोककर बोला, " देखूँगा फिर कभी । किन्तु—"

उसने भी मुझे उसी घड़ी टोककर कहा, " तुम्हे ' किन्तु ' से शुरू करके लेक्चर न देना होगा, मैं सब समझ गई । मैं मुसलमानसे घृणा नहीं करती; उसके छू लेनेसे भोजन नष्ट हो जाता है, सो भी नहीं मानती । यदि ऐसा होता तो तुम्हें अपने हाथोंसे भोजन न परोसती । "

" किन्तु, तुमने खुद क्यों नहीं खाया ? "

" स्त्रियोंको नहीं खाना चाहिए । "

" क्यों ? "

" क्यों और क्या ? स्त्रियोंको खानेकी मनाई है । "

" किन्तु, पुरुषोंके लिए मनाई नहीं है ? "

राजलक्ष्मीने मेरा सिर हिलाकर कहा, "नहीं, मर्दोंके लिए ये बँधे हुए आईन-कानून किस लिए ? वे जो इच्छा हो खावें, जो इच्छा हो पहिनें, जैसे भी हो सुखसे रहें,—हम लोग आचारका पालन करती जावें, बस यही बहुत है । हम तो सैकड़ों कष्ट सह सकती हैं, किन्तु क्या तुम लोग सह सकते हो ? यही देखो न, शाम होते-न-होते ही भूखके मारे आँखोंके आगे अँधेरा देखने लगे थे ?"

मैंने कहा, " सो हो सकता है, किन्तु, हम कष्ट नहीं सहन कर सकते, इसमें हम लोगोंके लिए भी तो कोई गौरवकी बात नहीं है ? "

राजलक्ष्मीने सिर हिलाकर कहा, " नहीं, इसमें तुम्हारा जरा भी अगौरव नहीं है । तुम लोग हम लोगोंकी तरह दासीकी जाति नहीं हो जो कष्ट सहन करने जाओ ! लज्जाकी बात तो हमारे लिए है यदि हम कष्ट न सहन कर सकें । "

मैंने कहा, " यह न्याय-शास्त्र तुम्हें सिखाया किसने ? काशीके गुरुजीने ? "

राजलक्ष्मी मेरे मुँहके अत्यन्त निकट झुककर क्षण-भर स्थिर हो रही, फिर मुस्कराकर बोली, " मुझे जो कुछ शिक्षा मिली है, सब तुम्हारे ही समीप,—तुमसे बढ़कर गुरू मेरा और कोई नहीं । "

मैंने कहा, " तब तो फिर, गुरुसे तुमने ठीक उलटी बात सीख रक्खी है । मैंने किसी दिन नहीं कहा कि तुम लोग दासीकी जाति हो । बल्कि, मैं तो यही बात चिरकालसे मानता हूँ कि तुम दासी नहीं हो । तुम किसी तरह भी हम लोगोंकी अपेक्षा तिल-भर भी छोटी नहीं हो । "

राजलक्ष्मीकी आँखें छलछला आईं, बोली, " सो मैं जानती हूँ । और जानती हूँ इसीलिए तो यह बात तुम्हारे समीप सीख पाई हूँ । तुम्हारी तरह यदि सभी पुरुष यही बात सोच सकते, तो फिर पृथिवी-भरकी समस्त स्त्रियोंके मुँहसे यही बात सुन पड़ती । कौन बड़ा है और कौन छोटा, यह समस्या ही कभी न उठती । "

" अर्थात्, यह सत्य बिना किसी विचारके सभी मान लेते ? "

राजलक्ष्मी बोली, " हाँ । "

तब मैंने हँसकर कहा, " सौभाग्यसे पृथिवी-भरकी स्त्रियाँ तुम्हारे साथ एकमत नहीं हैं, यही खैरियत है। किन्तु, अपनी जातिको इतना हीन समझते तुम्हें लाज नहीं आती ? "

मेरे उपहासपर राजलक्ष्मीने ध्यान दिया या नहीं, इसमे सन्देह है; वह बहुत ही सहज भावसे बोली, " किन्तु, इसमें तो हीनताकी कोई बात नहीं है। "

मैंने कहा, " सो ठीक है, हम लोग मालिक हैं और तुम दासी, यह सस्कार इस देशकी स्त्रियोके मनमे इस तरह बद्धमूल हो गया है कि इसकी हीनता भी तुम्हारी नजरमें नहीं आती । जान पड़ता है कि इसी पापसे पृथिवीके सारे देशोकी स्त्रियोंकी अपेक्षा तुम सचमुच ही आज छोटी हो गई हो । "

राजलक्ष्मी एकाएक सख्त होकर बैठ गई और दोनो नेत्रोंको प्रदीप्त करके बोली, " नहीं, इस कारण नहीं । तुम्हारे देशकी स्त्रियाँ अपने आपको छोटा-समझनेके कारण छोटी नहीं हो गई हैं। तुम्ही लोगोने उन्हे छोटा समझकर छोटा बना दिया है, और तुम खुद भी छोटे हो गये हो । यही सच है । "

यह बात मुझे अकस्मात् कुछ नई-सी मालूम हुई । इसमे जो कुछ गूढ अर्थ छिपा हुआ था वह धीरे धीरे सुस्पष्ट-सा होने लगा । सचमुच ही इसमे बहुत-सा सत्य छिपा हुआ है जो अब तक मुझे दृष्टिगोचर नहीं हुआ था ।

राजलक्ष्मी बोली, " तुमने तो उस भद्र पुरुषके सम्बन्धमे मजाक किया था; किन्तु, उसकी बात सुनकर मेरी आँखे कितनी खुल गई हैं, सो तो तुम नही जानते ।'

" नही जानता " यह स्वीकार करते ही वह कहने लगी, " नहीं जानते, इसका कारण है । किसी भी वस्तुको जाननेके लिए जब तक मनुष्यके हृदयके भीतरसे एक तरहकी व्याकुलता नहीं उठती तब तक सब-कुछ उसकी नजरमे धुँधला ही बना रहता है । इतने दिन तुम्हारे मुँहसे सुनकर सोचा करती थी कि सचमुच ही यदि हमारे देशके लोगोका दुःख इतना अधिक है, सचमुच ही यदि हमारा समाज इतना अधिक अन्धा है, तो उसमें मनुष्य जीता ही क्यों कर है,—उसकी मानकर ही क्यो चलता है ? "

मैं चुपचाप सुन रहा हूँ, यह देखकर वह आहिस्ते आहिस्ते कहने लगी, " और तुम भी क्यों कर समझोगे ? कभी इन लोगोंके बीच रहे नही, कभी इन

लोगोंके सुख-दुःख भोगे नहीं; इसीलिए, बाहर ही बाहर बाहरके समाजके साथ तुलना करके समझते हो, कि इन लोगोंके कष्टोंकी शायद कोई सीमा ही नहीं। धनी जमीन्दार पुलाव खाया करता है। वह अपनी किसी दरिद्र प्रजाको बासी भात खाते देखकर सोचता है, कि ‘ इसके दुःखकी कोई सीमा नहीं है, ’— जिस तरह वह भूलता है उसी तरह तुम भी भूलते हो। ”

मैंने कहा, “ तुम्हारा तर्क यद्यपि न्याय-शास्त्रके नियमानुसार नहीं चल रहा है, फिर भी पूछता हूँ कि तुमने कैसे जाना कि मुझ देशके सम्बन्धमें इससे अधिक ज्ञान नहीं है ?”

राजलक्ष्मीने कहा, “ हो ही कैसे सकता है ? तुम्हारी तरह स्वार्थी दुनियामें कोई और भी है क्या ? जो केवल अपने ही आरामके लिए भागता फिरता है, वह घरकी खबर जानेगा ही कहाँसे ? तुम लोगोंकी तरहके लोग ही तो समाजकी अधिक निन्दा करते फिरते हैं,—जो समाजसे कोई सम्बन्ध ही नहीं रखते, उसकी ओरसे उपेक्षित रहते हैं। तुम लोग न तो अच्छी तरह पराये समाजको ही जानते हो और न अच्छी तरह अपने ही समाजको। ”

मैंने कहा, “ इसके बाद ? ”

राजलक्ष्मी बोली, “इसके बाद बाहर रहकर बाहरी सामाजिक व्यवस्था देखकर तुम लोग सोचमें मरे जाते हो कि, हमारी स्त्रियाँ मकानमें कैद रहकर दिन-रात काम किया करती हैं, इसलिए उनके समान दुःखी, उनके समान पीड़ित, उनके समान हीन, शायद और किसी देशकी स्त्रियाँ नहीं हैं। किन्तु, कुछ दिन हमारी चिन्ता छोड़कर केवल अपनी ही चिन्ता कर देखो, अपनेको कुछ ऊँचा उठानेकी चेष्टा करो।—यदि कहीं कुछ सचमुचका दोष होगा, तो वह केवल उसी समय नजर आयेगा,—उससे पहले नहीं। ”

“ इसके बाद। ”

राजलक्ष्मीने क्रुद्ध होकर कहा, “ तुम मुझसे मज़ाक़ कर रहे हो,— यह मैं जानती हूँ। किन्तु, मैं मज़ाककी बात नहीं कह रही हूँ। घरकी मालकिन सब लोगोंसे खराब खाती-पीती है, कभी कभी तो नौकरोंकी अपेक्षा भी। बहुधा उसे नौकरोंसे भी अधिक मेहनत करनी पड़ती है। किन्तु, इस दुःखसे व्याकुल होकर रोते हुए मत फिरो, बल्कि, हम लोगोंको दासीके समान ही रहने दो, दूसरे देशो जैसी रानी बना डालनेकी चेष्टा मत करो,—मैं यही बात तुमसे कहती हूँ।”

मैने कहा, "यद्यपि तुम तर्क-शास्त्रके माथेपर पैर देकर उसे डुबा देनेकी तजवीज कर रही हो, किन्तु, फिर भी यह स्वीकार करता हूँ कि शास्त्रानुसार तर्क करनेका रास्ता मुझे भी नहीं मिल रहा है।"

उसने कहा, "इसमें तर्क करने-जैसा कुछ भी नहीं है।"

मैंने कहा, "हो भी, तो वह शक्ति मुझमें नहीं है,—बड़ी नींद आ रही है। किन्तु, तुम्हारी बात एक तरहसे समझ रहा हूँ।"

राजलक्ष्मी जरा देर चुप रहकर बोली, "हमारे देशमें, चाहे जिस कारण हो, छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, सभी लोगोंमे रुपयोका लोभ बहुत ही बढ़ गया है। कोई भी थोड़ेमे सतुष्ट होना नहीं जानता, चाहता भी नहीं। इससे कितना अनिष्ट हुआ है, इसका पता मैंने पा लिया है।"

"बात सच है, किन्तु तुमने पता किस तरह पाया?"

राजलक्ष्मी बोली, "रुपयोके लोभसे ही तो मेरी यह दशा हुई है! किन्तु, पूर्वकालमे शायद इतना नहीं था।"

मैने कहा, "इस इतिहासको मैं ठीक ठीक नहीं जानता।"

वह कहने लगी, "इतना कभी नहीं था। उस समय माता रुपयेके लोभसे अपनी बेटीको कभी इस रास्तेपर नहीं ढकेलती, उस समय धर्मका डर था। आज तो मेरे पास रुपयोकी कमी नहीं है किन्तु मेरे समान दुखी क्या कोई है? रास्तेका भिखारी भी, मै समझती हूँ, मुझसे बहुत अधिक सुखी है।"

उसका हाथ अपने हाथमे लेकर पूछा "तुम्हे सचमुच ही इतना कष्ट है?"

राजलक्ष्मीने क्षण-भर मौन रहकर और एक बार आँचलसे आँखें-मुँह पोछकर कहा, "मेरी बात मेरे अन्तर्यामी ही जानते हैं।"

इसके बाद दोनो ही गुम-सुम हो रहे। गाड़ीकी रफ्तार कम होकर वह एक छोटे स्टेशनपर आकर खड़ी हो गई। कुछ देर बाद उसने फिर चलना शुरू किया। मैंने कहा, "क्या करनेसे तुम्हारा शेष जीवन सुखसे कट सकता है, यह मुझे बतला सकती हो?"

राजलक्ष्मी बोली, "यह मैंने सोच रक्खा है, मेरा सारा धन यदि किसी तरह चला जाय, कुछ न बच रहे,—एक बारगी निराश्रय हो जाऊँ, तो—"

अब हम फिर बिलकुल गुम-सुम हो रहे। उसकी बात इतनी स्पष्ट थी कि सभी समझ सकते हैं, मुझे भी समझनेमें देर न लगी। कुछ देर चुप रहकर पूछा, "यह खयाल कबसे आया तुम्हारे मनमे?"

राजलक्ष्मी बोली, " जिस दिन अभयाकी बात सुनी, उसी दिनसे । "

मैंने कहा, " किन्तु, उन लोगोंकी जीवन-यात्रा तो इस बीचमे ही खतम हुई नहीं जाती। भविष्यमे वे कितना दुःख पा सकते हैं, सो तो तुम जानती नहीं । "

वह सिर हिलाकर बोली, " नही, जानती नहीं, यह सत्य है, किन्तु, वे चाहे कितना ही दुःख क्यो न पावे, मेरे समान दुःख किसी दिन नही पावेगे, यह मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ। "

और भी कुछ देर चुप रहकर मैने कहा, " लक्ष्मी, तुम्हारे लिए मैं अपना सर्वस्व त्याग कर सकता हूँ, किन्तु इज्जतका त्याग कैसे करूँ ? "

राजलक्ष्मी बोली, " मैं क्या तुमसे यह कहती हूँ ? इज्जत ही तो मनुष्यकी असली चीज़ है। उसका यदि त्याग नही कर सकते तो त्यागकी बात ही क्यो मुँहपर लाते हो ? तुमसे तो मैंने कुछ भी त्याग करनेके लिए नही कहा। "

मैंने कहा, " कहा नहीं, सो ठीक है, किन्तु, कर सकता हूँ । इज्जत जानेके बाद पुरुषका जीता रहना एक विडम्बना है। केवल उस इज्जतको छोड़कर तुम्हारे लिए मै सभी-कुछ विसर्जित कर सकता हूँ। "

राजलक्ष्मीने सहसा हाथ खींच लिया और कहा, " मेरे लिए तुम्हे कुछ भी विसर्जित न करना पड़ेगा। किन्तु, तुम क्या यह समझते हो कि केवल तुम लोगोंके ही इज्जत है, हम लोगोकी कोई इज्जत नहीं ? हम लोगोंके लिए उसका त्याग देना-क्या इतना अधिक सहज है ? फिर भी, तुम लोगोंके लिए ही सैकड़ो-हजारो स्त्रियोंने इसे धूलकी तरह फेंक दिया है, सो अवश्य ही तुम नहीं जानते, पर मैं जानती हूँ। "

मेरे कुछ बोलनेकी चेष्टा करते ही उसने रोककर कहा, " रहने दो, अब और कुछ कहनेकी जरूरत नहीं। तुम्हे इतने दिन मैंने जो समझा था वह गलत है। तुम सो जाओ,—अब इस सम्बन्धमे मैं भी कभी कोई बात न कहूँगी, तुम भी न कहना। " इतना कहकर वह उठी और अपनी बेञ्चपर जा बैठी।

दूसरे दिन ठीक समयपर काशी आ पहुँचा और प्यारीके मकानमें ही ठहरा। ऊपरके दो कमरोंको छोड़कर करीब साराका सारा मकान जुदी जुदी उम्रकी विधवा स्त्रियोंसे भरा हुआ था।

प्यारी बोली, " ये सब मेरी किरायेदार हैं। " इतना कहकर वह मुँह फिराकर कुछ हँस दी।

मैंने कहा, " हँसी क्यो ? शायद किराया अदा नहीं होता ! "

प्यारी बोली, " नहीं, बल्कि कुछ न कुछ और देना पड़ता है । "

" इसके मानी ? "

प्यारी इस दफे हँस पड़ी और बोली, " इसके मानी हैं, भविष्यकी आशापर मुझको ही इन्हे खाना-कपड़ा देकर जिलाये रखना है । जीती रहेंगी तभी तो बादमे देंगी, यह भी क्या नही समझ सकते ? "

मैंने भी हँसकर कहा, " समझता नहीं तो ! इस तरह, भविष्यकी आशापर कितने लोगोंको तुम्हे गुपचुप अन्न-वस्त्र जुटाना पड़ता होगा,—मैं केवल यही सोच रहा हूँ । "

" इनके सिवाय मेरी दो-एक रिश्तेदार भी हैं । "

" सो भी हैं क्या ? किन्तु, मालूम कैसे हुआ तुम्हे कि रिश्तेदार हैं ? "

प्यारी जरा सूखी हँसी हँसकर बोली, " माँके साथ आकर इस काशीमे ही तो मेरी ' मौत ' हुई थी, शायद तुम्हे यह याद नहीं रहा । तब, असमयमे ही जिन्होंने मेरी ' सद्गति ' की थी, उन लोगोंका वह उपकार क्या प्राण रहते कभी भूला जा सकता है ! "

मैं चुप हो रहा । प्यारी कहने लगी, " इन लोगोंका शरीर बड़ा ही दयापूर्ण है । इसीलिए, पास रखकर इनपर जरा कड़ी नजर रखती हूँ जिससे इन्हे और अधिक उपकार करनेका सुयोग न मिले । "

उसके चेहरेकी ओर निहारते ही एकाएक मेरे मुँहसे बाहर निकल गया, " तुम्हारे हृदयके भीतर क्या है,—बीच-बीचमे उसे ही चीर देखनेकी इच्छा होती है राजलक्ष्मी ! "

" मरनेपर देखना । अच्छा, कमरेमे जाकर जरा सो जाओ । रसोई बन जानेपर उठा दूँगी । " इतना कहकर और हाथके इशारेसे कमरा दिखाकर वह जीनेसे नीचे उतर गई ।

मै वहीपर कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा । यह नहीं कि आज मैंने उसके हृदयका कोई नया परिचय प्राप्त किया हो, किन्तु, मेरे खुदके हृदयमे यह सामान्य कहानी एक नये चक्करकी सृष्टि कर गई ।

रातको प्यारी बोली, " तुम्हे फिजूल ही कष्ट देकर इतनी दूर ले आई । गुरुदेव तीर्थाटन करने निकल गये हैं, उनसे तुम्हे नही मिला सकी । "

मैंने कहा, “ इसके लिए मे जरा भी दुःखित नही हूँ। अब तो कलकत्ते लौट चलना होगा न ? ”

प्यारीने गर्दन हिलाकर बताया “ हाँ। ”

मैंने कहा, “ क्या मेरा साथ चलना आवश्यक है ? न हो तो मैं जरा और पश्चिमकी ओर घूम आना चाहता हूँ। ”

प्यारीने कहा, “ बकूके ब्याहमे तो अब भी कुछ देर है। चलो न, मैं भी प्रयाग चलकर स्नान कर आऊँ। ”

मैं जरा मुश्किलमे पड़ गया। मेरे दूरके रिश्तेके एक चचा वहाँ नौकरी करते हैं। सोचा था कि वहीं जाकर ठहरूँगा। सिवाय इसके और भी कई परिचित मित्र-दोस्त वहाँ रहते हैं।

प्यारीने निमेष-मात्रमे मेरे मनका भाव ताड़कर कहा, “ मै साथ रहूँगी तो शायद कोई देख लेगा, यही न ? ”

अप्रतिभ होकर कहा, “ वास्तवमे कलङ्क चीज ही ऐसी है कि लोग झूठे कलङ्कका भी भय किये बगैर नही रह सकते। ”

प्यारीने जबर्दस्ती हँसते हुए कहा, “ सो ठीक है, गतसाल आरेमे तो तुम्हे एक तरहसे गोदमें लिये ही लिये मेरे दिन-रात कटे हैं। सौभाग्यसे उस दशामे किसीने तुम्हे नही देखा। उस जगह शायद तुम्हारी जान-पहिचानका कोई बन्धु-बान्धव भी नहीं था। ”

मैंने अतिशय लज्जित होकर कहा, “ मुझे ताना मारना वृथा है। मनुष्यता-के लिहाजसे मैं तुम्हारी अपेक्षा बहुत हीन हूँ, इस बातको तो मैं अस्वीकार करता नहीं। ”

प्यारी तीक्ष्ण स्वरसे बोल उठी, “ ताना ! तुम्हे ताना मार सकूँगी, यही सोचकर शायद मैं वहाँ गई थी, क्यो ? देखो, मनुष्यको पीड़ा पहुँचानेकी भी एक हद है,—उसे मत लाँघ जाना। ”

कुछ देर चुप रहकर फिर बोली, “ ठीक, कलङ्क ही तो है ! किन्तु, यदि मैं होती तो इस कलकको सिरपर लेकर लोगोंको बुलाकर दिखाती फिरती, पर ऐसी बात मुँहसे बाहर न निकाल सकती। ”

मैंने कहा, “ तुमने मुझे प्राण-दान जरूर दिया है,—किन्तु, मै अत्यन्त छोटा आदमी हूँ राजलक्ष्मी ! तुम्हारे साथ मेरी तुलना ही नहीं हो सकती। ”

राजलक्ष्मी दर्पयुक्त स्वरमें बोली “ प्राण-दान यदि दिया है, तो अपनी ही गरजसे दिया है, तुम्हारी गरजसे नहीं। उसके लिए तुम्हे रत्ती-भर भी अहसान माननेकी जरूरत नहीं। किन्तु तुम्हे छोटा,—छोटी तबीयतका, आदमी नही ख्याल कर सकती। ऐसा होता तो आफत कटती, गलेमे फाँसी लगाकर सारी ज्वालाको जुड़ा सकती।” इतना कहकर वह मेरे जवाबकी राह देखे बगैर ही कमरेसे बाहर चली गई।

दूसरे दिन सुबह राजलक्ष्मी चाह देकर चुपचाप चली जा रही थी कि मैंने बुलाकर कहा, “ बातचीत बन्द है क्या ? ”

वह पलटकर खड़ी हो गई, बोली,—“ नही तो, कुछ कहोगे ? ”

मैंने कहा, “ चलो, एक दफे प्रयाग घूम आवें ! ”

“ ठीक तो है, जाइए। ”

“ तुम भी चलो। ”

“ अनुग्रह करते हो क्या ? ”

“ नहीं चाहती ? ”

“ नही। जरूरत होगी तब माँग लूँगी, इस समय नहीं। ” इतना कहकर वह अपने कामसे चली गई।

मेरे मुँहसे केवल एक लम्बी साँस बाहर निकल गई, किन्तु कोई बात नहीं निकली।

दोपहरको भोजनके समय मैंने हँसकर कहा, “ अच्छा लक्ष्मी, मुझसे बोलना बन्द करके क्या तुमसे रहा जायगा, जो इस असाध्य साधनकी कोशिश कर रही हो ? ”

राजलक्ष्मीने शात-गभीर मुद्रासे कहा, “सामने होनेपर किसीसे नहीं रहा जाता, —मुझसे भी नहीं रहा जायगा। इसके सिवाय, यह मेरी इच्छा भी नही है। ”

“ तब फिर इच्छा क्या है ? ”

राजलक्ष्मी बोली, “ मै कलसे ही सोच रही हूँ, इस खींच तानको बन्द किये बगैर नहीं चल सकता। तुमने भी एक तरहसे साफ साफ जता दिया है और मै भी एक तरहसे खूब जान गई हूँ। गलती मेरी ही हुई, यह मैं भी स्वीकार करती हूँ, किन्तु,—”

उसे सहसा रुकते देख मैंने पूछा, “ किन्तु, क्या ? ”

राजलक्ष्मी बोली, "किन्तु, कुछ भी नहीं। यह जो एक निर्लज्ज वाचालकी तरह याचना करती करती तुम्हारे पीछे पीछे घूमती फिरती हूँ—" इतना कहकर उसने एकाएक अपना मुँह मानो घृणासे सिकोड़ लिया और कहा, "लड़का ही क्या सोचता होगा, नौकर-चाकर ही मन-ही-मन क्या कहते होंगे ! राम राम, मानो मैंने इसे एक हँसीका व्यापार बना दिया है !"

कुछ देर ठहरकर वह फिर कहने लगी, "बुढ़ापेमे यह सब क्या मुझे सोहता है ? तुम अलाहाबाद जाना चाहते थे, सो जाओ। फिर भी, यदि हो सके तो बर्मा रवाना होनेके पहले एक दफे भेट कर जाना।" इतना कहकर वह चली गई।

साथ ही साथ मेरी भूख भी गायब हो गई। उसका मुँह देखकर आज मुझे पहले ही पहल ज्ञात हुआ कि यह सब मान-मनौवलका मामला नही है, सचमुच ही उसने कुछ-न-कुछ सोचकर स्थिर कर लिया है।

सध्याके समय आज एक हिन्दुस्तानी दासी जल-पान आदि सामग्री लेकर आई तो उससे कुछ अचरजके साथ प्यारीका हाल पूछा। जवाब सुनकर मैंने और भी अधिक अचरजके साथ जाना कि प्यारी मकानमे नही है, वह साज-सिंगार करके फिटनपर कही गई है। फिटन कहाँसे आई, उसे साज-सिंगार करके कहाँ जानेकी जरूरत पड़ गई,—सो कुछ भी न समझा। तब स्वय उसीके मुँहकी वह बात याद आ गई कि वह काशीमे ही एक दिन 'मरी' थी।

यह सच है कि कुछ भी समझमे न आया, फिर भी, इस खबरसे सारा मन खराब हो गया।

शाम हुई, घर-घरमें दीये जले, किन्तु राजलक्ष्मी नही लौटी।

चादर कंधेपर डालकर जरा घूम आनेके लिए बाहर निकल पड़ा। रास्ते-रास्ते चक्कर काटता, बहुत-कुछ देखता-सुनता, रातके दस बजेके बाद मकानपर लौटा, तो सुना कि प्यारी तब भी लौटकर नहीं आई है। मामला क्या है ? कुछ डर-सा मालूम होने लगा। सोच ही रहा था कि रतनको बुलाकर सारा सकोच दूर करके इस सम्बन्धका पता लगाऊँ या नहीं कि एक भारी जोड़ीके घोड़ोकी टापोंका शब्द सुनाई दिया। खिड़कीमेंसे झाँका तो देखता हूँ, एक बड़ी भारी फिटन मकानके सामने आकर खड़ी है।

प्यारी उतरकर आई। जोत्स्नाके आलोकमे उसके सर्वांगके जड़ाऊ जेवर झलमला उठे। जो दो भले आदमी फिटनमे बैठे थे वे धीमे स्वरसे, जान पड़ा,

प्यारीको सम्बोधन कर कुछ कह रहे हैं जिसे मैं सुन न सका। वे बंगाली हैं या बिहारी, सो भी न जान सका। चाबुक खाकर घोड़े पलक मारते न मारते आँखोंकी ओझल हो गये।

१५

राजलक्ष्मीने मेरी खबर लेनेके लिए उसी साज-सिंगारके साथ मेरे कमरेमे प्रवेश किया।

मैं उछलकर और उसकी ओर दाहिना हाथ पसारकर थियेटरी गलेसे बोला, "अरी पाखण्डिनी रोहिणी* ! तू गोविन्दलालको *नहीं पहिचानती? अहा! आज यदि मेरे पास एक पिस्तौल होती, या एक तलवार ही होती!"

राजलक्ष्मीने सूखे कण्ठ स्वरसे कहा, "तो क्या करते?—खून?"

हँसकर बोला, 'नही जी प्यारी, मुझे इतना बडा नवाबी शौक नही है। इसके सिवाय इस बीसवी शताब्दिमे ऐसा निष्ठुर राक्षसाधम कौन है जो संसारकी इतनी बड़ी आनन्दकी खानको पत्थरसे मूँद दे? बल्कि, आशीर्वाद देता हूँ कि, हे बाई-कुल-शिरोमणि! तुम दीर्घ-जीविनी होओ,—तुम्हारा सुन्दर रूप त्रिलोक-विजयी हो, तुम्हारा कण्ठ-स्वर वीणा-विनिन्दित हो, तुम्हारे इन दोनो चरण-कमलोका नृत्य उर्वशी-तिलोत्तमाका गर्व खर्व कर दे,—और मैं दूरसे तुम्हारा जय-गान करके धन्य होऊँ!"

प्यारी बोली, "इन सब बातोका अर्थ?"

मैंने कहा, "अर्थमनर्थम्! उसे जाने दो। मैं इसी एक बजेकी गाड़ीसे बिदा होता हूँ। अभी तो प्रयाग जाता हूँ, इसके बाद जाऊँगा बंगालियोंके परमतीर्थ चाकरिस्तान,—अर्थात् बर्माको। यदि समय और सुयोग होगा, तो मिलकर जाऊँगा।"

"मै कहाँ गई थी, यह सुनना भी आवश्यक नहीं समझते?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं।"

"यह बहाना पा जानेसे क्या तुम एकदम चले जा रहे हो?"

मैंने कहा "इस पापी मुँहसे अब भी कुछ कह नहीं सकता। इस गोरख-धंधेसे यदि पार हो सकूँ तो—"

* बंकिमबाबूके 'विषवृक्ष' के दो पात्र।

प्यारी कुछ देर चुप-चाप खड़ी रही और बोली, "तुम क्या मेरे ऊपर जो चाहो वही अत्याचार कर सकते हो?"

मैं बोला, "जो चाहूँ? बिलकुल नही। बल्कि, जान-अनजानमे यदि बिन्दुमात्र भी अत्याचार किया हो, तो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

"इसके माने, आज रातको ही तुम चले जाओगे?"

"हाँ।"

"मुझे बिना अपराध दण्ड देनेका तुम्हे अधिकार है?"

"नहीं, तिल-भर भी नही। किन्तु, यदि मेरे जानेको ही तुम 'दण्ड देना' समझती हो, तो वह अधिकार मुझे जरूर है।"

प्यारीने हठात् कोई जवाब नहीं दिया। मेरे मुँहकी ओर कुछ क्षण चुपचाप देखते रहकर कहा, "मैं कहाँ गई थी, क्यो गई थी,—नहीं सुनोगे?"

"नहीं। मेरी सम्मति लेकर तो तुम वहाँ गई नही थी जो लौट आकर उसका हाल सुनाओगी। सिवाय इसके, उसके लिए मेरे पास न समय है और न इच्छा।"

प्यारी चोट खाई हुई सर्पिणीकी तरह एकाएक फुकार उठी, "मेरी भी सुनानेकी इच्छा नही है। मैं किसीकी खरीदी हुई बाँदी नहीं हूँ जो कहाँ जाऊँ कहाँ न जाऊँ, इसकी भी अनुमति लेती फिरूँ! जाते हो, जाओ!" यों कहकर रूप और अलङ्कारोकी एक हिलोर-सी उठाकर वह तेजीके साथ कमरेसे बाहर हो गई।

गाड़ी बुलाने गया। कोई घण्टे-भर बाद सदर-दरवाजेपर एक गाड़ीके खड़े होनेका शब्द सुनकर बैग हाथमे लेकर जा ही रहा था कि प्यारी आकर पीछे खड़ी हो गई। बोली, "इसे क्या तुम बच्चोंका खेलवाड़ समझते हो? मुझे अकेली छोड़कर चले जाओगे,—नौकर-चाकर क्या सोचेंगे? तुम क्या इन लोगोके सामने भी मुझे मुँह दिखाने योग्य न रक्खोगे?"

पलटकर खड़े होकर कहा, "अपने नौकरोंके साथ तुम निपटती रहना,—मेरा उससे कोई ताल्लुक नहीं।"

"वह न हो न सही, किन्तु लौटकर मैं बङ्कूको ही क्या जवाब दूँगी?"

"यही जवाब देना कि वे पश्चिमको घूमने चले गये हैं।"

" इसपर क्या कोई विश्वास करेगा ? "

" जिसपर विश्वास किया जा सके, ऐसी ही कोई बात बनाकर कह देना। "

प्यारी क्षण-भर मौन रहकर बोली, " यदि कुछ अन्याय ही कर बैठी हूँ तो क्या वह माफ नहीं हो सकता ? तुम क्षमा न करोगे तो और कौन करेगा ? "

मै बोला, " प्यारी, यह तो तुम बाँदी-दासी-सरीखी बात करती हो। तुम्हारे मुँह तो यह नही सोहती। "

इस तानेका प्यारी सहसा कोई उत्तर न दे सकी। उसका मुँह लाल हो गया, वह चुपचाप खड़ी रही। यह साफ मालूम हो गया कि वह प्राण-पणसे अपने आपको सम्हालनेकी चेष्टा कर रही है। बाहरसे गाड़ीवानने चिल्लाकर दरका कारण पूछा। मेरे चुपचाप बैग हाथमे लेते ही प्यारी धपसे मेरे पैरोंके समीप बैठ गई और रुद्ध स्वरसे बोल उठी, " मै सचमुचका अपराध कभी कर ही नही सकती, यह जानते हुए भी यदि तुम दण्ड देना चाहते हो तो अपने हाथसे दो, किन्तु, घर-भरके लोगोके समीप मेरा मस्तक नीचा मत कर दो। यदि आज तुम इस तरह चले जाओगे तो मै अब किसीके समीप कभी अपना मुँह ऊँचा करके खडी न हो सकूँगी। "

हाथका बैग नीचे रखकर एक चौकीपर बैठ गया और बोला, " अच्छा, आज तुम्हारे-हमारे बीच अन्तिम फैसला हो जाय। तुम्हारा आजका आचरण मैने माफ किया। किन्तु, मैने बहुत विचार करके देखा है कि हम-दोनोका मिलना-जुलना अब नहीं हो सकेगा। "

प्यारीने अपना अत्यन्त उत्कण्ठित मुँह मेरे मुँहकी ओर उठाकर डरते हुए पूछा, " क्यो ? "

मै बोला, " अप्रिय सत्य सह सकोगी ? "

प्यारीने गर्दन हिलाकर अस्फुट स्वरमे कहा, " हॉ, सह सकूँगी। "

किन्तु, किसी आदमीके व्यथा सहनेको तैयार होते ही कुछ व्यथा देनेका कार्य सहज नही हो जाता। मुझे बहुत देरतक चुपचाप बैठकर सोचना पडा। किन्तु, मैंने स्थिर कर लिया कि आज किसी तरह भी अपना इरादा नहीं बदलूँगा, इसीलिए, अन्तमे मैंने धीरेसे कहा, " लक्ष्मी, तुम्हारा आजका व्यवहार माफ करना कितना ही कठिन क्यो न हो, मैने माफ किया। किन्तु, तुम स्वयं इस लोभको किसी तरह नही छोड़ सकोगी। तुम्हारे पास बहुत धन-दौलत है,—

बहुत-सा रूप-गुण है। बहुतोपर तुम्हारा असीम प्रभुत्व भी है। ससारमें इससे बढकर लोभकी वस्तु और कोई नहीं है। तुम मुझे प्यार कर सकती हो, श्रद्धा कर सकती हो, मेरे लिए अनेक दुःख भी उठा सकती हो, किन्तु इस मोहको किसी तरह भी नही काट सकोगी।"

राजलक्ष्मीने मृदु कण्ठसे कहा, "अर्थात्, इस तरहका काम मै बीच-बीचमें करूँगी ही?"

जवाबमे मैं केवल मौन हो रहा। वह खुद भी कुछ देर चुप रहकर बोली, "उसके बाद?"

"उसके बाद एक दिन ताशके मकानकी तरह सब गिर पड़ेगा। उस दिनकी उस हीनतासे तो यही भला है कि आज मुझे हमेशाके लिए रिहाई दे दो,—तुम्हारे समीप मेरी यही प्रार्थना है!"

प्यारी बहुत देरतक मुँह नीचा किये चुपचाप बैठी रही। इसके बाद जब उसने मुँह उठाया तब देखा, उसकी आँखोसे पानी गिर रहा है। उसे आँचलसे पोंछ पूछा, "क्या मैंने कभी तुम्हे कोई छोटा कार्य करनेके लिए प्रवृत्त किया है?"

इस गिरती हुई अश्रु-धाराने मेरे सयमकी भीतपर चोट पहुँचाई, किन्तु, बाहरसे मैंने उसे किसी तरह प्रकट नही होने दिया। शान्त दृढताके साथ कहा, "नही, किसी दिन नहीं। तुम स्वयं छोटी नहीं हो, छोटा काम तुम स्वय कभी कर नही सकती, दूसरेको भी नही करने दे सकतीं।"

फिर कुछ ठहरकर कहा, "किन्तु, दुनिया तो मनसा पण्डितकी पाठशाला-की उस राजलक्ष्मीको पहिचानेगी नहीं। वह तो पहिचानेगी सिर्फ पटनाकी प्रसिद्ध प्यारीबाईको। तब दुनियाकी नजरोमे मैं कितना छोटा हो जाऊँगा, सो तुम क्या नही देख सकतीं? बतलाओ, तुम उसे किस तरह रोकोगी?"

राजलक्ष्मीने एक लम्बी साँस छोड़कर कहा, "किन्तु, उसे तो सचमुचमे छोटा होना नही कहते।"

मैंने कहा, "भगवान्की नजरमे न हो, किन्तु ससारकी आँखें भी तो उपेक्षा करनेकी चीज नही हैं लक्ष्मी!"

राजलक्ष्मीने कहा, "किन्तु, उन्हींकी नजरको ही तो सबसे पहले मानना उचित है।"

मैंने कहा, " एक तरहसे यह बात सच है। किन्तु, उनकी नजर तो हमेशा दीख नही पड़ती। जो दृष्टि ससारमे दस आदमियोंके भीतरसे प्रकाश पाती है, वह भी तो भगवान्‌की ही दृष्टि है, राजलक्ष्मी ! इसे भी तो अस्वीकार करना अन्याय है ! "

" इसी डरसे तुम मुझे जन्म-भरके लिए छोड़कर चले जाओगे ! "

मैं बोला, " फिर मिलूँगा। तुम कहीं भी क्यों न होओ, बर्मा जानेके पहले मै एक दफे और भी तुमसे मिल जाऊँगा। "

राजलक्ष्मी तेजीके साथ सिर हिलाकर रुआसे स्वरसे कह उठी, " जाते हो तो जाओ। किन्तु, तुम मुझे चाहे जैसा क्यों न समझो, मुझसे बढ़कर अपना तुम्हारा और कोई नहीं है। पर उसी मुझको त्याग कर जाना, दस आदमियोंकी निगाहमे धर्म है,—यह बात मैं कभी स्वीकार नहीं करूँगी। " इतना कहकर वह तेजीसे कमरा छोड़कर चली गई।

घड़ी निकालकर देखा, अब भी समय है, अब भी शायद एक बजेकी गाड़ी मिल जाय। चुपचाप बैग उठाकर धीरेसे उतरकर मैं गाड़ीमे जा बैठा।

इनामके लोभसे गाड़ीने प्राणपणसे दौड़कर स्टेशन पहुँचा दिया। किन्तु, उसी क्षण पश्चिमकी ट्रेनने प्लेटफार्म छोड़ दिया। पूछनेसे मालूम हुआ कि आध घण्टे बाद ही एक ट्रेन कलकत्तेकी ओर जायगी। सोचा, चलो, यही अच्छा है, गाँवका मुँह बहुत दिनसे नही देखा,—उस जङ्गलमे ही जाकर बाकीके कुछ दिन काट दूँ।

इसलिए, पश्चिमके बदले पूर्वका टिकिट खरीदकर आध घण्टेके बाद एक विपरीत-गामिनी भाफकी गाड़ीमे बैठकर काशीसे चल दिया।

१६

बहुत दिनो बाद फिर एक दिन शामको गाँवमे आकर प्रवेश किया। मेरा मकान उस समय सग-सम्बन्धी रिश्तेदारो तथा उनके भी रिश्तेदारोंसे भरा हुआ था। बड़े मजेसे सारे घरको घेरकर उन्होने अपनी घर-गिरस्ती फैला रक्खी थी। कहीं सुई रखनेके लिए भी जगह नही थी !

मेरे एकाएक आ पहुँचने और वहाँ रहनेके इरादेको सुनकर आनन्दके मारे उनका चेहरा स्याह हो गया ! वे कहने लगे, " आहा ! यह तो सुखकी बात

है! इस बार ब्याह करके संसारी बन जाओ श्रीकान्त, हम लोग देखकर अपनी आँखे ठडी करे।"

मैंने कहा, "इसीलिए तो आया हूँ। इस समय कमसे कम मेरी माँका कमरा खाली कर दो, मैं अपने हाथ-पाँव फैलाकर जरा लेट रहूँ।"

मेरे पिताकी ममेरी बहिन अपने पति-पुत्रके साथ कुछ दिनसे रह रहीं थीं। वे आकर बोलीं, "ठीक ही तो कहते हो!"

मैंने कहा, "अच्छा, अच्छा, न हो तो मैं बाहरके कमरेमे ही पड़ रहूँगा।"

जाकर देखा,—एक कोनेमे सुर्खी और एक कोनेमे चूनेका ढेर लगा हुआ है। उसके भी 'मालिक' बोले, "ठीक तो है। देखता हूँ कि ये सब चीजे देख-सुनकर जरा हटानी पड़ेगी। सो कमरा तो छोटा नही है, तबतक न हो, तो इस किनारे एक तख्तपोश बिछाकर,—क्या कहते हो श्रीकान्त?"

मैंने कहा, "अच्छा, रात-भरके लिए न हो तो यही सही।"

वास्तवमे मै इतना थक गया था कि मालूम होता था जहाँ भी हो जरा-सी सोनेको जगह-भर मिल जाय तो जानमे जान आये। बर्माकी उस बीमारीके बादसे अबतक शरीर पूरी तौरसे स्वस्थ और सबल नहीं हो पाया था। भीतर-ही-भीतर एक तरहका अवसाद प्रायः ही अनुभव करता था। इसीसे शामके बाद जब माथा दुखने लगा तब विशेष अचरज नही हुआ।

नई बनी हुई बहिनने आकर कहा, "अरे, यह तो गरमी चढ गई है। भात खाकर सोनेसे ही चली जायगी।"

तथास्तु। वही हुआ। गुरुजनकी आज्ञा शिरोधार्य करके गर्मी दूर करनेके लिए भात खाकर शय्या ग्रहण कर ली। पर सुबह नींद टूटी,—खूब अच्छी तरह बुखार लिये हुए।

दीदीने शरीरपर हाथ रखकर कहा, "कुछ नहीं, यह तो मलेरिया है, इसमे भोजन किया जा सकता है।"

किन्तु आज हॉमे हॉ न मिला सका। बोला, "नही जीजी, मैं अबतक तुम्हारे मलेरिया-राजाकी प्रजा नही बना हूँ। उनकी दुहाई देकर अत्याचार किया जाना शायद मैं सहन नहीं कर सकूँ। आज मेरी लंघन है।"

सारी रात गुजरी, दूसरा दिन गुजरा, उसके बादका दिन भी कट गया किन्तु बुखारने पीछा नहीं छोड़ा। बल्कि, उसे अधिकाधिक बढते देख मन-ही-मन

व्याकुल हो उठा। गोविन्द डाक्टर इस बेला उस बेला देखने आने लगे। नाड़ी पकड़कर, जीभ देखकर, पेट ठोककर 'सुस्वादु' ओषधियोंकी योजना कर केवल 'लागतके दाम' भर लेने लगे; किन्तु, एक-एक दिन करके सारा सप्ताह गुज़र गया। मेरे पिताके मामा,—मेरे बाबा, आकर बोले, 'इसीलिए तो भइया, मैं कहता हूँ कि वहाँ खबर पठा दो,—तुम्हारी फुआको आ जाने दो। बुखार तो जैसे—"

बात पूरी न होनेपर भी मै समझ गया कि बाबा कुछ मुश्किलमे पड़ गये हैं। इस तरह और भी चार-पाँच दिन बीत गये, किन्तु, बुखारमे कोई फर्क नहीं हुआ। उस दिन सुबह गोविन्द डाक्टरने आकर यथारीति दवाई देकर तीन दिनके बाकी 'लागतके दाम' माँगे। शय्यामे पड़े पड़े किसी तरह हाथ बढाकर अपना बैग खोला,—देखा तो मनीबैग गायब है! अतिशय शङ्कित होकर मै उठ बैठा। बैगको औंधा करके, हरएक चीज अलग अलग करके, खोज की किन्तु, जो नहीं था सो नही मिला।

गोविन्द डाक्टर मामला समझकर चिन्तित हो बार बार सवाल करने लगे, "कुछ चला गया है क्या?"

मैने कहा, "नही, कुछ भी नहीं गया।"

किन्तु, उनकी दवाका मूल्य जब मैं नही दे सका तब वे समझ गये। स्तम्भितकी तरह कुछ देर खड़े रहकर उन्होने पूछा, "थे कितने?"

"कुछ थोड़े-से।"

"चाबीको जरा सावधानीसे रखना चाहिए भइया। खैर, तुम पराये नही हो। रुपयोंकी चिन्ता न करना। अच्छे हो जाओ, उसके बाद जब सुभीता हो भेज देना। इलाजमे कोई कसर न होगी। इतना कहकर डाक्टर साहब गैर होकर भी परम आत्मीयसे भी अधिक सान्त्वना देकर चले गये। उनसे कह दिया कि, "यह बात कोई सुन न पावे।"

डाक्टर साहब बोले, "अच्छा, अच्छा, देखा जायगा।"

देहातमे विश्वासपर रुपये उधार देनेकी चाल नही है। रुपया ही क्यों, एक चवन्नी भी खाली हाथ उधार माँगनेपर लोग समझते हैं कि यह आदमी खालिस दिल्लगी कर रहा है। क्योंकि, संसारमे इतना नासमझ भी कोई है जो खाली

हाथ उधार चाहता है ?—इस बातकी देहातके लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। अतएव, मैने यह कोशिश भी नहीं की। पहलेसे ही स्थिर कर लिया था कि इसकी सूचना राजलक्ष्मीको नहीं दूँगा। जरा स्वस्थ हो जाऊँ तब जो हो सकेगा करूँगा। मनमे सभवतः यह सकल्प था कि अभयाको पत्र लिखकर रुपये मँगाऊँगा। किन्तु, इसके लिए समय नही मिला। सहसा सेवा-सुश्रूषाका सुर भी 'तारा'से 'उदारा'मे उतर पड़ते ही समझ गया कि मेरी विपत्तिकी बात मकानके भीतर छिपी नही रही है।

परिस्थितिको सक्षेपमे जताकर राजलक्ष्मीको एक चिट्ठी लिखी अवश्य, किन्तु उससे मैं अपने आपको इतना हीन, इतना अपमानित, जान पड़ने लगा कि किसी तरह भी उसे न भेज सका,—फाड़कर फेंक दिया। दूसरा दिन इसी तरह कट गया। किन्तु, इसके बादके दिनने किसी तरह भी कटना न चाहा। उस दिन किसी ओरसे कोई भी रास्ता न देख पाकर अन्तमे एक तरहसे जानपर खेलकर ही कुछ रुपयोंके लिए राजलक्ष्मीको पत्र लिखकर पटना और कलकत्तेके ठिकाने-पर भेज दिये।

वह रुपये भेजगी, इसमे जरा भी सन्देह नही था, फिर भी, उस दिन सुबहसे ही मानो एक प्रकारके उत्कण्ठित संशयसे पोस्ट-मेनकी आशामे, सामनेकी खुली खिड़कीमेसे रास्तेके ऊपर अपनी दृष्टि बिछाये हुए, उन्मुख हो रहा।

समय निकल गया। आज अब उसकी आशा नही है, ऐसा सोचकर करवट बदलनेकी तैयारी कर रहा था कि उसी समय दूरपर एक गाड़ीके शब्दसे चकित होकर तकियेपर भार देकर उठ बैठा। गाड़ी आकर ठीक सामने ही खड़ी हो गई। देखता हूँ, कोचवानके बगलमे रतन बैठा है। उसके नीचे उतरकर गाड़ीका दरवाजा खोलते ही जो दिखाई दिया, उसपर सत्य मानकर विश्वास करना कठिन हो गया।

प्रकट रूपसे दिनके समय इस गाँवके रास्तेपर राजलक्ष्मी आकर खड़ी हो सकती है, यह मेरी कल्पनाके भी परेकी बात थी।

रतन बोला, "ये हैं बाबूजी।"

राजलक्ष्मीने केवल एक बार मेरे मुँहकी ओर देखा। गाड़ीवान बोला, "मा, देर लगेगी ? घोड़ा खोल दूँ ?"

" जरा ठहरो। " कहकर उसने अविचलित धीर-पद रखते हुए मेरे कमरेमें प्रवेश किया। प्रणाम करके, पैरोंकी धूलि मस्तकपर लगाकर, और हाथोंसे मस्तक और छातीका उत्ताप देखकर, कहा, " इस समय तो अब बुखार नहीं है। उस ओर सात बजेकी गाड़ीसे जाना हो सकेगा? घोड़े छोड़ देनेको कह दूँ?"

मैं अभिभूतकी तरह उसके मुँहकी ओर निहार रहा था। बोला, " दो दिनसे बुखार आना तो बन्द है। किन्तु, क्या मुझे आज ही ले चलना चाहती हो?"

राजलक्ष्मी बोली, " न हो तो आज रहने दो। रातमें चलनेकी जरूरत नहीं, सरदी लग सकती है, कल सुबह ही चलेंगे।"

इतनी देरमें जैसे मैं होशमें आ गया। बोला," इस गाँवमें, इस महल्लेके बीच, तुम आई किस साहससे? तुम क्या सोचती हो कि यहाँ तुम्हें कोई पहिचान नहीं सकेगा?"

राजलक्ष्मीने सहजमें ही कहा, " भले ही पहिचान ले। यहीं तो मैं पैदा हुई और आदमी बनी और यहींपर लोग मुझे पहिचान न सकेंगे! जो देखेगा वही पहिचान लेगा।"

" तब?"

" क्या करूँ बताओ? मेरा भाग्य! नहीं तो, तुम यहाँ आकर बीमार ही क्यों पड़ते?"

" आई क्यों? रुपये मँगाये थे, रुपये भेज देनेसे ही तो चल जाता!"

" सो क्या कभी हो सकता है! ऐसी बीमारीकी खबर सुनकर क्या केवल रुपये भेजकर ही स्थिर रह सकती हूँ?"

मैंने कहा, " तुम तो शायद स्थिर हो गई, किन्तु मुझे तो बहुत ही अस्थिर कर दिया। अभी ही यहाँ सब आ पड़ेंगे, तब तुम अपना मुँह किस तरह दिखाओगी, और मैं ही क्या जवाब दूँगा?"

राजलक्ष्मीने जवाबमें केवल एक बार और अपने ललाटको छूकर कहा, " जवाब और क्या दोगे,—मेरा भाग्य!"

उसकी बेपर्वाही और उदासीनतासे अत्यन्त असहिष्णु होकर बोला, " भाग्य तो ठीक है! किन्तु लज्जा-शर्मको क्या एकबारगी ही चाँट बैठी हो? यहाँ मुँह दिखाते भी तुम्हें हिचकिचाहट नहीं हुई?"

राजलक्ष्मीने वैसे ही उदास कण्ठसे जवाब दिया, " मेरी लाज-शरम जो कुछ है सो इस समय बस तुम ही हो। "

इसके बाद अब और कहूँ ही क्या ! सुनूँ भी क्या ! आँखे मूँदकर चुपचाप लेट रहा।

कुछ देर बाद पूछा, " बकूका विवाह निर्विघ्न हो गया ? "

राजलक्ष्मी बोली, " हाँ। "

" अभी कहाँसे आ रही हो ? कलकत्तेसे ? "

" नही पटनेसे। वहीपर तुम्हारी चिट्ठी मिली थी। "

" मुझे कहाँ ले जाओगी ? पटने ? "

राजलक्ष्मीने कुछ सोचकर कहा, " एक बार तो वहाँ तुम्हे जाना ही पड़गा। पहले कलकत्ते चले चले, वहाँपर तुम्हे दिखा लूँ, उसके बाद तन्दुरुस्त होनेपर—"

मैंने सवाल किया, " किन्तु, इसके बाद भी मुझे पटना क्यो जाना पड़गा ? "

राजलक्ष्मी बोली, " दान-पत्रकी तो वही रजिस्टरी करानी पड़ेगी। लिखा-पढ़ी एक तरहसे सब कर आई हूँ किन्तु तुम्हारे हुक्मके बिना तो कुछ हो न सकेगा ! "

अत्यन्त अचरजके साथ पूछा, " किस बातका दान-पत्र ? किसके नाम ? "

राजलक्ष्मी बोली, " दोनो मकान तो बकूको ही दिये हैं। केवल काशीका मकान गुरुदेवको देना विचारा है। और कम्पनीके कागज, गहने वगैरहका हिस्सा-बाँट भी अपनी समझ-बूझके अनुसार एक तरहसे कर आई हूँ। अब तुम्हारे कहने-भरकी—"

मेरे अचरजकी सीमा नही रही। बोला, "ऐसी अवस्थामे अब तुम्हारा खुदका और क्या रह गया ? बकू यदि तुम्हारा भार न ले तो ? अब उसकी खुदकी गिरस्ती हो गई, अन्तमे यदि वह भी तुम्हे खानेको न दे तो ? "

" क्या मै यह चाहती हूँ ? निजका सब-कुछ दान देकर क्या उसीके हाथका दिया खाऊँगी ? तुम भी खूब हो ! "

धीरजको और न सम्हाल सकनेके कारण मै उठकर क्रुद्ध कण्ठसे बोला, " हरिश्चन्द्रके समान यह दुर्बुद्धि तुम्हे दी किसने ? खाओगी क्या ? बुढापेमे किसकी गलग्रह बनने जाओगी ? "

राजलक्ष्मी बोली, "तुम्हे गुस्सा करनेकी जरूरत नही है, तुम लेट जाओ। जिसने मुझे यह बुद्धि दी है, वही मुझे खानेको देगा। मैं हजार बूढ़ी हो जाऊँगी, वह मुझे कभी गलग्रह नहीं समझेगा। तुम फिजूल सिर गर्म मत करो,—शान्तिसे लेट रहो।"

मैं शान्त होकर लेट रहा। सामनेकी खुली खिड़कीसे डूबते हुए सूर्यकी किरणोंसे रँगा हुआ विचित्र आकाश दीख पड़ा। स्वप्नाविष्टकी तरह निर्निमेष दृष्टिसे उसी ओर निहारते निहारते जान पड़ने लगा,—मानो एक अद्भुत शोभा और सौन्दर्यमे सारा विश्व-ब्रह्माण्ड बहा जा रहा है। तीनो लोकोंके बीच रोग-शोक, अभाव-अभियोग, हिंसा-द्वेष, अब कही भी कुछ नही है।

इस निर्वाक् निस्तब्धतामे मग्न रहकर दोनोने कितना समय बिता दिया, समझता हूँ, इसका किसीने हिसाब ही नही किया। सहसा दरवाजेके बाहिर मनुष्यके गलेकी आवाज सुनकर हम दोनो ही चौंक पड़े और राजलक्ष्मीके शय्या छोड़नेके पहले ही डाक्टर साहबने प्रसन्न बाबाको साथमे लिये अन्दर प्रवेश किया। किन्तु, उसके ऊपर दृष्टि पड़ते ही वे रुककर खड़े हो गये। बाबा जब दिवा-निद्रा ले रहे थे तब यह खबर उनके कानोमे अवश्य गई थी कि कोई बन्धु कलकत्तेसे गाड़ी लेकर मेरे पास आये हैं, किन्तु वह कोई स्त्री हो सकती है यह शायद किसीकी कल्पनामे भी नहीं आया था। इसीलिए, शायद अब तक घरकी स्त्रियाँ भी बाहर नही आई थी।

बाबाजी अत्यन्त विचक्षण आदमी थे। उन्होंने कुछ देर राजलक्ष्मीके नीचे झुके हुए मुखकी ओर देखकर कहा, "यह लड़की कौन है, श्रीकान्त? कुछ पहिचानी हुई-सी मालूम होती है।"

डाक्टर साहब भी प्रायः साथ ही साथ कह उठे, "छोटे काका, मुझे भी ऐसा लगता है जैसे इन्हे कहीं देखा है।"

मैंने तिरछी नजरसे देखा, राजलक्ष्मीका सारा मुख-मण्डल जैसे मुर्देकी तरह फक हो गया है। उसी क्षण जैसे कोई मेरे हृदयके भीतरसे बोल उठा, 'श्रीकान्त, इस सर्वस्व-त्यागिनी स्त्रीने केवल तुम्हारे लिए ही स्वेच्छासे यह दुख अपने सिरपर उठा लिया है।'

एक-बारगी सारी देह रोमाञ्चित हो उठी, मन-ही-मन बोला, मुझे सत्यके

मतलब नहीं, आज मैं मिथ्याको ही सिरपर धारण करूँगा और दूसरे ही क्षण उसके हाथको जरा दबाकर बोला, " तुम अपने पतिकी सेवा करने आई हो, तुम्हे लाज किस बातकी है राजलक्ष्मी ? ये बाबा और डाक्टर साहब हैं, इनको प्रणाम करो। "

पल-भरके लिए दोनोकी चार आँखे हो गई, इसके बाद उसने उठकर जमीनपर सिर टेककर दोनोको प्रणाम किया।

द्वितीय पर्व समाप्त